द्विवेदी युगीन काव्य में लोक-मंगल की भावना

इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि हेतु

प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

निर्देशक

प्रो० मीरा श्रीवास्तव, डी० लिट्०

अध्यक्ष,

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

इलाहाबाद

प्रस्तुतकर्त्ता

अभिनाथ सिंह

सहायक प्राध्यापक,

हिन्दी विभाग

शासकीय महाविद्यालय, गढ़ाकोटा, सागर

हिन्दी विभाग

इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

इलाहाबाद

जून, 1998

प्राक्कथन

प्राक्कथन

द्विवेदी युगीन कवियों ने जीवन की आकांक्षाओ, इच्छाओं और शक्तियो को देने वाली काव्य रचनाओ का सृजन किया। इसका मूल स्वर सास्कृतिक एव राष्ट्रीय है। मानवता की सेवा, उदात्त चरित्रो की सृष्टि, तुच्छ, क्षुद्र एव उपेक्षित के प्रति सहानुभूति, नैतिक मूल्यो के प्रति आग्रह, नारी के प्रति संवेदनात्मक दृष्टिकोण आदि इस युग के काव्य की विशेषताएँ हैं।

द्विवेदी–युग से सम्बन्धित कई शोध–प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके है, जिनमे डॉ० श्रीकृष्णलाल का 'आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास' डॉ० उदयभानु सिह का 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग', डॉ० सुधीन्द्र का 'हिन्दी कविता मे युगान्तर', डॉ० रामसकलराय शर्मा का 'द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य' विशेष उल्लेखनीय हैं।

डॉ० श्रीकृष्णलाल का प्रबन्ध द्विवेदी युगीन समस्त साहित्य का परिचय है। उसमे द्विवेदी–युग की कविता पर एक अध्याय मात्र है, जिसमे कविताओ का संक्षिप्त विवेचन है। डॉ० उदयभानु सिंह के प्रबन्ध में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व एव कृतित्व का विस्तार से विवेचन हुआ है, परन्तु द्विवेदी–युग के अन्य कवियो एव काव्य प्रवृत्तियो को स्थान नहीं मिल सका है। डॉ० सुधीन्द्र का प्रबन्ध 'हिन्दी कविता मे युगान्तर' कई दृष्टियो से उपयोगी होते हुए भी अनेक अभावो की पूर्ति की अपेक्षा रखता है। इसमें द्विवेदी युगीन काव्य रचनाओ एव युग की समस्त प्रवृत्तिगत चेतना का व्यवस्थित अध्ययन प्रस्तुत नहीं किया गया है। डॉ० रामसकलराय शर्मा ने अपने शोध–प्रबन्ध मे काव्यरूप, काव्य–विषय, काव्य का कलापक्षीय विवेचन आदि पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है।

द्विवेदी–युग का काव्य सास्कृतिक एव राष्ट्रीय चेतना की उत्कट एव अदम्य अभिव्यक्ति है। उसमे नवीन जीवन दृष्टि और भारतीय धर्म एव सस्कृति के सस्कार गहराई से विद्यमान है। युग की कविता की चेतना व्यष्टि से समष्टि मे सचरित हुई है। समष्टि का चितन इस युग की कविता का मूल स्वर है, जो लोक–मगल का मूलाधार है। प्रस्तुत शोध– प्रबन्ध "द्विवेदी युगीन काव्य मे लोक–मगल की भावना" मे इस युग की काव्य रचनाओ मे व्यक्त समष्टि–चितन को प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

शोध–प्रबन्ध की दिशा का निर्देश कर देने के बाद आवश्यक है कि, अलग–अलग अध्यायो का सक्षिप्त सकेत कर दिया जाय।

शोध–प्रबन्ध को कुल सात अध्यायो मे विभक्त करके अध्ययन किया गया है। प्रथम अध्याय मे बीसवी शताब्दी के पूर्वाश की राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, सास्कृतिक आदि परिस्थितियो का विवेचन है। महत्त्वपूर्ण घटनाओ तथा उनके प्रभाव से भारतीय जन–मानस मे जो परिवर्तन परिलक्षित होता है, उसको प्रस्तुत किया गया है। द्वितीय अध्याय मे काव्य–भाषा के रूप मे खडीबोली आदोलन, काव्य–वस्तु मे नवीनता का उन्मेष, मानवतावादी दृष्टिकोण के प्रति आग्रह आदि का विवेचन किया गया है, जो उसे पूर्ववर्ती भारतेन्दु–युग से अलग विशिष्ट पहचान देती है। तृतीय अध्याय मे सास्कृतिक एव राष्ट्रीय आदोलनो ने किन प्रक्रियाओ से अपने को प्रकट किया है और द्विवेदी युगीन कवियों ने उसके प्रभाव को कहाँ तक आत्मसात किया है, इसका विवेचन किया गया है। चतुर्थ अध्याय मे लोक–मगल के बहुमुखी विकास का वर्णन है। इसके अन्तर्गत द्विवेदी युगीन काव्य मे वर्णित प्रकृति, प्रेम–भाव, आलोचना दृष्टि एव नारी–शिक्षा की दशा एव दिशा को, लोक–मगल के सन्दर्भ मे विवेचित किया गया है। पचम अध्याय मे सामाजिक विद्रूपता, कुरीतियों, शोषण आदि से उत्पन्न वैषम्य के कारण, अन्त्यजो, अस्पृश्यो, नारी, श्रमिको किसानों आदि की हीन–दशा एव उनकी मन.स्थितियो का वर्णन है।

साथ ही इस वैषम्य को दूर करने के लिए, कवियो की भावनात्मक अभिव्यक्ति को विवेचित किया गया है। षष्ठ अध्याय के अन्तर्गत द्विवेदी युगीन काव्य मे भारतीय धर्म और सस्कृति की जो सचेतना सचरित हुई है, उसका विस्तार से विवेचन किया गया है। सप्तम अध्याय मे भारतीय मनुष्यत्व की स्थापना के लिए युग के कवियो के प्रयास और उनकी लोक–मागलिकता की उत्कट भावना को प्रस्तुत किया गया है। उपसहार के अन्तर्गत सक्षेप मे समग्र शोध–प्रबन्ध का समाहार प्रस्तुत किया गया है।

इस शोध–प्रबन्ध को लिखते समय मेरा यह दृष्टिकोण रहा है कि द्विवेदी युगीन कवियो ने सास्कृतिक एव राष्ट्रीय चेतना की जो अभिव्यक्ति की है, उसका मूल ध्येय व्यक्ति मे नैतिक मूल्यो का समावेश करना है। उन्हे उदात्त भावो से विभूषित करना है। इस युग के काव्य मे वैयक्तिक उत्कर्ष के साथ–साथ समष्टिगत उत्कर्ष की कामना की गयी है। कवियो ने समष्टिगत उत्कर्ष के लिए व्यक्ति के मन, मस्तिष्क एव हृदय को परिष्कृत एव संस्कारित करके, उसे पशुत्व से देवत्व की ओर ले जाने वाले उदात्त भावो करूणा, प्रेम, 'सर्व–भूत–हित' की भावना आदि से युक्त करने का उपक्रम किया है। ये उदात्त भाव लोक–मागलिकता की भावना को सपोषित करते हैं।

सम्भव है शोध–प्रबन्ध की सीमा के कारण, कुछ कवियो को यथोचित स्थान न मिला हो, परन्तु द्विवेदी युगीन लोक–मागलिकता की चेतना की अभिव्यक्ति स्वाभाविक रूप से हुई है। अत मे यही कहूँ, कि शोध–प्रबन्ध की अपनी सीमा होती है, साथ ही शोध–लेखक की कमजोरियाँ भी जिससे प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध भी मुक्त नही है।

शोध–प्रबन्ध के सकुशल पूर्ण होने पर, सर्वप्रथम गुरूजनो के प्रति विनत श्रद्धा व प्रणति निवेदित करता हूँ। शोध–निर्देशक माननीया प्रो० मीरा श्रीवास्तव (डी० लिट्०), अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद के आत्मीय स्नेह, सूक्ष्म सकेतात्मकता एव चेतना

को सस्कारित करने की दृष्टि के प्रति आजीवन कृतज्ञता के सकल्प से श्रद्धानत् रहूँगा। हिन्दी विभाग के समस्त गुरूजनो को हृदय से आभार ज्ञापित करता हूँ, जिनका प्रत्यक्ष एव अप्रत्यक्ष सहयोग मिलता रहा है। विषय की गम्भीरता एव गुरूता के प्रति सचेत करते हुए प्रोत्साहित करने का प्रयास, मेरे मित्रो विशेषकर श्री डी०एस० बिसेन, श्री ए०के०जैन, श्री महेन्द्र प्रताप सिह, श्री दिनेशकुमार राय, श्री विमल कुमार जैन आदि ने किया, जिनके स्नेहिल सौहार्द्र को धन्यवाद की औपचारिकता से हलका बनाना नही चाहूँगा। माता एव पिता की शुभ कामना के प्रति श्रद्धा एव सत्यनिष्ठा अर्पित है। भाइयो ने पारिवारिक जिम्मेदारियो से मुक्त रखा, उनकी सहयोगिता के प्रति आभारी हूँ।

शासकीय महाविद्यालय गढाकोटा, सागर के प्राचार्य डॉ० एस०एन० काजमी, मित्र प्राध्यापकों एव सहायक प्राध्यापको के प्रति आभार व्यक्त करता हूँ , जिन्होने शोध कार्य मे अनेक तरह से सहयोग किया है। श्री देवीप्रसाद सिह ने टकित प्रति को आद्योपान्त पढने मे जो सहायता प्रदान की उसके लिए मैं उन्हे धन्यवाद देता हूँ।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, भारती–भवन, प्रयाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय के पुस्तकालयो के अधिकारियो एव कर्मचारियो का भी आभारी हूँ , जिन्होने मुझे उदारतापूर्वक यथोचित सुविधाएँ प्रदान की।

जून, १९९८

हिन्दी विभाग,

इलाहाबाद विश्वविद्यालय,

इलाहाबाद

अभिनाथ सिंह
(अभिनाथ सिह) 29/6/98

— विषय-सूची '----

प्रथम अध्याय : पृष्ठ क्रमाक 1-54

भारत और बीसवीं शताब्दी का पूर्वांश -

(क) तत्कालीन परिवेश (1) राजनीतिक

(2) सामाजिक

(3) साहित्यिक

(ख) शिक्षा का प्रसार

(ग) मुद्रण कला का आविर्भाव

(घ) उद्योग और प्रविधि (वैज्ञानिक विचारो का उद्भव)

(ङ) पश्चिम का प्रभाव सस्कृति के नये सदर्भ

(च) भारतीय रूढ़ियो को तोडना . नई सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना की शुरूआत

(छ) लोक तत्त्व की स्थापना

(1) राष्ट्र की भावना

(2) जनतत्र का विचार

(3) समतापरक विचारधारा

द्वितीय अध्याय : पृष्ठ क्रमाक 55-93

द्विवेदी-युग का सूत्रपात : पूर्वपीठिका

(क) प्राचीनता और रूढि का खडन

(ख) नवीनता का उन्मेष

(ग) भाषा आदोलन खडीबोली (सरस्वती)

(घ) काव्य विषय मे परिवर्तन (पौराणिक और ऐतिहासिक की नयी विवृत्ति)

(ङ) द्विवेदी युगीन कवि (प्रमुख एव गौण) और उनका सामाजिक सरोकार

(च) मानवतावाद की स्थापना और लोक–मगल का उन्मेष

तृतीय अध्याय · पृष्ठ क्रमाक 94-165

लोक-मगल के तत्त्व और राष्ट्र-प्रेम का सश्लेष

(क) नवजागरण सास्कृतिक राष्ट्रीय आदोलन

(1) आर्य समाज

(2) विवेकानद

(3) श्री अरविन्द

(4) महात्मा गॉधी

(ख) राष्ट्र–प्रेम और लोक–हित

(1)ट्रस्टीशिप की भावना

(2) सर्वोदय

(3) दलितोद्धार

(4) समतामूलक समाज

(ग) राष्ट्र–प्रेम का नया स्वरूप

(1) एकता की भावना

(2) जन–जागरण.नरमपथी और गरमपथी

(3) राष्ट्र और लोक–मगल

चतुर्थ अध्याय : पृष्ठ क्रमाक 166-196

लोक-मंगलधारा का बहुमुखी विकास

(क) प्रेम सम्बन्ध और लोक–मगल

(ख) प्रकृति की नई प्रतीति और लोक–मगल

(ग) शिक्षा और लोक–मगल (नारी शिक्षा का विशेष सदर्भ)

(घ) साहित्यिक आलोचना मे मगलदृष्टि

पंचम अध्याय : पृष्ठ क्रमाक 197-225

समाज सुधार और लोक-मंगल

(क) छुआछूत और व्यक्ति की गरिमा

(ख) नारी का उत्थान मध्ययुगीन सामती रूढियो का खडन

(ग) शोषण की खिलाफ़त नवीन दृष्टि का उन्मेष

षष्ठ अध्याय · पृष्ठ क्रमाक 226-258

भारतीय धर्म और संस्कृति : लोक-मंगल के संदर्भ

(क) धर्म और सस्कृति का समन्वय

(धर्म की परिभाषा और उसकी व्यापकता)

(ख) व्यक्ति धर्म – सास्कृतिक तत्त्व

(ग) समष्टि धर्म – सास्कृतिक तत्त्व

(घ) व्यष्टि–समष्टि का समन्वय

सप्तम अध्याय : पृष्ठ क्रमाक 259-296

भारतीय मनुष्यत्व : गरिमा और लोक-मंगल का समन्वय

(क) महाकाव्य के नायक

(ख) काव्य मे उपेक्षित पात्रो का उन्मेष

(ग) जनसामान्य की प्रतिष्ठा

उपसंहार पृष्ठ क्रमाक 292-296

संदर्भ-ग्रंथ-सूची पृष्ठ क्रमाक 297-306

———————

प्रथम अध्याय

भारत और बीसवीं शताब्दी का पूर्वांश

भारत और बीसवीं शताब्दी का पूर्वांश ·

भारत मे अँग्रेज एक व्यापारी के रूप में आये थे, लेकिन अपनी महत्त्वाकाक्षा एव कूटनीतिक चालो तथा भारत की पारस्परिक फूट का लाभ उठाकर, उन्नीसवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक भारत के स्वयभू बन बैठे। पाश्चात्य साहित्य एव सस्कृति के सम्पर्क से भारतीय मनीषा मे भी हलचल हुई; उसके फलस्वरूप जो चेतना उद्‌भूत हुई, उसे पुनर्जागरण की सज्ञा दी गयी है। यह चेतना भारतीय एव पाश्चात्य सस्कृति की टकराहट की उपज थी। उन्नीसवी शताब्दी मे ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन जैसे सगठनो ने धार्मिक एव सामाजिक क्षेत्र मे व्याप्त कुरीतियो एवं अंधविश्वासो को दूर करने का प्रयास किया। इससे देश मे सास्कृतिक चेतना का विकास हुआ और जन–मानस नवीन चेतना एव स्फूर्ति से ओतप्रोत हुआ। भारत में ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ़ बडे स्तर पर भारतीयों का प्रथम विद्रोह 1857 ई० में प्रस्फुटित हुआ, जिसे ब्रिटिश इतिहासकारो एवं अधिकारियो ने 'सिपाही विद्रोह' की संज्ञा देकर उसके, मूल स्वरूप और महत्त्व को कम करने का प्रयास किया। उन्नीसवी शताब्दी मे राजनीतिक क्षेत्र मे सुधार के लिए प्रातीय एव क्षेत्रीय स्तर पर अनेक सगठन क्रियाशील थे। सन् 1885 ई० में भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस की स्थापना के साथ देश मे अखिल भारतीय स्तर पर एक राजनीतिक सगठन का प्रादुर्भाव हुआ। अखिल भारतीय कॉग्रेस की नीतियॉ उदारवादी थी तथा उसके नेता क्रमिक सुधार में विश्वास रखते थे। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में सुधार के लिए आवेदन–निवेदन की नीति को माध्यम बनाया, लेकिन उन्हें अपेक्षित लाभ नहीं मिल सका।

बीसवी शताब्दी के पूर्वाश मे राजनीतिक,सामाजिक, सास्कृतिक, आर्थिक आदि क्षेत्रों मे भारी परिवर्तन दिखाई पडता है। राजनीतिक क्षेत्र मे उदार राष्ट्रवाद के स्थान पर उग्र राष्ट्रवाद की भावना एव क्रातिकारी भावना उत्कट रूप धारण करती है। उग्र राष्ट्रवादियो ने जहॉ बहिष्कार, स्वदेशी, असहयोग आदि को माध्यम बनाकर ब्रिटिश सत्ता के खिलाफ़ सघर्ष किया, वही क्रातिकारी सगठनो ने हिसा का मार्ग अपनाया। बीसवी शताब्दी के दूसरे दशक की भारतीय राजनीति मे गॉधीजी का पदार्पण हुआ। उन्होंने सत्य एवं अहिसा के माध्यम से देश को स्वतत्र कराने के लिए सघर्ष प्रारम्भ किया। उन्नीसवी शताब्दी मे जो धार्मिक एव सामाजिक सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई थी, बीसवीं शताब्दी मे राष्ट्रवादियो एवं विभिन्न धार्मिक–सामाजिक सगठनो ने उसे गतिशीलता प्रदान की। पाश्चात्य संस्कृति एवं विश्व के विभिन्न देशो से जुडने के परिणामस्वरूप भारतीय शिक्षित वर्ग जनतात्रिक एव लोकतात्रिक विचार धाराओं से परिचित हुआ। उद्योग–धधो की स्थापना, वैज्ञानिक एव प्राविधिक शिक्षा, आधुनिक शिक्षा के प्रसार, प्रेस की स्थापना, यातायात एव सचार–व्यवस्था का विकास, पश्चिम के उदारवादी चितन का ज्ञान आदि के फलस्वरूप देश में एक नई चेतना का सचरण हुआ। जिससे सामाजिक, धार्मिक, सास्कृतिक आर्थिक आदि क्षेत्रो मे गतिशीलता आयी और देश में राष्ट्रीय भावना के विकास मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। भारत मे बीसवीं शताब्दी के पूर्वाश में घटित विभिन्न घटनाओ, परिवर्तनो आदि की पृष्ठभूमि और उसके प्रभाव को सामान्यत. निम्न शीर्षकों एवं उपशीर्षकों में विश्लेषित किया जा सकता है.–

(क) तत्कालीन परिवेश :

(1) राजनीतिक :

उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक एव सामाजिक नवजागरण से देश मे सांस्कृतिक एव राष्ट्रीय चेतना का विकास हुआ। सन् 1885 ई० मे भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस की स्थापना, भारतीय राष्ट्रीय आदोलन का प्रथम चरण था। इस प्रथम चरण के राष्ट्रीय आदोलन का नेतृत्व सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दादाभाई नौरोजी, रानाडे, गोपालकृष्ण गोखले, फिरोजशाह मेहता, के०टी० तैलग सरीखे राष्ट्रवादियो ने किया। भारतीय राष्ट्रीय आदोलन के इतिहास मे इन्हें उदारवादी कहा गया । उन्हे यह विश्वास था कि ब्रिटिश शासन देश को स्वतंत्र, प्रगतिशील, प्रजातात्रिक एव राष्ट्रीय अस्तित्व प्रदान करेगा । इन्होने "इडियन काउसिल का विस्तार और आई०सी०एस० के लिए एक साथ ही परीक्षा की व्यवस्था (सन् 1885 ई० के कॉग्रेस अधिवेशन मे पारित प्रस्ताव), कार्यकारिणी और न्यायिक व्यवस्था का पार्थक्य (1886 ई०) आर्म्स ऐक्ट्स और रूल्स का सशोधन (1887 ई०), तकनीकी और औद्योगिक विकास (1888 ई०), भू-राजस्व नीति का सुधार (1889 ई०), ... इडियन युनिवर्सिटीज ऐक्ट और आफीशियल सिक्रेट्स ऐक्ट की समाप्ति (1903 ई०), स्थानीय स्वायत्त शासन की दिशा मे प्रगति (1905 ई०) क्रिमिनल लॉ ऐमेन्डमेन्ट एड न्यूज पेपर्स ऐक्ट की समाप्ति (1908 ई०) आदि।" [1] की मॉग की, परन्तु सरकार ने इस ओर ध्यान नहीं दिया । इसका परिणाम यह हुआ कि लोगो में उदारवादियों के आवेदन-निवेदन की नीति के प्रति अविश्वास का भाव पैदा होने लगा ।

1.ए० आर देसाई भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 273

बीसवी शताब्दी का पूर्वाश भारतीय राजनीति मे बदलाव का युग था । कॉग्रेस नेतृत्व के आवेदन–निवेदन की नीति की असफलता ने देश के अदर और कॉग्रेस के भीतर असतोष को जन्म दिया । उदारवादियो की कार्य–प्रणाली के विषय मे लाला लाजपतराय ने लिखा है कि "बीस वर्ष तक रियायतो तथा दुखो को दूर करने मे असफल सघर्ष के बाद इन्हे रोटी के बदले पत्थर ही प्राप्त हुए ।"[1] इस प्रकार कॉग्रेस की असफलता, राष्ट्रीय एव सास्कृतिक चेतना और ब्रिटिश शासन की नीतियो ने उग्रवाद को जन्म दिया । उग्र विचारधारा के नेताओ ने निम्न–मध्यमवर्ग, विद्यार्थियो, मजदूरो और किसानो के पास अपील लेकर गये । उग्र विचारधारा की प्रेरणा का स्रोत भारतीय सस्कृति थी। उन्नीसवी शताब्दी के नवजागरण के परिणामस्वरूप भारतीयो मे जिस सांस्कृतिक चेतना का विकास हुआ था, वह अब राजनीतिक चेतना के रूप मे प्रतिफलित हो रही थी । उसके फलस्वरूप राष्ट्रीय नेताओ ने स्वशासन, स्वराज्य आदि की मॉग की। बाल गगाधर तिलक ने स्पष्ट शब्दों में "स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, मै इसे लेकर रहूँगा।" की घोषणा की। उग्र विचारधारा का पोषण बाल गगाधर तिलक, विपिनचंद्र पाल, अरविंद घोष, लाला लाजपतराय आदि ने किया। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे राष्ट्रवादियो ने भारतीय अर्थव्यवस्था का जो औपनिवेशिक विश्लेषण प्रस्तुत किया उससे ब्रिटिश सरकार का औपनिवेशिक चरित्र उजागर हुआ । देश की जनता मे यह भावना प्रबल होने लगी की उनकी दुर्दशा का मूल कारण

---

1. लाला लाजपतराय उद्धृत . आधुनिक भारत का इतिहास (सपादक, प्रो० आर०एल० शुक्ल), पृष्ठ 402

ब्रिटिश शासन ही है और इससे मुक्ति का एक ही मार्ग है – स्वशासन ।

बीसवी शताब्दी में लॉर्ड कर्ज़न की नीतियो जैसे–विश्वविद्यालय अधिनियम, ऑफीशियल सेक्रेट्स अधिनियम, और बगाल विभाजन आदि की देश मे तीखी प्रतिक्रियायें हुईं। बंग–भग विरोधी आदोलन का नेतृत्व प्रारम्भ मे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी जैसे उदारवादी राष्ट्रवादियो के हाथ मे था, बाद मे इसकी बागडोर विपिनचद्र पाल, अश्विनीकुमार दत्त अरविन्द घोष जैसे उग्र राष्ट्रवादियो के हाथ मे आया। उन्होने स्वदेशी, बहिष्कार, हडताल आदि द्वारा ब्रिटिश सरकार के खिलाफ अपना विरोध प्रकट किया। स्वदेशी के बारे मे लाजपतराय ने कहा कि "स्वदेशी आदोलन से हमे आत्मसम्मान, आत्मविश्वास, आत्मनिर्भरता और पुरूषोचित गुण मिलेगे । ...... सारे धार्मिक और साम्प्रदायिक मतभेद के बावजूद हम स्वदेशी आंदोलन के माध्यम से एकताबद्ध हो सकेगे । मेरे ख्याल से, स्वदेशी को सारे संयुक्त भारत का सम्मिलित धर्म होना चाहिए ।"[1] इस प्रकार उग्र राष्ट्रवादियो ने स्वदेशी के माध्यम से देश में राष्ट्रीयता की भावना पैदा करने का प्रयत्न किया ।

विवेच्य काल की अन्य घटनाओं मे 1905 ई० मे जापान के हाथो रूस की हार ने एशियाई देशो मे आत्माभिमान की भावना मे वृद्धि की। मुस्लिम लीग की स्थापना, से सांप्रदायिकता का उद्‌भव हुआ। ब्रिटिश सरकार ने मार्ले–मिटो सुधार द्वारा राष्ट्रवादियो का मन जीतने का प्रयास किया । इसके द्वारा सरकार ने केन्द्रीय और प्रातीय विधायिका

---

1. लाला लाजपतराय उद्धृत . भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि (ए० आर० देसाई), 279

परिषदो मे सीमित निर्वाचित सदस्यों का विधान किया, यद्यपि ये परिषदे केवल राय दे सकती थीं, इनके पास कोई निर्णायक शक्ति नही थी। गरमदल और नरमदल के वैचारिक मतभेद के परिणामस्वरूप 1907 ई० में कॉग्रेस का विभाजन हो गया। अखिल भारतीय हिन्दू महासभा की स्थापना ने हिन्दुत्व की बात करके साप्रदायिकता का पोषण किया। श्री अरविन्द द्वारा भारतीय राजनीति से संन्यास लेकर आध्यात्मिक क्षेत्र मे पदार्पण, 1916 ई० मे एनीबेसेट द्वारा होमरूल की स्थापना और स्वशासन की मॉग, लखनऊ समझौता जिसमे कॉग्रेस और मुस्लिम लीग एक मच पर आये और इसके साथ ही गरमदल और नरमदल की एकता का मार्ग भी प्रशस्त हुआ। जलियॉवाला बाग हत्याकाड जिसमे ब्रिटिश अधिकारी जनरल डायर की क्रूरतापूर्ण कार्यवाही ने सैकडो निहत्थो को मौत के घाट उतारा। मित्र राष्ट्रों द्वारा टर्की के प्रति किये गये दुर्व्यवहार से भारतीय मुसलमानों मे आक्रोश पैदा हुआ, जिसके परिणामस्वरूप खिलाफ़त आंदोलन का जन्म हुआ। ब्रिटिश सरकार द्वारा गॉधीजी की मॉगो को अस्वीकार करने के फलस्वरूप पूरे देश में असहयोग आंदोलन चलाया गया । जिसमें जनसामान्य की भागीदारी उल्लेखनीय रही । इस प्रकार गॉधीजी ने राष्ट्रीय आंदोलन को जन सामान्य से जोड़कर उसे व्यापक आधार प्रदान किया । ख़िलाफ़त आदोलन के कारण मुसलमान राष्ट्रीय आदोलन के करीब आये। बीसवी शताब्दी की अन्य प्रमुख घटनाओ मे स्वराज पार्टी की स्थापना, समाजवादी और साम्यवादी विचारधारा का विकास, साइमन कमीशन का बहिष्कार, सन् 1929 ई० के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज्य को लक्ष्य घोषित करना आदि हैं।

बीसवी शताब्दी के प्रथम दशक मे क्रातिकारी आदोलन

का उदय भारतीय स्वतन्त्रता आदोलन के इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। महाराष्ट्र मे 'अभिनव भारत' और बंगाल की 'अनुशीलन समिति' प्रमुख क्रातिकारी सगठन थे । बगाल–विभाजन के बाद बगाल मे क्रातिकारी अधिक सक्रिय हुए बम और पिस्तौल क्रांतिकारियो के प्रमुख हथियार थे। ब्रिटिश सरकार की नीतियो एव अत्याचारों के विरोध मे क्रातिकारियो ने भारी सख्या मे पुलिस अफसरो, मजिस्ट्रेटो, मुखविरो और सरकारी वकीलो की हत्या की । इन साहसिक कार्यों द्वारा जहॉ उन्होने ब्रिटिश शासन को चुनौती दी, वही देशवासियों के सामने त्याग और बलिदान का आदर्श प्रस्तुत किया । बीसवी शताब्दी मे भारतीयो ने विदशो मे भी कई क्रातिकारी सगठन बनाये । श्यामजी कृष्ण वर्मा ने 1905 ई० मे लंदन में 'इंडियन होमरूल सोसाइटी ' और कुछ दिनो बाद हाईगेट में 'इंडिया हाउस' की स्थापना की । दोनो क्रातिकारी केन्द्र थे। यहॉ क्रातिकारी साहित्य और हथियार तैयार किये गये, जिन्हे अवैध तरीके से भारत भेज करके क्रातिकारी आंदोलन को सक्रिय बनाया । लाला हरदयाल ने 1914 ई० मे सैन्फ्रांसिस्को मे गदर पार्टी की स्थापना कर विदेशो मे भारतीयो की आवाज को बुलन्द किया । 'इंडिया हाउस' द्वारा अवैध ढ़ग से भेजे गये एक पैंफलेट का नाम बदेमातरम् था, जिसमें राजनीतिक आतकवाद की भूमिका के बारे मे कहा गया : " हिन्दुस्तानी और ॲंग्रेज हर तरह के सरकारी अधिकारी को आतकित किए रहो, और तब अत्याचार के समूचे तंत्र का विनाश समीप होगा .... अलग–अलग हत्याओं का तरीका अफसरशाही को क्रियाविहीन बनाने और लोगो को जगाने के सबसे अधिक कारगर सभव तरीका है। "[1]

---

1. ए० आर० देसाई . भारतीय राष्ट्रवाद की समाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 287

क्रातिकारी आदोलन का एक महत्वपूर्ण पहलू है, स्त्रियो की उसमे सक्रिय भागीदारी। बगाल की प्रीतिलता वाडेकर और कल्पना दत्त का क्रांतिकारी गतिविधियो में भाग लेना उल्लेखनीय है।

बीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे घटित घटनाओं से स्पष्ट है कि इस अवधि मे राष्ट्रवाद की कई प्रवृत्तियो का विकास एक साथ हुआ। जहाँ कॉग्रेस के उग्र विचारधारा के नेताओ ने बहिष्कार, स्वदेशी आदोलन, असहयोग, हड़ताल आदि द्वारा ब्रिटिश शासन का विरोध किया वही क्रांतिकारियो ने हत्या, लूट, डकैती, बम–विस्फोट आदि द्वारा सरकार को आतकित करके अपने उद्देश्यों और लक्ष्य को अभिव्यक्ति दी । गॉधीजी ने सत्य और अहिसा के माध्यम से राजनीतिक लडाई लडी । देश के बाहर के क्रातिकारी सगठनों ने क्रातिकारी गतिविधियॉ चलाने मे सहायता की । स्वतन्त्रता आदोलन के दमन के लिए ब्रिटिश सरकार ने अपनी शक्ति और सत्ता का उपयोग क्रूरतम् ढंग से किया । सरकार ने 'बॉटो और राज्य करो' की कूटनीति द्वारा भारतीय जनमानस को वर्ग, जाति, संप्रदाय, धर्म आदि के आधार पर विभाजित करके देश में विद्वेष, तनाव एवं साम्प्रदायिकता की भावना को प्रोत्साहित करके राष्ट्रवादी आंदोलन को प्रभावित करने का प्रयास किया , जिसका अत भारत–पाकिस्तान विभाजन के रूप मे सामने आया ।

बीसवी शताब्दी की राजनीतिक घटनाओं और गतितिधियो ने देश की जनता को राष्ट्रवाद और देश–भक्ति की भावना से ओत प्रोत किया । उन्नीसवी शताब्दी का भारतीय स्वतन्त्रता आदोलन मध्यम वर्ग तक ही सीमित था । बीसवी शताब्दी में वह दिनोंदिन अधिक विस्तार पाता गया जिससे उसमें जन सामान्य की भागीदारी सुनिश्चित हुई । सबसे

महत्त्वपूर्ण था स्त्रियो का स्वाधीनता सघर्ष मे सहभागिता । स्त्रियो ने स्वदेशी, असहयोग, धरना, प्रदर्शन एव क्रांतिकारी गतिविधियो में उत्साह के साथ भाग लिया । उग्र राजनीतिक विचार धारा ने लोगो मे अपनी सस्कृति की महत्ता का भाव जगाया, जिससे उनकी हीन भावना दूर हुई और वे स्वतन्त्रता आदोलन मे सक्रिय हुए।

(2) सामाजिक :

उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक एव सामाजिक सुधार के लिए प्रयास करने वाले प्रमुख संगठनों में ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि उल्लेखनीय है। इन्होने हिन्दू समाज मे व्याप्त सामाजिक एवं धार्मिक बुराइयो जैसे – बाल विवाह, पर्दाप्रथा, सती प्रथा, विधवा विवाह, अस्पृश्यता, छुआछूत जाति–पॉति आदि का विरोध किया । इन धार्मिक एव सामाजिक सगठनों ने स्त्री–शिक्षा पर अधिक बल दिया । इस संदर्भ में ईश्वरचंद्र विद्यासागर का कार्य उल्लेखनीय है। उन्नीसवीं शताब्दी के सुधार आदोलनों का मूल स्वर स्त्री–दशा मे सुधार करना था । राजा राममोहनराय के प्रयास से सरकार ने 1829 ई० मे सती प्रथा पर प्रतिबंध लगाकर उसे अवैधानिक घोषित कर दिया । ईश्वरचंद्र विद्यासागर के प्रयास से 1856 ई० में विधवा–विवाह को कानूनी मान्यता मिली । इन सुधारवादियो ने जिस प्रकार से सामाजिक परिष्कार के कार्य में अपनी प्रतिबद्धता दिखाई, उसकी समाज मे सकारात्मक प्रतिक्रिया हुई ।

बीसवीं शताब्दी मे भी सामाजिक सुधार की प्रक्रिया जारी रही । इस सम्बन्ध में प्रो० विपिनचंद्र ने लिखा है "उन्नीसवीं–बीसवीं शताब्दी के समाज सुधार के आंदोलनों ने मुख्यत. दो लक्ष्यों को पूरा करने

का प्रयास किए (अ) स्त्रियो की मुक्ति तथा उनको समान अधिकार देना तथा (ब) जाति प्रथा की जड़ताओ को समाप्त करना, खासकर छुआछूत की खात्मा "[1] इनमे प्रथम उन्नीसवी शताब्दी मे प्रयत्नो का मुख्य केन्द्र बना रहा और दूसरा बीसवी शताब्दी मे ।

बीसवी शताब्दी के पूर्वाश के सामाजिक सुधार आदोलनो की विशेषता यह थी कि अखिल भारतीय और प्रादेशिक स्तर पर बहुत सी सस्थाएँ इस उद्देश्य से बनी । इस सन्दर्भ मे बम्बई समाज सुधारक सभा, हिन्दू सम्मेलन, दक्षिण भारतीय उदारवादी सघ, श्री नारायण धर्म परिपालन योगम्, बहिष्कृत हितकारिणी सभा, अखिल भारतीय महिला सघ, अखिल भारतीय दलित जातीय सभा आदि उल्लेखनीय हैं। इन सस्थाओं ने भिक्षावृत्ति, मद्य–निषेध, पर्दा प्रथा आदि बुराइयो एवं कुरीतियो का विरोध किया, परन्तु स्त्रियो और शूद्रों की सामाजिक अवस्था सुधारने के प्रश्न अधिक महत्त्वपूर्ण रहे। "भारतीय राष्ट्रवादी आदोलन के गोखले, गॉधी आदि उदारवादी नेता और उनके साथ वामपथी राजनीतिज्ञों का यह मानना था कि, चूँकि ब्रिटिश सरकार से स्वाधीनता या स्वराज्य की उनकी मॉग प्रजातात्रिक है, इसलिए भारतीयों को अपने सामाजिक जीवन मे प्रजातत्र के आदर्श का अनुकरण करना चाहिए ।" [2] लाला लाजपतराय मे राष्ट्र हित के सन्दर्भ मे स्त्रियो का उन्नयन आवश्यक समझा । उन्होने समाज मे नारी प्रतिष्ठा के लिए लोगो से अपील करते हुए कहा कि – "स्त्रियो का प्रश्न पुरूषो का प्रश्न है, क्योकि दोनों का एक दूसरे पर असर पड़ता है ।

---

1. प्रो० विपिनचद्र : आधुनिक भारत, पृष्ठ 161

2. ए० आर० देसाई भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 222

चाहे भूतकाल हो या भविष्य, पुरूषो की उन्नति बहुत कुछ स्त्रियो की उन्नति पर निर्भर है। .. इसलिए पुरूषो से मै कहता हूँ कि तुम स्त्रियो को अपने दासत्व से पूर्णत मुक्त होने दो, उन्हे अपने बराबर समझो ।"[1] गॉधीजी का विचार था कि जब नर और नारी के रचना तत्त्व में वस्तुत कोई भेद नही है, तो नर के लिए जो सहज और सम्भाव्य है, वह नारी के लिए भी होना चाहिए। यह सच है कि नारी पुरूष की अपेक्षा शारीरिक शक्ति मे कम है, किन्तु उसके पास इस शक्ति से भी श्रेष्ठ मातृत्व के साथ त्याग, क्षमा, सहनशीलता, वात्सल्य एवं सेवाभाव ऐसे गुण है, जिसके कारण नारी नर से भी श्रेष्ठ हो जाती है। गॉधीजी ने स्त्रियो को राष्ट्रीय आदोलन मे भाग लेने के लिए आमंत्रित करते हुए कहा कि – "स्त्रियों को शराब, अफीम और विदेशी कपड़े की दुकानो पर धरना देना चाहिए ।" [2] इसका प्रभाव यह हुआ कि स्त्रियॉ स्वतन्त्रता आंदोलन में अपने पुत्र, पति तथा भाई को जेल भेजकर स्वयं पिकेटिंग, जुलूसों और सभाओ में सक्रिय योग देने लगी । इस प्रकार घरों की चहार–दीवारी में कैद स्त्रियॉ घर से बाहर आईं, राष्ट्रीय जागृति और देश –हित के लिए अनेक यातनाऍ सही । मद्यपान के सम्बन्ध में गॉधीजी का मानना था कि मद्यपान से व्यक्ति असयमी, अनुशासनहीन, नीति और अनीति का विवेक न करने वाला तथा चरित्र भ्रष्ट हो जाता है। गॉधीजी ने शराब की दुकानो पर धरना दिया और पिकेटिग की, जिसका सकारात्मक परिणाम हुआ । गॉधीजी ने अपने

---

1. लाला लाजपतराय उद्धृत आधुनिक हिन्दी काव्य मे नारी भावना (डॉ० शैल कुमारी), पृष्ठ 41

1. बी० पट्टाभि सीता रमैया : कॉग्रेस का इतिहास भाग – 3, पृष्ठ 352

राष्ट्रीय आदोलन के कार्यक्रमो मे अस्पृश्यता निवारण को प्रमुख स्थान दिया । अपनी पद यात्राओ के समय देश के गॉव–गॉव मे घूमते हुए उन्होने खादी और साम्प्रदायिक एकता के साथ हरिजनोद्धार पर विशेष बल दिया । इस प्रकार गॉधीजी ने स्त्री दशा में सुधार, मद्य–निषेध, अछूतोद्धार को राष्ट्रीय आदोलन के अभिन्न अग के रूप मे प्रस्तुत किया । सन् 1928 ई० मे भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस ने भी अछूतोद्धार के विषय मे एक प्रस्ताव पारित किया जिसमे कहा गया कि "जाति–प्रथा हिन्दू जाति के एकीकरण में भारी बाधा है। अत. उसे समाप्त किया जाना चाहिए । इसके लिए अन्तर्जातीय विवाह होने चाहिए, छुआछूत तथा अन्य बंधन समाप्त होने चाहिए।"[1] साम्यवादियों ने भी वर्ग विभेद समाप्त कर समानता पर आधारित समाज की बात की ।

भारत में अॅग्रेज़ी शासन काल मे स्थापित नये अर्थतत्र, नयी राज्य व्यवस्था, नये प्रशासन तंत्र और नयी शिक्षा के परिणामस्वरूप अनेक नये सामाजिक वर्गों का उदय हुआ । इनमे कृषि के क्षेत्र मे ब्रिटिश सरकार द्वारा बनाया ज़मीदार वर्ग, भू–स्वामी, जमीदार और भूस्वामियो के अधीन पट्टेदार, काश्तकार मालिको का वर्ग, खेतिहर मज़दूर, व्यापारियों का नया वर्ग, सूदखोरों और महाजनो का नया वर्ग आदि प्रमुख थे। नगरों मे वाणिज्यिक और वित्तीय पूॅजीपतियो और उद्योगपतियो का वर्ग, विभिन्न उद्योगों मे कार्यरत आधुनिक मज़दूर वर्ग, छोटे व्यापारियों और दुकानदारो का वर्ग, पेशेवर वर्ग और टेक्नीशियन, डॉक्टर, वकील, शिक्षक, प्रोफ़ेसर,

---

1. बी० एल० ग्रेवर : आधुनिक भारत का इतिहास . एक नवीन मूल्यांकन पृष्ठ 356

पत्रकार, प्रबन्धक आदि वर्गों का उदय हुआ । नये भारतीय समाज की एक विशिष्टता यह थी कि, ये नये सामाजिक वर्ग राष्ट्रीय सगठन बना रहे थे, और अपने विभिन्न स्वार्थो की पूर्ति मे लगे थे । बीसवी शताब्दी के पूर्वांश तक प्राय सभी वर्गो के राष्ट्रीय या प्रातीय सगठन बन गये थे। इनमे अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कॉग्रेस, किसानो के सगठन, आल इडिया वीमन्स कॉफ्रेन्स, आल इडिया मेडिकल प्रैक्टिशनर्स एसोसिएशन, आल इडिया जर्नलिस्ट और एडिटर्स कॉफ्रेन्स, इडियन चेम्बर ऑफ प्रिन्सेज आदि उल्लेखनीय हैं। इन नये वर्गो के प्रबुद्ध तत्वो ने यह शीघ्र ही समझ लिया कि उनकी अपनी प्रगति समस्त भारतीय समाज की प्रगति से जुडी हुई है, और उन्होने सामाजिक परिवर्तन में राजनीतिक सत्ता की भूमिका को भी समझा।

प्रगतिशील नये सामाजिक वर्गो का कार्यक्रम पृथकत या समग्रत राष्ट्रवादी और प्रगतिशील था । आधुनिक शिक्षा और सस्कृति का प्रसार, व्यापक उद्योगीकरण, भूमि सम्बन्धों का परिशोधन एव कृषि सुधार व्यवस्था का जनतत्रीकरण, स्वाधीमता आदि मॉगों से इनका कार्यक्रम बना था और ऐसा विचार था कि इन मॉगो की पूर्ति के द्वारा समृद्ध राष्ट्रीय अस्तित्व की स्थापना हो सकेगी । इन वर्गो का लक्ष्य था भारतीय जनता के लिए उच्चतर भौतिक और सास्कृतिक अस्तित्व की स्थापना, उनकी प्रेरणा थी जनतात्रिक, सामाजिक एव राष्ट्रीय सरचना, समृद्ध अर्थव्यवस्था, संपन्न प्रगतिशील सांस्कृतिक जीवन इत्यादि की आकाक्षा ।

अत. कहा जा सकता है कि बीसवी शताब्दी के पूर्वाश की सामाजिक जागरूकता के फलस्वरूप स्त्रियों, दलितो अछूतों मे अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता आयी । इसके पीछे ब्रिटिश सरकार द्वारा

स्थापित नये अर्थतंत्र, नया प्रशासनतत्र, नयी राज्यव्यवस्था, नयी शिक्षा व्यवस्था आदि की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। इस जागरूकता के परिणाम स्वरूप लोगो ने जहाँ अपने हित के बारे में सोचा वहीं राष्ट्रीय समस्याओ से भी जुडे । यही कारण है कि बीसवी शताब्दी के पूर्वांश मे राष्ट्रवादी नेताओ ने विभिन्न सामाजिक वर्गो की समस्याओ को सरकार के सामने रखा । इस प्रकार सामाजिक सुधार की प्रक्रिया भारतीय स्वतंत्रता आदोलन का अभिन्न अग बना रहा । बीसवी शताब्दी का राष्ट्रवादी आदोलन एक ही साथ दो मोर्चों पर सघर्षरत था, प्रथम ब्रिटिश औपनिवेशिक सत्ता से मुक्ति और दूसरा समाज के एक बडे हिस्से को युगो से चली आ रही सामाजिक एवं धार्मिक रूढियों की जकडता से मुक्ति दिलाना ।

(3) साहित्यिक :

नयी पाश्चात्य शिक्षा व्यवस्था के प्रसार और नवीन धार्मिक आदोलनो का एक महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि ब्रिटिश युग मे हिन्दी आदि विविध भाषाओं में नवीन साहित्य का निर्माण प्रारम्भ हुआ । मुद्रण कला के प्रवेश के कारण साहित्य की वृद्धि में बहुत अधिक सहायता मिली, और भारी सख्या में नयी पुस्तके और पत्र–पत्रिकाएँ बाज़ार मे बिकने के लिए आने लगी । भारत में नवजागरण के परिणामस्वरूप हिन्दी, बॅगला, उर्दू आदि में गद्य ग्रंथो की रचना की प्रवृत्ति बढ़ गयी, जिसने नवजागरण मे बहुत सहायता पहुँचायी । उन्नीसवी शताब्दी मे बगाल मे अनेक ऐसे लेखक हुए, जिन्होंने अनेक अॅग्रेजी पुस्तकों का बॅगला मे अनुवाद किया, और कुछ स्वतन्त्र एव मौलिक पुस्तको की भी रचना की। इन लेखकों में कृष्णमोहन बनर्जी, राजेन्द्रलाल मित्र, प्यारेचन्द्र मित्र, ईश्वरचंद्र विद्यासागर आदि उल्लेखनीय हैं। इनके प्रयत्न से बगाल के लोगो को

पाश्चात्य विचारधारा से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला । बगाल के अनेक साहित्यकार बॅगला भाषा मे नवीन शैली के काव्य, नाटक एव उपन्यास लिखने मे प्रवृत्त हुए । इनमे माइकेल मधुसूदन दत्त, दीनबन्धु मित्र, बंकिमचद्र चट्टोपाध्याय प्रमुख हैं। बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय का 'आनद मठ' ने बगाल मे देशभक्ति और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावनाओ को विकसित करने मे बहुत सहायता की । ब्रिटिश शासन का अत कर राष्ट्रीय स्वतत्रता की स्थापना के लिए, जो क्रातिकारी आदोलन बगाल मे शुरू हुआ उसकी प्रेरणा इसी 'आनन्द मठ' से ली गयी थी। दीनबधु मित्र नाटककार थे, और उन्होने बॅगला भाषा मे आधुनिक नाटक लिखने की परम्परा का प्रारम्भ किया । उन्होने 'नीलदर्पण' नाटक मे नील की खेती करने वाले किसानो पर अँग्रेज़ बागान मालिको द्वारा किये जा रहे अत्याचारो का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया है। बॅगला साहित्यकारो मे अक्षयकुमार दत्त, राजनारायण बोस, हेमचद्र बनर्जी, नवीनचंद्र सेन के नाम भी उल्लेखनीय हैं। बगाल की साहित्यिक प्रतिभा का सर्वोत्कृष्ट रूप रवीन्द्रनाथ टैगोर के रूप मे प्रकट हुआ, जिनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'गीताजली' को 1913 ई० मे नोबेल पुरस्कार मिला ।

बॅगला भाषा के समान हिन्दी मे भी ब्रिटिश युग मे साहित्य का विकास हुआ । उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ में ही मुंशी सदासुखलाल, इशा अल्ला खॉ आदि ने हिन्दी में गद्य साहित्य लिखना शुरू कर दिया था । स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' को हिन्दी मे लिखकर हिन्दी गद्य साहित्य के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया । उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध के हिन्दी लेखको में पण्डित श्रद्धाराम फिल्लौरी, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद, राजा

लक्ष्मण सिह, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट, बदरीनारायण चौधरी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनमे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का स्थान सर्वोच्च है। उन्होने अनेक सस्कृत नाटको का हिन्दी मे अनुवाद किया और बहुत से मौलिक ग्रथो की रचना की । इनकी रचनाओ मे तत्कालीन भारत की स्थिति का चित्रण मिलता है। इनकी रचनाओं ने लोगो की चेतना को परिष्कृत करने मे महत्त्वपूर्ण कार्य किया । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के बाद हिन्दी साहित्य की चौमुखी उन्नति हुई । साहित्यकारो ने बँगला, सस्कृत अँग्रेज़ी के ग्रंथों का अनुवाद करके और मौलिक ग्रथ लिखकर हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि की । बीसवी शताब्दी के पूर्वाश मे नाटक, कहानी, उपन्यास, निबध, काव्य आदि सभी प्रकार के साहित्य हिन्दी मे प्रकाशित हुए । बीसवीं शताब्दी के पूर्वाश के साहित्यकारो में किशोरीलाल गोस्वामी, महावीरप्रसाद द्विवेदी, बालमुकुन्द गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, रूपनारायण पाण्डेय, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध', श्रीधर पाठक, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', जयशंकर प्रसाद, प्रेमचन्द्र आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन्होंने अपनी रचनाओं मे सामाजिक समरसता और राष्ट्रीय एकता की भावना को संस्थापित किया । इसी को लक्ष्य करके डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि "हिन्दी कविता को श्रृंगारिकता से राष्ट्रीयता, जड़ता से प्रगति तथा रूढि से स्वच्छन्दता के द्वार पर ला खडा करने वाले बीसवीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों का समाधिक महत्व है।" [1]

गुजराती, मराठी, उर्दू, तमिल आदि अन्य भाषाओं की

---

1. संपादक डॉ० नगेन्द्र . हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 496

भी ब्रिटिश युग मे बहुत उन्नति हुई । हाली, मुहम्मद इक़बाल, अकबर इलाहाबादी, सागर निजामी आदि कवियों ने उर्दू मे इस प्रकार के काव्य की रचना की, जिससे भारत के नवजागरण मे बहुत सहायता मिली । 'दिनकर' ने लिखा है कि "ज़मील मज़हरी धर्म के बन्धन को स्वीकार करते है, किन्तु उनका इस्लाम उनकी राष्ट्रीयता का बाधक नही है। उलटे वे मुसलमानो को मुसलमान रहते हुए भी, तूर से ऑखे फिराकर हिमालय की उपासना करने का सन्देश देते हैं ।" [1] इक़बाल का 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तॉ हमारा' गीत ने उत्तर भारत की जनता मे राष्ट्रीय चेतना को उत्पन्न करने मे सहायता की । मराठी भाषा के साहित्यकारो मे लोकमान्य तिलक, केलकर, फड़के, हरिनारायण आप्टे आदि के नाम प्रसिद्ध है। इसी प्रकार गुजराती, तेलगू आदि भाषाओं मे नये साहित्य का निर्माण हुआ । भारत के इस नवीन साहित्य में न निराशा की भावना है, और न ही जनता को मोह निद्रा मे सुलाने वाले विलास की अभिव्यक्ति । स्त्रियो की हीनदशा, अछूतों की समस्या, भारत का प्राचीन गौरव, ऊँच–नीच की भावना और जाति–पॉति की बुराई, ज़मीदारी प्रथा के दोष अँग्रेजो की शोषण नीति आदि को साहित्यकारो ने अपना वर्ण्य विषय बनाया । विदेशी शासन के विरूद्ध भावना उत्पन्न करने में बीसवीं शताब्दी के साहित्य ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी ।

इस सम्पूर्ण विवेचन के अन्त मे कहा जा सकता है कि बीसवीं शताब्दी के पूर्वाश का साहित्य अपने युग की समसामयिक देन है। इस युग के साहित्यकारो ने देश मे हो रहे सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन

---

1 . रामधारी सिह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 721

और राष्ट्रीय आदोलनो को अपनी रचनाओ में अभिव्यक्ति दी । इन्होने सांप्रदायिक एकता एव सामाजिक समरसता पर अधिक जोर दिया, जिससे राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास हो; क्योकि बिना वैचारिक समानता के राष्ट्र की शक्ति छिन्न–भिन्न हो जाती है ।

(ख) शिक्षा का प्रसार :

उन्नीसवी शताब्दी मे ईस्ट इडिया कम्पनी की सरकार द्वारा शिक्षा प्रसार का कार्य प्रारम्भ किया गया । सन् 1835 ई० मे कम्पनी की सरकार ने लॉर्ड मैकाले के प्रस्ताव को स्वीकार करते हुए;अँग्रेजी को शिक्षा का माध्यम स्वीकार कर लिया । शिक्षा प्रसार के क्षेत्र मे 1854 ई० मे 'चार्ल्स वुड का डिस्पैच' एक महत्वपूर्ण कदम था, जिसमें भारत की भावी शिक्षा के लिए एक वृहत् योजना बनाई गयी, जिससे अखिल भारतीय आधार पर शिक्षा की नियामक पद्धति का गठन किया गया । इसे प्रायः 'भारतीय शिक्षा का मैग्नाकार्टा' कहा जाता है । इसमे "पाश्चात्य शिक्षा का प्रसार अर्थात् सरकार की कला, विज्ञान, दर्शन और साहित्य का प्रसार करने, ग्रामो मे देशी भाषाई प्राथमिक पाठशालाएँ स्थापित करने और उनसे ऊपर जिला स्तर पर ऐंग्लो वर्नेकुलर हाईस्कूल और सम्बन्धित कॉलेज खोलने, ... कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में विश्वविद्यालय स्थापित करने, व्यावसायिक और तकनीकी विद्यालयो की स्थापना पर अधिक बल देने .... महिला शिक्षा का समर्थन आदि की सिफारिशें की गयी ।"[1] इसके परिणामस्वरूप 1855 ई० मे लोक शिक्षा विभाग की स्थापना,

---

1. बी० एल० ग्रोवर . आधुनिक भारतीय इतिहास . एक नवीन मूल्याकन, पृष्ठ 356

कलकत्ता, बम्बई और मद्रास मे विश्वविद्यालयो की स्थापना, श्रीमती बेटन के प्रयत्नों से कुछ महिला पाठशालाओ की स्थापना आदि उल्लेखनीय कार्य हुए। वुड डिस्पैच की समीक्षा के लिए 1882 ई० मे 'हण्टर आयोग' का गठन किया गया । अपने प्रतिवेदन मे उसने प्राथमिक शिक्षा के सुधार और विकास पर बल देने, साहित्यिक और व्यावसायिक शिक्षा के लिए अलग–अलग विद्यालयो की स्थापना करने, निजी प्रयत्नो को शिक्षा के क्षेत्र मे पूर्णरूपेण बढ़ावा देने, प्रेसीडेसी नगरो के अतिरिक्त अन्य सभी स्थानो पर महिला शिक्षा मे पर्याप्त प्रबन्ध न होने पर ख़ेद प्रकट करना आदि का उल्लेख किया । आयोग के सुझावो के पश्चात आने वाले वर्षों मे माध्यमिक कॉलेज और विश्वविद्यालयीन शिक्षा का अभूतपूर्व विस्तार हुआ । बीसवी शताब्दी के पूर्वांश तक देश भर में शिक्षण सस्थाओ का प्रसार काफ़ी हो चुका था । शिक्षण सस्थाओ में राजनीतिक बेचैनी की क्रिया–प्रतिक्रिया हुई । इस सम्बन्ध में सरकार का विचार था कि निजी प्रबन्ध के अधीन संस्थाओ मे शैक्षणिक स्तर गिरे हैं और यहॉ बहुत अधिक अनुशासनहीनता है। सरकार का यह भी मानना था की ये सस्थाएँ राजनीतिक क्रातिकारियों को उत्पन्न करने के लिए कारखानें मात्र बन गये हैं। इस सम्बध में ए० आर० देसाई ने लिखा है कि "भारत में बहुतेरे अफ़सरो को सचमुच यह विश्वास था कि शिक्षा से अशांति बढ़ेगी और प्रशासन का कार्य अधिक कठिन हो जायेगा।"[1] यह आधुनिक शिक्षा अधिक व्यय साध्य थी, जिससे अधिकांश भारतीयो को प्राप्त करना कठिन हो गया । राष्ट्रवादियो ने यह स्वीकार किया कि निजी प्रबंध के अधीन सस्थाओ मे शिक्षा का स्तर गिर

---

1 ए०आर० देसाई भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 130

गया है, साथ ही इस तथ्य की ओर भी ध्यान आकर्षित किया कि सरकार निरक्षरता को दूर करने के लिए भरसक प्रयत्न नहीं कर रही है। सन् 1904 ई० के विश्वविद्यालय अधिनियम का विरोध राष्ट्रवादियों द्वारा इसी आधार पर किया गया, क्योकि उसमें शिक्षा को अधिक व्यय साध्य बना दिया गया था। राष्ट्रवादियो का यह मत था कि लॉर्ड कर्जन शिक्षा को समर्थ और सक्षम बनाने के नाम पर उसे सीमित और सकुचित करना चाहते हैं ।

मध्यवर्गीय शिक्षित जन अपने ग्राम्य–जीवन और जन–जीवन से दूर होते जा रहे थे । शिक्षा का माध्यम विदेशी भाषा अॅग्रेजी थी। इससे राष्ट्रीय जीवन मे शून्य पैदा हो गया था । तिलक, रासबिहारी बोस, एस० श्रीनिवास आयंगर, रवीन्द्र नाथ टैगोर, श्रीमती एनीबेसेन्ट, गॉधीजी आदि ने पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का विरोध किया । इस पाश्चात्य शिक्षा–प्रणाली से राष्ट्रीय अभ्युत्थान आंदोलन की वृद्धि अवश्य हुई । विष्णु शास्त्री चिपलूणकर, स्वामी दयानद, तिलक आदि ने अनेक विद्यालय खोले । बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में स्वतन्त्र रूप से राष्ट्रीय एव भारतीय दृष्टिकोण से कुछ संस्थाऍ स्थापित की गई। इस प्रकार की संस्थाओ में शांतिनिकेतन 1900 ई०, गुरूकुल कांगडी 1902 ई०, गुरूकुल वृदावन 1911 ई० और महाविद्यालय ज्वालापुर 1907 ई० में सस्थापित हुए । " सन् 1905 ई० के बंग–भग आदोलन के दौरान राष्ट्रवादियो ने साहित्यिक, तकनीकी, शारीरिक शिक्षा देने के लिए अनेक राष्ट्रीय शैक्षिक सस्थाऍ स्थापित किए। 15 अगस्त, 1906 ई० को एक राष्ट्रीय शिक्षा परिषद् की स्थापना की गयी । कलकत्ता मे एक राष्ट्रीय

कॉलेज का आरम्भ हुआ, जिसके प्रधानाचार्य श्री अरविन्द घोष थे ।"[1] असहयोग आंदोलन के समय काशी विद्यापीठ, गुजरात विद्यापीठ, जामिया मिल्लिआ इस्लामियाँ, बिहार विद्यापीठ, तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ तथा अनेक स्त्री-शिक्षा सम्बन्धी संस्थाएँ स्थापित हुईं । इसी तरह 1889 ई० से आर्यसमाज द्वारा डी०ए०वी० कॉलेजो की स्थापना उल्लेखनीय है। इन राष्ट्रीय सस्थाओ मे सामाजिक एव धार्मिक सुधार, सस्कृत की शिक्षा, भारतीय सस्कृति के आदर्शो के अध्ययन और पालन की शिक्षा तथा अन्य राष्ट्रीय गुणों और भाषाओं को प्रोत्साहन देने की व्यवस्था थी। इनमें जातिगत भेद मिटाने तथा राष्ट्र को शारीरिक और मानसिक दृष्टि से सम्पन्न बनाना, राष्ट्रीय शिक्षा का मुख्य आदर्श रखा गया था ।

सन् 1919 ई० में मांटेग्यू चेम्सफ़ोर्ड सुधार योजना के अनुसार शिक्षा का भार प्रांतो पर आ पड़ा, परन्तु यूरोपियन और भारतीयो की शिक्षा पद्धति मे भेद रखा गया । सन् 1921 ई० मे द्वैध शासन-पद्धति के अन्तर्गत शिक्षा विभाग का दायित्व भारतीय मंत्रियो को सौंपा गया । इस व्यवस्था के अन्तर्गत प्रांतीय सरकारो को शिक्षा प्रसार सम्बन्धी योजनाओं को स्वीकार करने और लागू करने का अधिकार दिया गया। अतः इस दौरान माध्यमिक शिक्षा प्रणाली को अधिक प्रोत्साहन दिया गया। बीसवी शताब्दी के दूसरे दशक मे मैसूर, पटना, बनारस, अलीगढ़, ढाका, लखनऊ और उस्मानिया विश्वविद्यालय की स्थापना हुई। सैडलर आयोग ने जिस व्यावसायिक तथा प्रौद्योगिकी पाठ्यक्रमों को प्रारम्भ करने की सिफ़ारिश की थी, केन्द्रीय सरकार ने उसे लागू करने के लिए प्रातीय

---

1. प्रो० विपिनचद्र . आधुनिक भारत, पृष्ठ 172

सरकारो को निर्देश दिया । बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक मे भारतीय विज्ञान कॉग्रेस, बनारस विश्वविद्यालय मे इजीनियरिंग कॉलेज, रूड़की मे इजीनियरिंग कॉलेज आदि की स्थापना हुईं।

बीसवीं शताब्दी मे स्त्री शिक्षा का प्रसार काफी हुआ । आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि सुधार सगठनो, यूरोपीय मिशनरी सगठनों, पारसी समुदाय आदि ने शिक्षा की दिशा मे पथ प्रदर्शन का काम किया । बम्बई मे स्थापित भारतीय महिला विश्वविद्यालय ने स्त्रियो को शिक्षा प्रदान करने के सिलसिले में बड़ा काम किया ।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी का पूर्वांश पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के साथ–साथ राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली के उन्नयन एवं प्रचार–प्रसार का युग था।

(ग) मुद्रण कला का आविर्भाव :

भारत मे मुद्रण कला का आरम्भ पुर्तगालियों द्वारा सोलहवीं शताब्दी के अन्त में किया गया, जो एक युगान्तकारी घटना साबित हुई । राष्ट्रीय जागरण, प्रगतिशील विचारो के आत्मसातिकरण और सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदोलनों मे जन सहयोग की भूमिका सुनिश्चित करने की दृष्टि से, मुद्रणालयों की बहुत बड़ी भूमिका रही है। बीसवीं शताब्दी के पूर्वांश तक देश मे भारी संख्या मे मुद्रणालय स्थापित हुए, जिससे पत्र–पत्रिकाओ के प्रकाशन और भारतीय भाषाओ की पुस्तको का व्यापक क्षेत्र में वितरण हुआ । भारतीय प्रेस मुख्यत. सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं पर चर्चा करता था । इसके परिणामस्वरूप प्रथम बार जनमत का निर्माण प्रारम्भ हुआ और प्रेस की स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष राष्ट्रवाद का अंग बन गया । इस क्षेत्र में 'केसरी', 'मराठा', 'हिन्दू',

'अमृतबाजार पत्रिका', 'इडिपेंडेंस', 'क्रांति स्पार्क', 'बदेमातरम्', 'न्यूस्पार्क', 'युगान्तर', नेशनल फ्रट', 'यग इडिया', 'नवजीवन' आदि पत्र–पत्रिकाओं का योगदान उल्लेखनीय रहा है ।

भारतीय राष्ट्रवाद और राष्ट्रवादी आंदोलन के सामाजिक, सास्कृतिक, राजनीतिक, और आर्थिक प्रत्येक रूप के विकास मे प्रेस का बहुत बडा हाथ रहा । प्रेस द्वारा उपलब्ध राजनीतिक शिक्षा और प्रचार की सुविधा के कारण ही राष्ट्रीय आदोलन का राजनीतिक पक्ष सभव हुआ । प्रेस के माध्यम से भारतीय राष्ट्रवादी दल लोगो के बीच प्रतिनिधि सरकार, स्वतन्त्र प्रजातान्त्रिक संस्थाएँ, होमरूल, डोमिनियन स्टेट्स और स्वाधीनता आदि विचारों का प्रचार कर सके । इनके द्वारा ब्रिटिश सरकार और उसकी प्रशासनिक कार्यवाहियो की दिन–प्रतिदिन आलोचना करके लोगो को राजनीतिक समस्याओं के बारे मे जानकारी दिये । 18 जून, 1905 ई० को 'करॉची क्रॉनिकल' नामक समाचार पत्र ने जनता की भावनाओं को इस प्रकार व्यक्त किया "जो कुछ एक एशियाई देश ने किया है, वह दूसरे भी कर सकते हैं । .... अगर जापान रूस की धुनाई कर सकता है, तो भारत भी उतनी ही आसानी से इग्लैंड को धुन सकता है । .... आइए, हम अँग्रेजो को समुद्र मे फेक दे और विश्व की महान शक्तियो के बीच जापान के बराबर अपना स्थान ग्रहण करें ।" [1]

जाति प्रथा, बाल विवाह, विधवा विवाह तथा उन सामाजिक न्यायिक और अन्य प्रकार की असमानताएँ जिनकी, स्त्रियॉ शिकार थी, का विरोध करने मे प्रेस ने सुधारवादियो की उल्लेखनीय

---

1. प्रो० विपिनचंद्र · आधुनिक भारत, पृष्ठ 168

सहायता की । अन्य सामाजिक बुराइयो जैसे – छुआछूत, देवदासी प्रथा आदि के खिलाफ प्रचार मे भी प्रेस से मदद मिली । भारतीय समाज के जनतात्रिक पुनर्निर्माण के सिद्धान्त और कार्यक्रम से जनता को अवगत कराने मे भी प्रेस का सहयोग प्राप्त हुआ । प्रेस के माध्यम से समाज सुधारको ने कुरीतियो को समाप्त करने के सर्वोत्तम् उपायो पर लगातार विचार विनिमय किया और सयुक्त कार्यक्रम के लिए अखिल भारतीय सम्मेलनो का स्वरूप प्रदान किया । डॉ० नगेन्द्र द्वारा सपादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' मे पत्र–पत्रिकाओं की उपादेयता के सन्दर्भ में लिखा गया है . "विगलित सामाजिक नैतिक रूढियो के विरोध मे पत्रो का अच्छा उपयोग किया गया । इनके माध्यम से अँग्रेजी हुकूमत की उन कार्यवाहियो का भी विरोध शुरू हुआ । जो देश हित के विरूद्ध पडती थीं। इनसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण और राष्ट्रीयता के प्रचार प्रसार मे भी पर्याप्त सहयोग मिला, ... पत्र–पत्रिकाओ ने सामाजिक धार्मिक परिष्कार–परिमार्जन और राष्ट्रीय चेतना के प्रचार–प्रसार मे उल्लेखनीय कार्य किया ।" [1]

इस तरह हम कह सकते हैं कि भारतीय जन मानस में राष्ट्रीयता की भावना के विकास में, राष्ट्रीय आंदोलनो के सगठन और विकास मे, प्रादेशिक साहित्य एव सस्कृति के सृजन तथा उसके विकास मे सामाजिक सुधार आदोलन आदि मे प्रेस की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही।

(घ) उद्योग और प्रविधि :(वैज्ञानिक विचारों का उद्भव)

अठारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भारतीय गॉवो का आर्थिक ढॉचा प्राय. अपरिवर्तनशील और स्थिर रहा, गॉव अपने आप मे

---

1 . संपादक डॉ० नगेन्द्र . हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 447

स्वत पूर्ण आर्थिक इकाई थे। इसको लक्ष्य करते हुए चार्ल्स मेटक़ॉफ ने लिखा है " गॉव छोटे–छोटे गणतन्त्र थे;उनकी अपनी आवश्यकताएँ गाँव से पूरी हो जाती थीं । बाहरी दुनियॉ से उनका कोई सम्बन्ध नही था । एक के बाद दूसरा राजवश आया, एक के बाद दूसरा उलटफेर हुआ, हिन्दू, पठान, मुगल, सिक्ख, मराठो के राज्य बने और बिगडे पर गाँव वैसे के वैसे ही बने रहे ।" [1] गॉव की ज़मीन पर सबका अधिकार था । पेशा जाति के आधार पर निश्चित होता था । नगर और गाँव अपनी–अपनी इकाइयों मे पूर्ण और एक–दूसरे से असम्बद्ध थे । नगरों में मूल्यवान वस्तुओ का निर्माण होता था । रत्नजडित आभूषणों, बारीक सूती–रेशमी वस्त्रों, हाथीदॉत की मीनाकारी, वस्त्रो की रंगाई आदि के लिए इस देश की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति थी। नगरों की औद्योगिक इकाईयॉ सामान्य वस्तुओ का निर्माण नहीं करती थी। गॉव का घरेलू उद्योग अलग था और नगरों का अलग था । अँग्रेजों और अन्य यूरोपीय राष्ट्रों के आगमन से स्थिति में परिवर्तन हुआ । सन् 1600 ई० से लेकर 1757 ई० तक भारत मे ईस्ट इंडिया कम्पनी एक व्यापारिक निगम की तरह कार्य करती थी। वह बहुमूल्य कपड़े, मसाले आदि ले जाकर अन्य देशो में बेचती थी। इस प्रकार उसने ब्रिटेन और अन्य देशो मे भारतीय वस्तुओ के लिए नया बाजार खोलने की कोशिश की । जिससे भारतीय वस्तुओ के निर्माण और उत्पादन को प्रोत्साहन मिलता रहा, लेकिन बंगाल विजय के उपरान्त सारी स्थिति बदल गयी । अब अधिक भू–राजस्व प्राप्त करने के लिए लॉर्ड कार्नवालिस ने सन् 1793 ई० में बगाल, बिहार और उडीसा मे

---

1. सपादक डॉ० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ 440

स्थायी–बदोबस्त लागू किया । बाद में बम्बई, उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश के कुछ भागो में भी यह व्यवस्था आरम्भ की गयी । देश के शेष भागो में महालवाडी और इस्तमरारी बंदोबस्त लागू किया गया। इन व्यवस्थाओ के फलस्वरूप अब जमींदार और जोतदार दोनो ही जमीन का क्रय–विक्रय कर सकते थे । जमीदार राजस्व की वसूली न होने पर जमीन बेच सकता था । जमीन बचाने के लिए किसानों ने भारी ब्याज दर पर ऋण लिए, जिसने एक शक्तिशाली महाजन वर्ग को जन्म दिया, जो धीरे–धीरे किसानो के ज़मीन का स्वामी बन गया। कालान्तर मे यही महाजन वर्ग ज़मींदार की श्रेणी में आ गये । किसान अब भूमि पर फसल उगाने वाला मजदूर बन गया । इस युग की रचनाओं में महाजनी शोषण का वर्णन मिलता है।

बंगाल पर राजनीतिक नियन्त्रण के परिणामस्वरूप अँग्रेज़ो ने बगाल के बुनकरो और हस्तशिल्पियो का जितना सभव था उतना शोषण किया । समकालीन लेखक विलियम वोल्ट्स ने कहा है – "कंपनी के पदाधिकारी बुनकरो से जो धूर्तता बरतते हैं, वह सोच से भी परे है।" [1]

भारतीय हस्तशिल्पियो की तबाही उन शहरो की तबाही के रूप में सामने आई,जो अपनी विनिर्मित वस्तुओ के लिए मशहूर थे। जो शहर युद्ध तथा लूट खसोट के विध्वस के बाद भी टिके रहे थे, वे ब्रिटिश

---

1. बी० एल० ग्रोवर . आधुनिक भारत का इतिहास . एक नवीन मूल्यांकन, पृष्ठ 630

विजय के कारण जिदा नही रह सके । उन्नीसवीं शताब्दी के अत तक नगरीय जनसख्या मुश्किल से कुल जनसंख्या का दस प्रतिशत रह गई थी । गवर्नर–जनरल विलियम बैंटिक ने 1834 -35 ई० मे लिखा कि–" इस दरिद्रता के समान दरिद्रता वाणिज्य के इतिहास मे शायद ही कभी रही है। बुनकरो की हड्डियॉ भारत के मैदानो को विरजित कर रही हैं । " [1]

उन्नीसवी शताब्दी मे भारत ब्रिटेन मे बने कपडो से भर गया । भारत अब केवल कच्चे माल का निर्यातक मात्र रह गया । इसी दौरान कृषि का वाणिज्यीकरण किया गया । ग्रामीण दस्तकारी उद्योगों की बर्बादी, रेलवे के बनते ही काफी तेजी से हुई । रेलवे द्वारा ब्रिटिश विनिर्मित वस्तुओ को देश के सुदूर गॉवो मे पहुँचने और परम्परागत उद्योगो की जड़े खोदने मे सहायता मिली ।" इस प्रकार ब्रिटिश जीत के कारण देश मे अवऔद्योगीकरण आया और कृषि पर लोगो की निर्भरता बढी ... .जनगणना के रिपोर्टों के अनुसार 1901 ई० और 1941 ई० के बीच कृषि पर निर्भर जनसख्या का प्रतिशत 63 7 प्रतिशत से बढकर 70 प्रतिशत हो गया।"[2]

सन् 1850 ई० के पश्चात भारत मे बागान उद्योग, (नील, चाय, कॉफी, रबड), सूती मिलें, पटसन मिले, कोयले की खानो मे भी काम आरम्भ हो गया । बागान मालिको ने मजदूरो और किसानो का शोषण करना प्रारम्भ किया । 1860 ई० मे दीनबधु द्वारा लिखित 'नील--दर्पण' मे नील–उत्पादको के अत्याचारो का वर्णन मिलता है। उद्योगो मे काम

---

1. प्रो० विपिनचंद्र . आधुनिक भारत, पृष्ठ 125
2. वही . वही , पृष्ठ 125

करने वाले श्रमिको का भी शोषण किया जा रहा था । सन् 1881 ई० एवं 1891 ई० में फैक्ट्री कानून द्वारा उनकी दशा सुधारने का प्रयास किया गया । लेकिन वह अपर्याप्त था । "बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक भारत मे औद्योगिक विकास मुख्यत. चार प्रकार के उद्योगो तक सीमित रहा । सूती कपड़े और पटसन, कोयला खानें और चाय बागान, कुछ और छोटे उद्योगो, जैसे – रूई की ओटाई–जमाई, ऊनी कपडे, आटा पीसने, धान कूटने और कडिया चीरने की मिले, चमडे के शोधनालय, कागज और चीनी के कारख़ाने, नमक, कहवा, पेट्रोल और लोहे की खानो आदि को विकसित किया गया । इजीनियरी, रेलवे और लोहे तथा पीतल की ढलाई के कुछ कारखाने भी स्थापित किये गये ।"[1] भारत मे उद्योगो के विकास की गति अत्यन्त मद्धिम थी। जो उद्योग विकसित हुए विदेशी पूँजीपतियो के नियन्त्रण में थे। लौह उद्योग के क्षेत्र में 1913 ई० में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी की स्थापना हुई । ब्रिटिश शासन की औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का मूल्यांकन करते हुए डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है – 'अँग्रेज़ो की नयी व्यवस्था से जनता को घोर सकट का सामना करना पडा । खेत अनेकानेक टुकड़ो मे बँट गये, किसान और सरकार के बीच बहुत से मध्यस्थ हो गये और पैदावार घटती गयी । ग्रामीण उद्योग–धन्धो के नष्ट होने पर अधिक से अधिक लोग खेती पर आश्रित हो गये .... घेरे मे बँधी हुई अर्थव्यवस्था राष्ट्रोन्मुख हो चली। जो केवल धार्मिक एकता मे बँधा हुआ था, वह राष्ट्रीय एकता के प्रति भी जागरूक होने लगा। दूसरी ओर, जाति प्रथा आर्थिक वर्गों मे बदलने लगी, ... इसके साथ ही नये–नये

---

1. प्रो० विपिनचंद्र, अमलेश त्रिपाठी, बरूणदे . स्वतन्त्रता सग्राम, पृष्ठ 22

आर्थिक वर्गों का जन्म हुआ । उच्च वर्ग और श्रमिक वर्ग के अतिरिक्त एक नये मध्य–वर्ग का उदय हुआ । इस देश में इस वर्ग की भूमिका ही सबसे अधिक क्रातिकारी कही जायेगी ।"[1] इस प्रकार उद्योगीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सास्कृतिक क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ । नये मज़दूर वर्ग के प्रादुर्भाव से राष्ट्रवादी आदोलन को गति मिली ।

भारत मे प्राचीनतम काल से ही उन्नत विज्ञान और प्रौद्योगिकी के दर्शन होते हैं। सिन्धु–घाटी सभ्यता की नगर व्यवस्था, जल–निकास प्रणाली, दो मज़िले मकान, पानी के जहाजो की निर्माण कला, पहिए और सम्भवत. हल के प्रयोग इत्यादि कार्यो से उच्च स्तरीय विज्ञान और तकनीकी का पता चलता है। बीजगणित, ज्यामिति और खगोलशास्त्र के मौलिक सिद्धान्तों के साथ आर्यभट्ट प्रथम, वाराहमिहिर, भाष्कर प्रथम, ब्रह्मगुप्त, आर्यभट्ट द्वितीय, श्री हरि और श्रीपति जैसे भारतीय मनीषियो के नाम जुड़े हुए हैं। आर्यभट्ट प्रथम ने पॉचवी शताब्दी मे ही π(पाई) का मान लगभग 3.1416 निकाल लिया था, जिसे आज तक प्रयोग में लाया जा रहा है। पृथ्वी का अपनी धुरी पर घूमने और घूमने मे लगे समय की सही माप आर्यभट्ट ने ही किया था । प्राचीन काल में आयुर्वेद के क्षेत्र में सुश्रुत और चरक जैसे विद्वान हुए ।

मध्यकालीन भारत में अभियान्त्रिकी और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। सोलहवीं, सत्रहवीं शताब्दी में हथियारों एव देशी बंदूको तथा तोपो के निर्माण के साथ औद्योगिक प्रौद्यौगिकी अपने

---

1. संपादक डॉ० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 442

उच्चतम शिखर पर पहुँची । खगोलशास्त्र के क्षेत्र मे अनुसंधान कार्य हेतु राजा सवाई जय-सिह द्वारा 1718 ई० और 1734 ई० के मध्य जयपुर, वाराणसी, उज्जैन, दिल्ली और मथुरा में वेधशालाएँ स्थापित करवाई गई।

भारत मे अँग्रेजों के आगमन के साथ पश्चिमी विज्ञान की नई धारा प्रवाहित हुई और एक नये वैज्ञानिक युग का सूत्रपात हुआ । ब्रिटिश शासन के दौरान भारत मे वैज्ञानिक प्रगति व्यवस्थित रूप से नही हुई । बीसवीं शताब्दी के पूर्वाश तक देश मे 'जियोलॉजीकल सर्वे आर्फ इडिया' (1851 ई०) इडियन मैरीन सर्वे डिपार्टमेंट (1874 ई०) इडियन कोस्टल सर्वे (1875 ई०) भारतीय रेलवे तथा पोस्ट और टेलीग्राफ, बॉटेनिकल सर्वे ऑफ इडिया, (1899 ई०) मौसम सम्बन्धी जानकारी व खगोलशास्त्र के क्षेत्र मे अनुसंधान के लिए वेधशालाएँ आदि स्थापित की गईं । इन संस्थाओ ने जहाँ औपनिवेशिक हित का पोषण किया, वही विज्ञान के प्रति और अधिक जानकारी और रूचि बढाने में सहायक साबित हुई। पश्चिम के वैज्ञानिक आविष्कारों और खोजों से प्रभावित महेन्द्रलाल सरकार ने 1876 ई० में 'इंडियन एसोसिएशन फॉर द कल्टीवेशन ऑफ साइंस' की स्थापना किया । इसका उद्देश्य भारतीय प्रतिभा को विज्ञान के प्रति आकर्षित करने, गंभीर अध्ययन करने व नयी खोजें करना था । जिससे भारत मे भी विज्ञान का स्तर ऊपर उठ सके । सरकार महोदय के इस सस्थान से के० एस० कृष्णन, पी० सी० रे, जे० सी० बोस, सी० वी० रमन जैसे लोग सम्बन्धित रहे हैं। इनमे सी० वी० रमन को 'रमन प्रभाव' की खोज पर 1930 ई० मे भौतिकी क्षेत्र मे नोबुल पुरस्कार से सम्मानित किया गया । इसके अतिरिक्त इडियन साइस कॉग्रेस (1914 ई०) इंडियन एकेडमी ऑफ साइस (1934 ई०) नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ साइटिस्ट्स ऑफ इंडिया

(1935 ई०) आदि सस्थानो की स्थापना से विज्ञान के विषयो मे शोध–कार्यों को बढावा मिला। सन् 1904 ई० के विश्वविद्यालय अधिनियम द्वारा विश्वविद्यालयो मे विज्ञान के शिक्षण एवं शोध–कार्य प्रारम्भ किये गये । सन् 1909 ई० मे कलकत्ता विश्वविद्यालय मे स्नातकोत्तर स्तर पर शिक्षण व शोधकार्य प्रारम्भ किया गया । कलकत्ता में ही प्रसिद्ध गणितज्ञ सर आशुतोष मुखर्जी ने 1916 ई० मे 'युनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ साइस की स्थापना किया । इस सस्था मे विज्ञान की उच्चस्तरीय शिक्षा का प्रबंध किया गया । यहाँ के० एस० कृष्णन, एस० एन० बोस, सी० वी० रमन, मेघनाथ साहा जैसे विख्यात वैज्ञानिको ने शिक्षण कार्य किया । सन् 1917 ई० मे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय में एक इंजीनियरिंग कॉलेज की स्थापना हुई। रूड़की मे भी इंजीनियरिंग कॉलेज की स्थापना की गयी ।

जे०सी० बोस ने विद्युत द्वारा जीवित और निर्जीव पदार्थों पर उत्पन्न आणविक सिद्धान्त का अध्ययन किया । के० एस० कृष्णन ने चुम्बकत्व और धातुओ मे विद्युत प्रतिरोध पर कार्य किया । श्रीनिवास रामानुजम को 1918 ई० मे रॉयल सोसाइटी की फैलोशिप का सम्मान मिला । मेघनाथ साहा ने एस्ट्रोफिजिक्स के क्षेत्र में कार्य किया, एस० एन० बोस ने आइस्टीन के साथ मिलकर अध्ययन किया, जिसके फलस्वरूप बोस–आइस्टीन समीकरण प्रकाश मे आया । इसके अतिरिक्त अनेक वैज्ञानिको ने विभिन्न क्षेत्रो मे महत्त्वपूर्ण कार्य किये । इन वैज्ञानिको ने शोध–कार्य, अध्यापन एव शोध–कार्य मे दिशा–निर्देशन से देश मे विज्ञान के उत्थान के लिए उचित वातावरण बनाने में सहयोग दिया । अनेक सस्थानों की स्थापना से भी ये वैज्ञानिक जुडे रहे । देश में क्रमश. विज्ञान को पढने, समझने व शोध कार्य करने वालो की संख्या मे काफ़ी

वृद्धि हुई ।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के पूर्वांश में भारत ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र मे उल्लेखनीय उपलब्धियाँ हासिल की । इस वैज्ञानिक प्रगति ने काफ़ी हद तक सामाजिक एवं धार्मिक रूढ़ियों को कमजोर किया । शोध सस्थानो ने कृषि उद्योग आदि क्षेत्र मे उल्लेखनीय अनुसधान द्वारा लोगों के जीवन स्तर को सुधारने तथा उनके सोचने समझने की प्रणाली मे परिवर्तन कर, उनमे वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास किया । जिसके फलस्वरूप सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक आदि क्षेत्रो मे गतिशीलता आयी।

(ङ) पश्चिम का प्रभाव : संस्कृति के नये संदर्भ

भारत में प्रारम्भ मे आने वाले यूरोपीय व्यापारी एक नई सभ्यता के प्रतिनिधि थे। उनके आर्थिक उद्यम के लक्ष्य और तरीके, व्यापारिक संगठन एव व्यावसायिक आचरण भारतीयो से बहुत भिन्न थे। उनकी राजनीतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि भिन्न थी। नैतिकता, रीति–रिवाज़ों, धर्म, संस्कृति, बौद्धिक प्रवृत्तियो एव दृष्टिकोण के क्षेत्र मे उनमें और भारतीयों में व्यापक विषमता थी ।

प्रारम्भ मे यूरोपीय व्यापार एव वाणिज्य के लिए भारत मे आऐ, लेकिन धीरे–धीरे ईस्ट इडिया कम्पनी देश के विशाल भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित करने मे सफल रही । नये शासको ने अपने शासन–कार्य को सरल बनाने और उसे सुदृढ़ आधार प्रदान करने के लिए अनेक दूरगामी परिवर्तन किए । भारत में क़ानून और व्यवस्था की स्थापना की गई। संचार व्यवस्था में सुधार, सड़कों और रेलमार्गों से सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में जोड़कर आवागमन का मार्ग तैयार किया गया। संसाधनो

के अधिकाधिक दोहन के लिए कृषि एवं सिचाई व्यवस्था मे सुधार और उद्योगो को प्रारम्भ किया गया। नवीन अँग्रेजी शिक्षा प्रणाली शुरू की गई। व्यापार एवं उद्योगो के क्षेत्र मे नई व्यवस्थाओ से भारतीयो का परिचय हुआ। और सार्वजनिक क्षेत्र मे सुधार के लिए प्रयत्न किए गये । जिससे भारतीयो के विचार और चितन मे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुआ ।

अँग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली ने प्राचीन परम्पराओं एवं स्थापित विश्वासो को कमजोर किया जिससे एक नई सभ्यता और संस्कृति का मार्ग प्रशस्त हुआ। "समाज विज्ञानों के क्षेत्र मे शिक्षित भारतीयो को बेकन, डार्विन, स्पेसर, लॉक, गॉडविन, जे०एस० मिल, एडम स्मिथ, न्यूटन, रस्किन, रसेल आदि को पढने का मौका मिला, जिससे लोकतांत्रिक सिद्धान्तों से प्रेरित होकर वे प्रतिक्रियावादी सामाजिक संस्थाओं और परम्पराओं के विरूद्ध उठ खड़े हुए । इस प्रकार सामाजिक उदारवादी दर्शन मे भारतीयों को व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वतंत्रता का अस्त्र प्राप्त हुआ, वहीं तार्किक दर्शन उनके मस्तिष्क को अंधविश्वासो, बहुदेववाद और नियतिवाद के अधकार से मुक्त करने का साधन बना ।" [1] पाश्चात्य बुद्धिवादिता एवं तार्किकता ने भारतीय दार्शनिक आधारों को सामाजिक सन्दर्भ दिया और रूढ़िवादिता को मिटाने में वैदिक संस्कृति (आर्य समाज) तथा वेदात (स्वामी विवेकानंद) का सहारा लिया । इस सम्बन्ध मे दिनकर जी लिखते हैं कि "भारत यूरोप के साथ आने वाले धर्म से नहीं डरा बल्कि, भय उसे यूरोप के विज्ञान को देखकर हुआ, उसकी बुद्धिवादिता, साहस और

---

1. संपादक डॉ० सत्या एम० राय . भारत में उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद, पृष्ठ 154

कर्मठता से हुआ । अतएव भारत मे नवोत्थान का जो आंदोलन उठा, उसका लक्ष्य अपने धर्म, अपनी परम्परा और अपने विश्वासो का त्याग नही, प्रत्युत, यूरोप की विशिष्टताओ के साथ उनका सामजस्य बिठाना था । "[1] यह कार्य उन्नीसवी शताब्दी के धार्मिक एव सामाजिक सस्थाओं ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफ़िकल सोसाइटी आदि द्वारा पूरा करने का प्रयास किया गया ।

पाश्चात्य सम्पर्क का जो दूसरा महत्त्वपूर्ण प्रभाव था निवृत्ति मार्ग से प्रवृत्तिमार्ग का अवगाहन इस सम्बन्ध में दिनकरजी लिखते हैं– " असल में उन्नीसवी सदी का नवोत्थान भारत में प्रवृत्ति मार्ग का ही अनुपम उत्थान था । राममोहन राय, दयानन्द, रामकृष्ण, विवेकानंद और लोकमान्य तिलक ने प्रवृत्ति पर इतना अधिक जोर दिया कि सारा हिन्दू दर्शन, प्रवृत्ति के ही उत्स सा दिखने लगा और संन्यास से गार्हस्थ्य को श्रेष्ठ समझने में जो बाधा थी, वह आप से आप क्षीण होने लगी ..... . निवृत्ति की धारा मे बहते–बहते हिन्दू एक ऐसे स्थान पर जा पहुँचे थे, जहाँ स्वाधीनता और पराधीनता में कोई भेद नही था, अन्याय और न्याय में कोई अंतर नहीं था और न कोई अत्याचार ही ऐसा था जिसका उत्तर देना आवश्यक हो । .... किन्तु उन्नीसवीं सदी के बाद से भारतीय साहित्य मे क्रातिकारी और अनय विरोधी स्वर बड़े जोर से गूँजने लगे । यह, स्पष्ट ही, गीता और वेदान्त की प्रवृत्तिमार्गी टीका का परिणाम है। "[2] इस प्रवृत्ति–मार्गी धारा ने संसार की सत्यता में मनुष्य के विश्वास को

---

1. रामधारी सिंह दिनकर : संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 532
2. वही . वही , पृष्ठ 535

बढ़ाया, मनुष्य–मनुष्य के बीच एकता में वृद्धि की है, शूद्रो को गौरव का मार्ग बताया है और नारी को सहस्त्राब्दियो की कारा से विमुक्त किया है।

यातायात एवं संचार माध्यमो का प्रसार ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत व्यापक स्तर पर किया गया। रेलमार्गों के विस्तार ने सांस्कृतिक एव सामाजिक विचारधाराओ को गहराई से प्रभावित किया । यात्रा की व्यापक सुविधाओ के कारण लोगो का जो सम्मिश्रण संभव हुआ उससे व्यापक राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय आधार पर सहयोग की भावना का विकास हुआ । रेलवे ने सनातनी हिन्दुओं की कट्टरवादिता और खान–पान छूत–अछूत सबन्धी उनकी पाप शका को कालक्रम से समाप्त किया। यातायात और संचार माध्यमो द्वारा लोगो के बीच प्रगतिशील सामाजिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक विचारों का प्रसार हुआ । इस सचरणशीलता के कारण, किसी एक क्षेत्र की वैज्ञानिक और सांस्कृतिक उपलब्धियों को राष्ट्रीय सम्पत्ति बनाया जा सका ।

मुद्रण कला के आविर्भाव के परिणामस्वरूप प्रेस की स्थापना हुईं। मुद्रण कला पाश्चात्य सम्पर्क का ही परिणाम है । भारतीय राष्ट्रवाद और राष्ट्रवादी आंदोलन के सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक विचारधाराओ के विकास में प्रेस का बहुत बड़ा हाथ रहा । इसकी मदद से भारतीय राष्ट्रवादी दलों के बीच प्रतिनिधि सरकार स्वतन्त्र, प्रजातान्त्रिक सस्थाएँ, होमरूल डोमिनियन स्टेट्स और स्वाधीनता आदि विचारों का प्रचार कर सके । इसके महत्व पर प्रकाश डालते हुए ए० आर० देसाई ने लिखा है कि "भारतीय राष्ट्रीयता के निर्माण मे प्रेस का महत्व इस बात से स्पष्ट है कि राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, गोखले, तिलक, फिरोजशाह मेहता, दादाभाई नौरोजी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, सी० वाई० चिंतामणि,

एम० के० गाँधी और जवाहर लाल नेहरू जैसे अनेक लोगो ने नैतिक मूल्यो सम्बन्धी अपने–अपने विचारों के प्रचार के लिए माध्यम रूप मे प्रेस का उपयोग किया ।"[1] छुआछूत, बाल विवाह, विधवा विवाह तथा सामाजिक न्यायिक और अन्य प्रकार की असमानताएँ जिनकी स्त्रियाँ शिकार थीं, का विरोध करने मे प्रेस ने सुधारवादी दलों की मदद की । हरिजनों के मंदिर प्रवेश के प्रश्न पर गाधी ने 'हिन्दी नवजीवन' मे लिखा है – " जब तक अछूत भाइयो के लिए देश के हर सार्वजनिक मदिर का दरवाजा खुल नही जाता, हिन्दू धर्म के उपासक दोषी बने रहेंगे और उनके लिए दुनिया के सामने सिर उठाकर चलना मुहाल होगा । अछूतो का बहिष्कार करके हिन्दू समाज स्वयं संसार से बहिष्कृत किया गया है। हिन्दू समाज इस बहिष्कार से बचने का उपाय एलिचपुर और वर्धा से सीख ले ।"[2] इस प्रकार राष्ट्रीय चेतना के विकास, सामाजिक बुराइयों से संघर्ष आदि मे प्रेस का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा है ।

दूपरोन, विलियम जोन्स, मैक्समूलर आदि अनेक विदेशी विद्वानों ने प्राचीन भारतीय ग्रंथो को ससार की सभ्यता की अमूल्य निधियाँ बताया । तुलनात्मक अध्ययन के फलस्वरूप यूरोपीय ज्ञान–विज्ञान से भारतीय परिचित हुए तथा उन्हे अपने प्राचीन गौरव का पुन. ज्ञान हुआ जिससे भारतीयों को आत्मबल मिला और उन्हे अपने पतन के वास्तविक कारणो का ज्ञान हुआ कि वे अपने मूल धर्म और सामाजिक रीति–नीति से विचलित हो गये हैं, वे इस निर्णय पर पहुँचे कि जब तक इन बुराइयो को

1.ए० आर० देसाई : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 198

2.संपादक – मो० क० गाँधी : हिन्दी नवजीवन 29 अगस्त, 1929,पृष्ठ 2

दूर नहीं किया जाता, तब तक उनका कल्याण सम्भव नही है। दूपरोन के लातिनी अनुवाद औपनिख़त को पढ़ने के बाद जर्मन दार्शनिक आर्थर शापेनहावर ने उपनिषदों की विचारधारा की प्रशंसा करते हुए कहा था -- " यह अनुपम ग्रथ आत्मा की गहराइयों को हिलकोर डालता है। इसके प्रत्येक वाक्य से मौलिक, गभीर और बड़े ही ज्योतिष्मान विचार ऊपर उठते हैं । हमारे चारों ओर भारतीयता का वातावरण आप से आप खड़ा हो जाता है तथा ऐसा प्रतीत होता है, मानो ये विचार हमारे अपने आत्मिक बंधु के विचार हों । .... सारे संसार में इसके जोड़ का कोई और ग्रंथ नही हो सकता । जीवन भर मे मुझे यही एक आश्वासन प्राप्त हुआ है, और मृत्यु--पर्यन्त यह आश्वासन मेरे साथ रहेगा ।"[1] पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव उच्च वर्गों की विचारधारा एवं उनके रहन--सहन पर अधिक पड़ा । यद्यपि इस प्रभाव ने जन-सामान्य को अधिक नहीं प्रभावित किया, फिर भी उन्हे आंदोलित करके भविष्य का मार्ग प्रशस्त किया ।

इस प्रकार भारतीयो पर पाश्चात्य संस्कृति का बहुमुखी प्रभाव पड़ा । इनमें अधिकांश शिक्षित व्यक्ति पूर्व और पश्चिम के संश्लेषण के पक्ष में थे। अनेक ऐसे थे जो भारतीयता में सराबोर होते हुए भी पाश्चात्य सस्कृति के उच्चतम अर्थ को अंगीकार करने को उत्सुक थे । इस भावना की स्पष्टतम् अभिव्यक्ति रवीन्द्रनाथ टैगोर के राष्ट्रवाद मे देखा जा सकता है ।

पाश्चात्य संस्कृति का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव यह पड़ा कि अध--भक्ति का स्थान तर्क ने ले लिया । इसमें भक्ति के ऊपर तर्क की

---

1. रामधारीसिंह दिनकर . संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 511-12

वाह्य सत्ता पर व्यक्तिगत अत.करण की विजय की संस्कृति अंतर्निहित थी । सामाजिक न्याय और राजनीतिक अधिकारो की नई सकल्पनाएँ भारतीय सभ्यता को प्राप्त हुईं । एक नई विचारधारा एव एक नया आलोचनात्मक दृष्टिकोण मिला जो प्रगति के लिए आवश्यक था । फिर भी भारतीय मस्तिष्को में दोनों संस्कृतियों के परस्पर विरोधी विचारों तथा मापदण्डो का सह–अस्तित्व मिलता था और दोनों के बीच निरन्तर द्वन्द्व बना रहा जो नेहरू जी की आत्मकथा के इस वाक्य से स्पष्ट है – " मै पूर्व और पश्चिम का अजीब मिश्रण बन गया हूँ ।" [1] इसी अन्तर्द्वन्द्व ने भारतीय संस्कृति को गतिशीलता प्रदान की ।

(च) भारतीय रूढ़ियों का तोड़ना : नई सामाजिक और राष्ट्रीय चेतना की शुरूआत ।

उन्नीसवीं सदी का भारतीय समाज पूरी तरह धार्मिक अंधविश्वासों के जाल में जकड़ा हुआ था। मैक्स बेबर ने लिखा है कि ' हिन्दू धर्म दरअसल जादू , अंधविश्वास और अध्यात्मवाद की खिचड़ी बन कर रह गया था ।"[2] धर्म के क्षेत्र में मूर्तिपूजा, बहुदेववाद ने धर्माचार्यो और पुजारियों के वर्चस्व में मदद किया। ये लोग धार्मिक रीति–रिवाजो एव नियमों की मनमानी ढंग से व्याख्या करते थे । समाज में बाल विवाह एव सती–प्रथा का प्रचलन, विधवा–विवाह पर प्रतिबंध जैसी बुराइयाँ विद्यमान थीं । लड़की का जन्म दुर्भाग्यपूर्ण माना जाता था । कम उम्र मे लड़की के

---

1. पं० जवाहर लाल नेहरू : उद्धृत : संस्कृति के चार अध्याय (रामधारी सिंह दिनकर), पृष्ठ 576

2. प्रोफेसर विपिनचंद्र – भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृष्ठ 54

विवाह से ही माता-पिता को कन्यादान का फल मिलेगा, धर्माचार्यों की इस व्याख्या के कारण समाज मे बाल-विवाह करना एक अनिवार्यता बन गयी थी । इसी प्रकार सती-प्रथा को धर्म से जोड़कर स्त्रियों पर अमानुषिक अत्याचार किया जाता था ।" अठारहवीं शताब्दी तक ब्राह्मणों ने यह कहना प्रारम्भ कर दिया था कि स्त्री के सती होने से उसके पति के कुल की सात पीढ़ियो तक के लोग स्वर्ग को प्राप्त कर लेते हैं। "[1] इस कारण लोग पति की मृत्यु के बाद स्त्री की अनिच्छा के बावजूद शव के साथ जला देते थे । यदि किसी प्रकार से कोई महिला सती होने से बच भी जाती थी या बचा ली जाती थी;तो उसे जीवन भर वैधव्य भोगना पड़ता था । इस प्रकार समाज में विधवा विवाह निषेध के कारण विधवा स्त्री को आजीवन अपमान, तिरस्कार, उपेक्षा और मुसीबतो से भरा जीवन व्यतीत करना पड़ता था ।

समुद्र पार की यात्रा करने वाले को जाति-बहिष्कृत कर दिया जाता था । माता-पिता के अंतिम संस्कार को पुत्र से जोड़कर पुत्री का तिरस्कार किया गया । बिना पुत्र जन्म के व्यक्ति पितृ-ऋण से मुक्त नहीं हो सकता है । समाज में संन्यास के महत्त्व की स्थापना के कारण भी स्त्रियों को हेय दृष्टि से देखा जाता था ।

बीमारियों, प्राकृतिक आपदाओं आदि को भी धार्मिक रूप प्रदान कर दिया गया था । विज्ञान के प्राथमिक सिद्धान्तो की जानकारी के अभाव में जन-सामान्य चेचक की देवी शीतला की पूजा करता था, मिरगीं के दौरे का कारण आसुरी शक्तियो का प्रभाव माना

---

1. बी० एल० ग्रोवर : आधुनिक भारत का इतिहास . एक नवीन मूल्यांकन, पृष्ठ 180

जाता रहा । फसल नष्ट होने के लिए क्रुद्ध दैत्य के अभिशाप को उत्तरदायी समझा जाता रहा, जिसे पूजा अथवा बलि द्वारा प्रसन्न करना आवश्यक माना जाता था । समाज में ज्योतिषियों का प्रभाव अधिक था । विवाह का निर्णय वर-वधू की जन्म कुंडलियों के मिलाने के पश्चात किया जाता था ।

उन्नीसवीं शताब्दी में स्त्रियो की स्थिति मे सुधार, धार्मिक रूढ़ियों का खण्डन और जाति-पाँति का भेदभाव समाप्त करने मे ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन आदि संगठनो ने महत्त्वपूर्ण योगदान किया । इन सस्थाओं का वैचारिक आधार पाश्चात्य दृष्टिकोण और अतीत का आदर्श था, क्योंकि आस्थाओं पर आधारित व्यवस्था और रूढ़ियों को तब तक चुनौती नहीं दिया जा सकता था, जब तक कि उन आस्थाओं को ही कठघरे में नही खड़ा कर दिया जाए । इसलिए राममोहन राय ने सती-प्रथा को समाप्त करने के लिए लोगों को; पहले यह बताया कि सती प्रथा की अतीत मे भी कभी धार्मिक स्वीकृति नहीं थी । इसी तरह ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवा विवाह के पक्ष में पौराणिक ग्रथों का प्रमाण दिया। दयानन्द 'सरस्वती' ने अपने जातिवाद-विरोध को वैदिक आधार की भित्ति पर खड़ा किया । इन विरोधो के कारण ब्रिटिश शासन ने 1829 ई० में सती-प्रथा पर प्रतिबंध लगाकर उसे अमान्य कर दिया । सन् 1856 ई० में विधवा-विवाह को कानूनी मान्यता प्रदान किया गया । अक्षय कुमार ने विवाह और परिवार के बारे मे लिखा है कि "विवाह के पहले लडके और लड़की को एक दूसरे से मिलने जुलने की इज़ाज़त हो, वैवाहिक जीवन का आधार पति-पत्नी की बराबरी और साझेदारी हो और तलाक़ क़ानूनी और परम्परागत दोनों तरीकों से होना

चाहिए ।"[1] इसी प्रकार गोपाल हरि देशमुख ने सामाजिक सुधारो को समाज की उपयोगिता के आधार पर व्याख्याति किया और कहा कि इससे धर्म का कोई लेना–देना नही है ।[2]

समाज सुधारकों की गतिशीलता के कारण ब्रिटिश शासन ने 1872 ई० मे नेटिव मैरिज ऐक्ट बनाया, जिसमे चौदह वर्ष से कम उम्र की कन्याओं तथा सोलह वर्ष से कम उम्र के बालको का विवाह वर्जित कर दिया गया । बाद मे हरविलास के प्रयत्नों से 1929 ई० मे शारदा ऐक्ट बनाया गया, जिसमे अठारह वर्ष से कम उम्र के लड़के तथा पन्द्रह वर्ष से कम उम्र की लडकी का विवाह अवैध घोषित कर दिया गया ।

स्त्री शिक्षा के लिए 1819 ई० में 'कलकत्ता तरूण स्त्री सभा' की स्थापना हुई । सन् 1849 ई० में स्त्री–शिक्षा के लिए बेथुन विद्यालय स्थापित किया, ईश्वर चंद्र विद्यासागर कलकत्ता मे कम से कम पैंतीस बालिका विद्यालयो से सम्बन्धित रहे । इसके अतिरिक्त ज्योतिबा फूले, पण्डिता रमाबाई, डी० के० कर्वे आदि ने बालिका शिक्षा के प्रचार–प्रसार हेतु अनेक विद्यालयो की स्थापना की।

जाति–पाँति का भेदभाव, अस्पृश्यता आदि भारतीय समाज की एक अनिवार्य बुराई थी । राजा राममोहन राय, केशवचन्द्र सेन, ज्योतिबा फूले आदि समाज सुधारकों ने इसकी निंदा की। "स्वामी दयानन्द ने छुआछूत के विचारों को अवैदिक बताया और उनके समाज ने सहस्त्रो अंत्यजो को यज्ञोपवीत देकर उन्हें हिन्दुत्व के भीतर आदर का स्थान

---

1. प्रो० विपिनचंद्र . भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृष्ठ 56
2. वही . वही , पृष्ठ 57

दिया।"[1] आर्य समाज का शुद्धि आदोलन भी जातिवाद, छुआछूत को कमजोर करने मे सहायक हुआ ।

जाति व्यवस्था के खिलाफ़ ज्योतिबा फूले, टी० एम० नेकर, नारायण गुरू का जाति–विरोधी आंदोलन महत्त्वपूर्ण है । नारायण गुरू ने जाति व्यवस्था को अस्वीकार करते हुए "मानवमात्र के लिए एक धर्म, एक जाति और एक ईश्वर का नारा दिया ।" बाद मे उनके एक शिष्य ने इसे इस तरह सुधारा "मानवमात्र के लिए कोई धर्म नही कोई जाति नहीं और कोई ईश्वर नहीं ।"[2] महात्मा गॉधी ने 'हरिजन संघ' की स्थापना द्वारा अस्पृश्य जातियों के उद्धार के लिए सतत् प्रयास किया। समाज की दलित और अस्पृश्य जातियों को 'हरिजन' (अर्थात् भगवान के भक्त) नाम देकर उन्हे महिमामंडित किया । गॉधीजी ने 'हरिजन' में लिखा है– "प्रचलित जाति वर्णाश्रम के बिल्कुल विपरीत है, अत. इसको जनता जितनी ही जल्दी समाप्त कर दे, उतना ही अधिक ठीक है। जाति का धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है । फिर यह राष्ट्रीयता और आध्यात्मिकता दोनो ही के विकास में बाधक है।"[3] बी० आर० अम्बेदकर ने अस्पृश्य जातियों की एक संस्था 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' की स्थापना किया । इसका उद्देश्य अस्पृश्य लोगों का नैतिक तथा भौतिक उन्नति करना था । उन्होने आदोलन की नीति अपनाया और अछूतों के लिए मंदिरों मे प्रवेश तथा जन-साधारण का कुओ से पानी भरने से वंचित होने का विरोध किया।

---

1. रामधारीसिह दिनकर : सस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 558
2. प्रो० विपिनचंद्र . भारत का स्वतन्त्रता संघर्ष, पृष्ठ 58
3. मो० क० गॉधी : 'हरिजन' , 16 नवम्बर, 1935, पृष्ठ 3

इसके अतिरिक्त अलीगढ़ आंदोलन, देवबंद आंदोलन, सिक्ख सुधार आंदोलन, पारसी सुधार आदोलन ने क्रमश. इस्लाम, सिक्ख और पारसी समाज में व्याप्त बुराइयों एवं विसगतियों का दूर करने का प्रयास किया । शिक्षित भारतीयों ने अँग्रेजी साहित्य का अध्ययन किया और उसमें निहित लोकतांत्रिक सिद्धान्त को आत्मसात् किया । इससे उन्हें व्यक्ति को गुलाम बनाने और बीते युग की जाति जैसी प्रतिक्रियावादी सामाजिक सस्थाओ और तद्रूप दृष्टिकोण के विरूद्ध विद्रोह करने की प्रेरणा मिली । उन्होंने जनतांत्रिक आधार पर भारतीय जनता के मुक्त राष्ट्रीय अस्तित्व की बात सोचना शुरू किया, जिसके फलस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन को जनतांत्रिक दिशा मिली । यह आंदोलन चुनाव तथा निर्वाचित समितियों जैसे जनतांत्रिक सिद्धान्त एवं व्यवहार, मताधिकार का विस्तार, समाचार पत्रों की स्वतंत्रता, व्याख्यान और संगठन की स्वतन्त्रता, प्रतिनिधि सरकार, जनता के प्रति उत्तरदायी कार्यकारिणी परिषद् आदि की माँग के आधार पर विकसित हुआ । अँग्रेज़ी भाषा के अध्ययन से उस भाषा में उपलब्ध सामाजिक समता प्राकृतिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण एव बुद्धिवादी दर्शन सबन्धी साहित्य के अध्ययन–मनन के फलस्वरूप जनतांत्रिक और बुद्धिवादी दृष्टिकोण को प्रश्रय मिला । सामाजिक समता सम्बन्धी विचारधारा से व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की चेतना का विकास हुआ । बुद्धिवादी दृष्टिकोण की मदद से मन गहन अधविश्वास और हजारो–लाखों देवताओं एवं भाग्यवाद और परलोकवाद की जकड़ से बाहर निकल सका ।

आधुनिक शिक्षा ने देशभक्त भारतीयों का ध्यान देश के लुप्त गौरव की ओर आकृष्ट किया । प्राचीन साहित्य एवं दर्शन का

अध्ययन कर अनेक युवको मे अपने देश की प्राचीन विचारधारा के प्रति श्रद्धा का भाव उत्पन्न हुआ और वे भारतीय संस्कृति एवं आदर्शों को पुनरूज्जीवित करने के लिए प्रवृत्त हुए । भारत के लुप्त इतिहास का ज्ञान जनता को हुआ और उन्होंने अपने अतीत के गौरव से प्रेरणा तथा उत्साह प्राप्त करके देश की दशा को सुधारने के लिए सतत् प्रयास किया, जिसके परिणामस्वरूप जन-सामान्य मे राष्ट्रीयता का भाव प्रादुर्भूत कर सके।

इस प्रकार पाश्चात्य शिक्षा, सुधार आंदोलनो, यातायात के साधनों का विकास, वैज्ञानिक आविष्कारों, चिकित्सीय सस्थानों की स्थापना और उद्योगो की स्थापना आदि ने सामाजिक रूढ़ियो तथा परम्पराओं को कमजोर करने में उल्लेखनीय कार्य किया । जिससे समाज में एक नयी चेतना का सचरण हुआ । इस चेतना के परिणामस्वरूप अब महिलाएँ राजनीतिक, आर्थिक एव सांस्कृतिक क्षेत्रों में बढ़–चढ़ कर भाग लेने लगी। उन्हे अपने अधिकारो का बोध हुआ और वे उसे प्राप्त करने के लिए प्रयासरत हुईं । इसी प्रकार दलित जातियों के नेता अपने वर्गीय हितों के संरक्षण एवं सम्मानजनक स्थिति को प्राप्त करनें के लिए आगे आए । इन सुधार प्रक्रियाओं एवं ब्रिटिश सरकार के औपनिवेशिक चरित्र ने भारतीयो मे राष्ट्रीयता की भावना को संचरित किया जिससे विगलित सामाजिक मान्यताओं तथा राष्ट्रीय पराधीनता से मुक्ति का संघर्ष दिनोदिन गति पकड़ता गया ।

(छ) लोकतत्त्व की स्थापना :

(१) राष्ट्र की भावना : भारत मे राष्ट्रीय भावना के विकास में पाश्चात्य शिक्षा का योगदान महत्त्वपूर्ण रहा । अँग्रेज़ी साहित्य के अध्ययन–मनन के फलस्वरूप शिक्षित भारतीयों को लोकतात्रिक

विचार का ज्ञान हुआ, जिससे उनका ध्यान देश की समस्याओं के निराकरण की ओर गया । उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक एव धार्मिक सुधार आदोलनो ने सराहनीय सामाजिक परिवर्तन का कार्य किया, यह आंदोलन आगे चल कर राष्ट्रीयता के रूप में प्रस्फुटित हुआ । यातायाता एवं संचार के साधनो के विकास ने देश के विभिन्न भागों के लोगों को करीब लाया जिससे देश की समस्या के बारे मे विचार-विमर्श की प्रक्रिया को गति मिली । प्रेस ने ब्रिटिश सरकार की नीतियो की आलोचना करके तथा राष्ट्रीय आंदोलन के कार्यक्रमो से जनता को अवगत कराके उनमें जागरूकता पैदा की, जिससे देशवासी ब्रिटिश सरकार के औपनिवेशिक चरित्र को समझ सके और उनके मन में यह धारणा बनी कि सभी समस्याओं का मूल ब्रिटिश शासन ही है । सन् 1885 ई० मे भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस की स्थापना से राष्ट्रीय भावना का उत्कर्ष हुआ। कॉंग्रेस के पहले अधिवेशन में वोमेशचंद्र बनर्जी ने कॉंग्रेस का उद्देश्य बताया : "राष्ट्रीय कार्यकर्ताओ मे पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करना, सारे देशप्रेमियों के बीच प्रजाति, धर्म और प्रांतीयताजन्य विभेद का उन्मूलन और उनके बीच राष्ट्रीय एकता की भावना का अधिकाधिक विकास करना । मूलभूत भारतीय समस्याओं पर पूरी बहस के बाद शिक्षित भारतीयों के निर्णय अंकित करना, ... आदि।" [1] इस प्रकार कॉंग्रेस के उदारवादी नेतृत्व ने प्रारम्भ में देश के सीमित शिक्षित वर्ग मे राष्ट्रीय भावना के प्रसार का कार्य किया ।

किन्तु बीसवीं शताब्दी का पूर्वाश उग्र राष्ट्रवाद के विकास का काल था। लॉर्ड कर्ज़न द्वारा बंग–भंग ने देश भर के राष्ट्रवादियो

---

1. ए० आर० देसाई : भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ,269

को झकझोर दिया, जिसकी देश मे तीख़ी प्रतिक्रिया हुई। बगाल के राष्ट्रवादियो ने असहयोग, स्वदेशी और बहिष्कार द्वारा अपना विरोध प्रकट किया । यह विरोध बगाल तक ही सीमित नहीं था, बल्कि देश भर में फैल गया । सन् 1908 ई० मे तिलक की गिरफ़्तारी के विरोध में बम्बई के मजदूरो ने हड़ताल किया । मज़दूर सघ द्वारा की जाने वाली यह पहली राजनीतिक हड़ताल थी । मिटो मार्ले सुधार द्वारा सांप्रदायिक निर्वाचन पद्धति को स्वीकार करना, जैसी घटनाये ब्रिटिश सरकार के प्रति विरोधी भावना के उत्कर्ष में सहायक हुईं। बीसवीं सदी के प्रारम्भ मे विशेषतया, बगाल मे शिक्षित लोगो के बीच बेराजगारी काफ़ी बढ़ गयी थी । ब्रिटिश सरकार की सहायता से उदारवाद्वियो द्वारा लाये गये धीमें क्रमिक विकास का सिद्धान्त और आवेदनों एवं भाषणों का तरीका असफल हो गया था । इस लिए बेकार शिक्षित युवक नरमदल से गरमदल की ओर झुके, जिसके प्रमुख नेता, तिलक, विपिनचन्द्र पाल, अरविन्द, वारीन्द्र घोष और लाला लाजपतराय थे । इस उग्र राष्ट्रवाद को मध्यम वर्ग से सामाजिक समर्थन मिला । भारत का जो राष्ट्रीय आंदोलन अभी उच्चवर्गीय शिक्षित समाज तक सीमित था, सन् 1905 ई० के बाद उसका सामाजिक आधार अधिक व्यापक हुआ और उसमें निम्न मध्यमवर्गीय लोग भी शामिल हुए। सन् 1905 ई० में जापान के हाथों रूस की पराजय ने लोगो मे यह भावना जगाई कि यदि जापान जैसा छोटा राष्ट्र, रूस को पराजित कर सकता है, तो भारत भी ब्रिटिश सरकार की अधीनता से मुक्त हो सकता है । उग्र राष्ट्रवादियो ने अतीत के गौरव गा़न द्वारा जनता मे आत्म–सम्मान और गौरव की भावना पैदा किया, जिससे वे राष्ट्रीय भावना से ओतप्रोत हुए । बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में 'अभिनव भारत' और 'अनुशीलन

समिति' जैसे क्रातिकारी संगठनो की स्थापना से क्रांतिकारी गतिविधियां आरम्भ हुईं। क्रातिकारियों ने अन्यायी और अत्याचारी ब्रिटिश अधिकारियों की हत्या करके जहॉ ब्रिटिश सरकार को चुनौती दी, वहीं देश वासियों के ह्रदय को राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत किया । अन्य क्रातिकारी सगठनों मे 'पजाब. नौजवान सभा,' 'हिंदुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिक एसोसिएशन,' 'बगाल की भारतीय गणतंत्र सेना' आदि प्रमुख है, जिन्होने अपने क्रातिकारी कार्यों से देश की जनता मे उत्साह फूँका । बगाल की क्रातिकारी कल्पना दत्त और प्रीतिलता वादेकर ने भी क्रांतिकारी गतिविधियो मे भाग लेकर देश के सामने एक आदर्श प्रस्तुत किया और देशवासियों की सहानुभूति प्राप्त किया । जलियॉवाला बाग हत्याकांड से पूरा देश अवाक् रह गया । जिस प्रकार से ब्रिटिश अधिकारी डायर ने निर्मम हत्या का दुष्कृत्य किया,उससे लोगों में रोष भर गया । रौलेट एक्ट, पजाब मे फौज़ी शासन और सरकार की दमनात्मक नीति के कारण जो राजनीतिक तनाव कायम था, वह ख़िलाफ़त के सवाल के कारण 1920 ई० मे और अधिक बढ़ गया । जिस तरह का व्यवहार तुर्की के साथ ब्रिटेन आदि मित्र–राष्ट्रों ने किया, उससे भारतीय मुसलमानों में असंतोष बढ़ा । गॉधी और दूसरे कॉग्रेसी नेता ख़िलाफ़त के पक्ष मे थे और उन्होने मुहम्मद अली और शौक़त अली के साथ देश में शक्तिशाली आंदोलन चलाया । सन् 1920 ई० की स्थिति के सन्दर्भ मे ए० आर० देसाई ने लिखा है – " खिलाफत आंदोलन के कारण मुसलमान राष्ट्रीय आंदोलन के करीब आए । खिलाफत, पंजाब के दमन कार्य, नाकाफी सुधारों का अदृश्य प्रवाह, इस त्रिवेणी ने राष्ट्रीय असंतोष की धारा को आयतन एवं परिमाण दोनों दृष्टियों से समृद्ध बनाया । स्थिति सब तरह से असहयोग के लिए परिपक्व

थी।"[1] इस प्रकार राष्ट्रीयता की भावना दिनोंदिन बढती गयी । गाँधी
द्वारा प्रारम्भ किया गया असहयोग आदोलन भारतीय राष्ट्रीय आदोलन
नये दौर की शुरूआत थी । गॉधीजी ने संघर्ष का ऐसा कार्यक्रम बन
जिससे जन-साधारण राष्ट्रीय आंदोलन के प्रति जागरूक हो सके अ
मज़दूर किसान पूँजीपति, विद्यार्थी, वकील, स्त्रियाँ आदि सब तरह के ल
इस आदोलन में भाग ले सकें । इस अहिंसक आंदोलन द्वारा गाँधीजी
लोगो मे ब्रिटिश सरकार के प्रति अशेष घृणा और स्वराज्य की दुर्दमन
पिपासा भर दी । यद्यपि सन् 1922 ई० में चौरी-चौरा की घटना (जिस
क्रुद्ध भीड़ ने एक थाने में सिपाहियों को बद करके आग लगा दिया थ
के बाद गॉधीजी ने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया, फिर भी इस
द्वारा पूरा देश राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ चुका था ।

इस प्रकार बीसवीं शताब्दी का पूर्वांश राष्ट्रीय भावना से ओतप्रो
हो चुका था । साथ ही इसका विस्तार जन सामान्य तक हो गया । इ
राष्ट्रीयता के विकास में उग्र राष्ट्रवादियों, क्रांतिकारी संगठनो और महात
गॉधी का योगदान उल्लेखनीय हैं ।

(2)जनतंत्र का विचार :

पाश्चात्य साहित्य और सस्कृति के सम्पर्क से भारती
को आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का परिचय हुआ, उन्हें पश्चिम की उदारवा
विचारधारा का भी ज्ञान हुआ । उन्नीसवीं शताब्दी के धार्मिक एव सामाजि
आदोलनों ने जातिप्रथा की समाप्ति, बाल-विवाह का उन्मूलन, विधवा-विवा
का समर्थन, सामाजिक और क़ानूनी असमानता का विरोध, सती प्रथा क

---

1. ए० आर० देसाई . भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 29

विरोध आदि प्रश्नो पर आदोलन किये। धार्मिक क्षेत्र में धार्मिक अंधविश्वास, मूर्तिपूजा, बहुदेववाद, वंशानुगत पुरोहितवाद आदि का विरोध किया गया । इन आदोलनो ने कमोवेश मात्रा मे व्यक्ति स्वातन्त्र्य, सामाजिक एकता और राष्ट्रवाद के सिद्धान्त का पोषण किया । सुधारवादी राजा राममोहनराय, स्वामी दयानंद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, ईश्वरचद्र विद्यासागर आदि मनीषियो का विश्वास था कि – " नये समाज का राजनीतिक, सास्कृतिक और आर्थिक विकास वैयक्तिक स्वतन्त्रता, व्यक्ति की उन्मुक्त अभिव्यक्ति के लिए अवसर, सामाजिक समानता आदि उदारवादी सिद्धान्तो के आधार पर ही सम्भव है।"[1] इस प्रकार इन सुधारवादी नेताओ ने प्राचीन धार्मिक और सामाजिक दृष्टिकोण का परिमार्जन कर उसका जनतंत्रीकरण किया। इन सुधारको का मानना था कि भारतीय जनता की राजनीतिक स्वतन्त्रता, सामाजिक, आर्थिक तथा सास्कृतिक प्रगति और राष्ट्रीय एकता के लिए यह आवश्यक है कि सामाजिक सम्बन्धो एव संस्थाओ का जनतत्रीकरण हो।

भारतीय स्वतन्त्रता आदोलन में जनतान्त्रिक विचारधारा सर्वत्र विद्यमान रही । इसी विचारधारा के अनुरूप राष्ट्रवादियों ने राजनीतिक क्षेत्र मे प्रशासनिक सुधार, स्वायत्त शासन, मताधिकार होमरूल, डोमिनियन स्टेट्स आदि की मॉग की। इससे जन्म पर आधारित विशेषाधिकार का जिससे जाति जैसी सस्था का सपोषण हुआ था, पर आघात हुआ । राष्ट्रवादियों ने ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रेस की स्वतन्त्रता को छिन्न–भिन्न करने के हर प्रयास का विरोध किया । प्रेस की आजादी एक जनतान्त्रिक

---

1. ए० आर० देसाई . भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 200

अधिकार है, जिसके लिए भारतीय राष्ट्रवाद ने अपने प्रत्येक चरण में सघर्ष किया । जन-सामान्य में जनतात्रिक विचार के प्रसार मे प्रेस की भूमिका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रही । भारतीय राष्ट्रवादी गोखले, गॉधी आदि उदारवादी और उनके साथ वामपथी राजनीतिज्ञों ने यह तर्क दिया कि –"चूँकि ब्रिटिश सरकार से स्वाधीनता या स्वराज्य की उनकी मॉग प्रजातात्रिक है, इसलिए भारतीयो को अपने सामाजिक जीवन मे प्रजातत्र के आदर्शों का अनुकरण करना चाहिए, समुदायो, जातियो और व्यक्तियो के पारस्परिक सम्बन्धो का साम्य, स्वातन्त्र्य और मानव के अधिकारों जैसे प्रजातांत्रिक सिद्धान्तो की बुनियाद पर निर्माण करना चाहिए।"[1] इस प्रकार बीसवीं शताब्दी के पूर्वांश में मज़दूरों, किसानो, स्त्रियों, पत्रकारो आदि ने अखिल भारतीय एवं प्रांतीय स्तर पर अपने–अपने संगठन बनाकर अपने हितों की सुरक्षा की मॉग की, और राष्ट्रवादी आंदोलन में भी सक्रिय भागीदारी की। ये सभी संगठन जनतांत्रिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते थे ।

(3) समतापरक विचारधारा : बीसवीं शताब्दी की राजनीति में यह युग गॉधी, सुभाषचन्द्र बोस, तिलक और बल्लभभाई पटेल का था। इस युग में जनसामान्य के हितों की लडाई चल रही थी। प्रथम विश्व युद्ध, रूसीक्रांति, विश्व के अनेक देशों में ॲग्रेजो की पराजय आदि घटनाओं का प्रभाव भारतीय राष्ट्रवादी आंदोलन की दिशा पर भी पडा। मार्क्सवादी विचारधारा की धूम विश्व भर में थी। "गॉधीवादी चितनधारा वस्तुत. मार्क्सवादी चिंतन पद्धति का ही भारतीय संस्करण था .. .. भारतीय औपनिवेशिक पूँजीवादी व्यवस्था, कृषि व्यवस्था की सहज जीवनधारा और

---

1. ए० आर० देसाई . भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 222

गाँधी, मार्क्स से भिन्न निष्कर्ष देते हैं। उद्योगो मे विकन्द्रीकरण की बात कहकर, गाँधी जहाँ अपने आर्थिक चिन्तन मे मार्क्स से आगे एक कदम बढ़ाते है, वही व्यक्तिगत जीवन में सामाजिक मूल्यो का अन्वेषण देश के औसत आर्थिक स्तर पर उनकी जाँच के प्रसग में तो वे निर्विरोध थे ही।"[1] इस प्रकार गाँधीजी ने मार्क्स की हिसा की राजनीति से अपनी असहमति प्रकट की। जिस कसौटी पर गाँधीवादी अर्थव्यवस्था की जनतान्त्रिक नीव खड़ी की गयी थी, वह भावगत ही नहीं, भारत के अनुकूल और आसानी से अमल में उतारी जा सकती थी । वैसा न होने पर ही ब्रिटेन से आयातित पूँजीवाद–समाज व्यवस्था बनकर आरोपित हो गया ।

बीसवी शताब्दी के पूर्वांश में समाजवादी, साम्यवादी दलों, मज़दूरो तथा किसानो आदि के अपने स्वतन्त्र आर्थिक एव राजनीतिक संगठनो का उदय और विकास हुआ । पं० जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस ने साम्राज्यवाद, पूँजीवाद और जमीदारी प्रथा पर प्रहार किया । रूस मे समाजवादी क्राति की सफलता एव समाजवादी राज्य की स्थापना के कारण आमूल परिवर्तन के इच्छुक राष्ट्रवादी समाजवादी तथा साम्यवादी सिद्धान्तो की ओर आकृष्ट हुए । भारत में औद्योगिक विकास के फलस्वरूप वर्ग–सघर्ष की चेतना का उदय हुआ । कारख़ानो मे काम करने वाले मजदूरो ने अपने सगठन बनाये और अपनी मूलभूत आवश्यकता की प्राप्ति के लिए सघर्ष का मार्ग अपनाया । इसी के साथ गरीबी कर्ज़ अनावृष्टि और अकाल से पीडित किसानो मे भी विद्रोह की चेतना पैदा हुई। वर्कर्स एण्ड पीजंट्स पार्टी ने अपनी माँगो को लेकर अनेक हड़ताल किए, साथ

---

1. डॉ० त्रिभुवन सिंह आधुनिक साहित्यिक निबन्ध, पृष्ठ 35

ही राष्ट्रीय आदोलन मे भाग लेकर स्वतन्त्रता आंदोलन में सहयोग किया । सन् 1924 ई० मे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का गठन हुआ, इसके बाद मजदूर एव किसान संघ धीरे-धीरे उनके प्रभाव में आते गये । इसी प्रकार कॉंग्रेस की नीतियों से असन्तुष्ट होकर आचार्य नरेन्द्र देव, जयप्रकाश नारायण, डॉ० राममनोहर लोहिया आदि ने 1934 ई० मे काग्रेस समाजवादी पार्टी की स्थापना किया, जिसका उद्‌देश्य था . "स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत मे समाजवादी व्यवस्था की स्थापना हो ताकि भारतीय समाज से शोषण की वीभत्स संस्था का उन्मूलन हो सके । निजी सपति का उन्मूलन हो सके, ताकि समाज के दो वर्गो मे व्याप्त खाई को पाटा जा सके।"[1] कॉंग्रेस समाजवादी पार्टी ने शोषित और दलित वर्ग का प्रतिनिधित्व करके राष्ट्रीय राजनीति में समतामूलक समाज व्यवस्था का समावेश कराया । समाजवादी एक तरफ कॉंग्रेस से भी जुड़े रहे और दूसरी ओर इन्होंने मार्क्सवादी चितन धारा को भी आत्मसात् किये रहे । इस सन्दर्भ मे प्रो० सिन्हा ने लिखा है कि – " कांग्रेस समाजवादी ऐसी मनःस्थिति के शिकार थे जहॉं ह्रदय से वे गॉंधी के साथ थे, लेकिन सिर मार्क्स से प्रभावित था। हॉंलाकि गॉंधीवाद का प्रभाव अधिक था लेकिन मार्क्सवादी प्रभावो से मुक्त न हो सके।"[2] इस प्रकार मज़दूरो, किसानो के सगठन जहॉं मार्क्सवादी विचारधारा से परिचालित हो रहे थे, वहीं समाजवादी भी मार्क्स से प्रभावित थे ।

---

1. सपादक डॉ० सत्या एम० राय . भारत मे राष्ट्रवाद, पृष्ठ 267
2. सपादक डॉ० सत्या एम० राय : भारत मे राष्ट्रवाद, पृष्ठ 276

इस प्रकार बीसवी शताब्दी के पूर्वाश मे वामपथी विचारधारा वाले राष्ट्रवादियो ने दलितो, शोषितो, सर्वहारावर्ग और स्त्रियो की स्थिति मे सुधार कर एक समतामूलक समाज की स्थापना करने का प्रयास किया । साम्यवादी विचारधारा के विचारको का मत था कि आर्थिक स्थिति मे परिवर्तन से सामाजिक एव सास्कृतिक स्थिति स्वयमेव परिवर्तित हो जायेगी । यद्यपि गॉधी जी जैसे राजनीतिज्ञ, सत के व्यक्तित्व के सामने भारत मे साम्यवादी विचारधारा का प्रसार व्यापक स्तर पर नही हो पाया, परन्तु भारतीय राष्ट्रवादी आदोलन मे इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका को अस्वीकार नही किया जा सकता । इसने सामन्तवादी व्यवस्था को कमजोर करके, जन-सामान्य मे आर्थिक समानता की चेतना को सचरित किया। साम्यवादियो ने बौद्धिक वर्ग का ध्यान आर्थिक रूप से विपन्न लोगो की ओर आकर्षित कर, उनकी स्थिति मे सुधार की चेतना को जगाया ।

द्वितीय अध्याय

द्विवेदी-युग का सूत्रपात : पूर्वपीठिका

द्विवेदी-युग का सूत्रपात : पूर्वपीठिका

एक ओर भारतेन्दु युगीन कवियो की काव्य--प्रवृत्तियॉ भक्तिकाल और रीतिकाल से अनुबद्ध है, उनमे श्रृगारिकता और भगवद् भक्ति की धाराऍ प्रवाहित थी। दूसरी ओर भारतेन्दु युगीन काव्य उन्नीसवी शताब्दी के धार्मिक एव सामाजिक सुधार आदोलनो के फलस्वरूप उद्भूत जन--चेतना की भावना से भी अनुप्राणित थी। पुनर्जागरण के फलस्वरूप सामाजिक, सास्कृतिक और राजनीतिक क्षेत्र मे जो सक्रियता दृष्टिगत् होती है, भारतेन्दु--युग की काव्य--रचनाऍ उससे अछूती नही थी। भारतेन्दु कालीन कवि पूर्णत रीतिकालीन काव्य--परिपाटी को छोड नही पाये, फलत उनमे रीति--निरूपण और श्रृगारिकता का मोह बराबर बना रहा। भारतेन्दु युगीन कवियो की काव्य--प्रवृत्ति को लक्ष्य करके डॉ० रामकुमार वर्मा ने लिखा है कि " भारतेन्दु--काल के अधिकाश कवियो मे काव्य साहित्य की प्राचीन परम्परा का अवलम्बन ही मिलता है, किन्तु समय के साथ नवीन भावनाओ का सचार होता गया और आगे चलकर उसने अपनी रूप रेखा ही बदल दी।"[1] डॉ० वर्मा के कथन से स्पष्ट है कि भारतेन्दु युगीन काव्य एक ओर भक्ति मिश्रित श्रृगारिकता से ओतप्रोत था, तो वही सास्कृतिक एव राष्ट्रीयता की भावना को भी अभिव्यक्ति दी है।

भारतेन्दु युगीन कवियो की रचनाओं मे जहॉ राजभक्ति के स्वर की अनुगूँज सुनाई पड़ती है, वही उन्होने अँग्रेजो द्वारा किये जा रहे आर्थिक शोषण का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है। भारतेन्दु--युग के कवियो ने

---

1. डॉ० रामकुमार वर्मा हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृष्ठ 288

सामाजिक एव राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति की है। उन्होने सामाजिक रूढियो, अधविश्वासो, कुरीतियो आदि को अपना काव्य–वस्तु बना कर जन-चेतना को परिष्कृत एव परिमार्जित करने का प्रयास किया। उन्होने काव्य भाषा के रूप मे ब्रजभाषा का ही प्रयोग किया, यद्यपि कुछ रचनाएँ खड़ीबोली मे भी लिखी गयीं। गद्य की भाषा के रूप मे खडीबोली का प्रयोग किया जाता रहा। द्विवेदी–युग मे कविता के स्वरूप एव काव्य–वस्तु आदि क्षेत्रो मे काफ़ी परिवर्तन हुए और साथ ही काव्य उद्देश्य, काव्य–भाषा, प्रकृति–चित्रण आदि दिशाओ मे महत्त्वपूर्ण उपलब्धियॉ अर्जित की। भारतेन्दु युगीन काव्य मे जो युगीन चेतना शैशवास्था मे थी, द्विवेदी–युग मे वह परिपक्वता को प्राप्त हुई। द्विवेदी युगीन कवियों ने उसकी सशक्त अभिव्यक्ति की है।

(क) प्राचीनता और रूढ़ि का खंडन :

हिन्दी साहित्य को रीतिकालीन श्रृंगारिकता और जड़ता की जकडबदी से भारतेन्दु और भारतेन्दु युग के कवियो ने मुक्त कराने का जो प्रयास प्रारम्भ किया था, उसका पूर्ण विकास द्विवेदीयुगीन काव्य में दिखाई पडता है। भारतेन्दु युगीन काव्य रीतिकालीन काव्य परम्पराओ का उत्तराधिकारी था। यद्यपि इस युग की काव्य रचनाओ में रीतिकालीन श्रृगारिकता मिश्रित भक्ति प्रतिष्ठित हुई है, परन्तु इसके साथ ही राष्ट्रीयता और सामाजिक सस्कार की भावना के स्वर भी विद्यमान है। "श्रृगारिक रसिकता, अलकरण मोह, रीति–निरूपण प्रकृति का उद्दीपनात्मक चित्रण प्रभृति रीतिकालीन प्रवृत्तियो का महत्त्व क्रमश. कम होता गया, और भक्ति तथा नीति को प्रमुख वर्ण्य विषयो के रूप मे ग्रहण करने का आग्रह भी नही रह गया।"[1] भारतेन्दु

---

1. सपादक डॉ० नगेन्द्र. हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 459

युगीन कवियो ने मातृभूमि–प्रेम, स्वदेशी वस्तुओ का व्यवहार, गोरक्षा, बाल विवाह निषेध, शिक्षा प्रसार का महत्त्व, अस्पृश्यता, वर्णव्यवस्था मद्य-निषेध, भ्रूण हत्या की निन्दा आदि विषयो को काव्य–वस्तु बनाया। धार्मिक एव सामाजिक रूढियो तथा अधविश्वासो पर प्रहार द्वारा जिस सामाजिक चेतना के प्रसार का कार्य भारतेन्दुयुगीन काव्य मे आरम्भ हुआ था, वह द्विवेदी युगीन काव्य मे पूर्णता को प्राप्त हुआ। भारतेन्दु–युग मे विगलित सामाजिक–नैतिक रूढियो के विरोध का स्वर, उस युग की साहित्यिक पत्रिकाओ मे मुखरित हुआ है।

भारतेन्दु युगीन कवियों मे वर्णव्यवस्था, अस्पृश्यता, नारी विषयक दृष्टिकोण आदि मे द्वैधता दिखाई पडती है। आर्य समाज, ब्रह्म समाज, ईसाई मिशनरियो आदि के प्रभाव से जो नवीन सामाजिक–चेतना उभरने लगी थी, और भारतेन्दु, प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र आदि की कविताओ मे जिस सुधारवादी मनोवृत्ति की प्रमुखता रही, उसके प्रति सभी कवियो का दृष्टिकोण उदारता समन्वित नही था। 'भारत धर्म' कविता मे अम्बिकादत्त व्यास द्वारा वर्णाश्रम–धर्म का दृढ़तापूर्वक अनुमोदन और राधाचरण गोस्वामी द्वारा विभिन्न कविताओ मे प्राचीन शास्त्र नीतियो का समर्थन एव विधवा–विवाह का विरोध किया गया है। ऐसे कवियो को युगीन समस्याओ की पूरी जानकारी थी, किन्तु उनके समाधान के लिए वे परम्परागत धर्मशास्त्र को ही आधार बनाना चाहते थे। इसके विपरीत भारतेन्दु ने वर्णाश्रम धर्म की सकीर्णता का इन शब्दो मे विरोध किया – "बहुत हमने फैलाये धर्म, बढाया छुआछूत का कर्म।" 'मन की लहर' मे प्रताप नारायण मिश्र की दृष्टि, बाल--विधवाओ की करूण दिशा की ओर गयी। "कौन करेजो नही कसकत सुनि बिपति बाल विधवन की।" अभिप्राय

है कि सामाजिक परिवेश मे कुछ कवियो की दृष्टि सुधारवादी थी तो कुछ प्राय यथा स्थितिवादी भी थे।"[1]

द्विवेदी युगीन कवियो ने जाति व्यवस्था, अस्पृश्यता, नारी विषयक रूढियो का खण्डन किया है। 'पचवटी' मे निषाद, शबरी आदि निकृष्ट समझी जाने वाली जाति के लोगो के प्रति राम को प्रेम–पूर्ण दिखाकर अछूतो के साथ गुप्तजी ने अपनी सहानुभूति व्यक्त करते हुए कहा है – "जिन्हे हम नीच समझते हैं, वे हमारी तरह ही प्राणी है, अन्तर केवल इतना है कि हम आवाज उठाकर अपनी सवर्णता की दुहाई देते हैं तथा वे सवर्ण के समस्त दुष्कृत्यो को मूक होकर सह लेते है।"[2] साकेत मे राम की यह घोषणा अस्पृश्यता निवारण की द्योतक है –

बहु जन वन में हैं बने ऋक्ष–बानर–से
मैं दूँगा अब आर्यत्व उन्हे निज कर से।[3]

माण्डवी भरत से यह कहकर कि – 'उसमे भी सुलोचनाएँ है और प्रिय, हममे भी अध'[4] निम्न वर्णों और अस्पृश्य वर्ग से सम्बन्ध जोडने के लिए आग्रह करती है।

मानव–मानव मे किसी प्रकार का विभेद नही होना चाहिए। बिना मानव एकीकरण के मानवता कहाँ रह पायेगी। रामनरेश त्रिपाठी के 'मानसी' मे इस प्रकार वर्णित है –

---

1. सपादक डॉ० नगेन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 461-462
2. मैथिलीशरण गुप्त पचवटी, पृष्ठ 16
3 वही साकेत, पृष्ठ 112
4 वही . वही, पृष्ठ 204

कोई दलित न जग मे हमको पडे दिखाई,
स्वाधीन हो, सुखी हो, सारे अछूत भाई।
सबको गले लगा ले, यह शुद्ध मन हमारा,
छूटे स्वदेश ही की, सेवा मे तन हमारा । [1]

गुप्तजी ने उपेक्षिता नारी के महत्त्व को प्रतिष्ठित किया। "एक नही दो दो मात्राएँ नर से भारी नारी।" [2] कहकर उन्होने नारी श्रेष्ठता की घोषणा किया है। नारी की सहनशीलता सेवा परायणता तथा कोमलता आदि गुणो को अपने इस एक वाक्य "नारी लेने नही लोक मे देने ही आती है।" [3] कह कर सिद्ध कर दिया है। अत. इस प्रकार की उदार–वृत्ति नारी को उपेक्षिता रखना सर्वथा अनुचित है ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामाजिक चेतना की जो द्वैधता भारतेन्दु-युग में थी, वह द्विवेदी युगीन कवियों मे समाप्त हो गयी। द्विवेदी युगीन काव्य मे रूढियो का खण्डन करके एक स्वस्थ समाज की स्थापना की कामना का स्वर सर्वत्र सुनाई पडता है।

(ख) नवीनता का उन्मेष :-

उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे धार्मिक एवं सामाजिक पुनर्जागरण के परिणामस्वरूप ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि सस्थाएँ अस्तित्व मे आए। भारत मे ब्रिटिश विजय, 1857 ई० का स्वतन्त्रता सग्राम, भारत का ब्रिटिश क्राउन के अधीन होना आदि ऐसी

---

1 रामनरेश त्रिपाठी मानसी, पृष्ठ 27

2 मैथिलीशरण गुप्त . द्वापर, पृष्ठ 35

3. मैथिलीशरण गुप्त . जयभारत, पृष्ठ 181

महत्त्वपूर्ण घटनाऍं हैं, जिसके परिणामस्वरूप देश के राजनीतिक,सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र मे व्यापक परिवर्तन हुए।इसके चलते पुरानी सामन्तवादी–व्यवस्था के स्थान पर नयी पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का आविर्भाव हुआ। प्राचीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक सम्बन्धो मे महत्त्वपूर्ण बदलाव आया। पुराने धार्मिक सस्कार और रीति नीतियॉ पुरानी लगने लगी। ब्रह्म समाज ने भारतीय कर्मकाड तथा अधविश्वासो का विरोध करते हुए हिन्दू धर्म की वैज्ञानिकता प्रतिपादित की । आर्य समाज ने मूर्ति–पूजा, जाति प्रथा, बहुदेववाद, बाल विवाह, अनमेल विवाह आदि का विरोध करते हुए, हिन्दू धर्म को नवजागरण का सदेश दिया। समाज सुधार की इस दिशा मे रामकृष्ण मिशन और थियोसोफिकल सोसाइटी ने भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया। रामकृष्ण मिशन ने आध्यात्मिक, और लोक–सेवा के आदर्श की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया। थियोसोफिकल सोसाइटी ने 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का संदेश सुनाते हुए भारतीय सभ्यता और संस्कृति की रक्षा तथा उसके प्रचार–प्रसार मे सहयोग किया। ईसाई मिशनरियो ने शिक्षा के प्रचार–प्रसार मे महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। शिक्षा के व्यापक प्रचार–प्रसार एवं प्रकाशन की सुविधा ने नये साहित्यकारो को जन्म दिया। फलत. साहित्यकार भी पुरातनता के मोह को त्यागने तथा नये विषयो से जुडने को विवश हुए ।

भारतेन्दु–युग के पूर्व हिन्दी कविता के प्रमुख विषय, भक्ति, श्रृगार एव रीतिनिरूपण ही थे। भारतेन्दु युग मे नयी राजनीतिक और सामाजिक चेतना ने उसे नये विषय, नये आयाम दिये। देश की उन्नति, अवनति के लिए उत्तरदायी परिस्थितियों पर प्रकाश डालकर इस युग के कवियों ने जनमानस में राष्ट्रीय भावना के बीजवपन का महत्त्वपूर्ण कार्य किया। "भारतेन्दु की "विजयिनी विजय वैजयन्ती", प्रेमघन की 'आनन्द अरूणोदय' प्रतापनारायण मिश्र की 'महापर्व' और 'नया संवत्' तथा राधाकृष्णदास की 'भारत बारहमासा' और 'विनय' शीर्षक कविताऍं देश भक्ति की प्रेरणा से युक्त

हैं।"[1] भारतेन्दु ने अँग्रेजों की शोषण नीति का प्रत्यक्ष उल्लेख करते हुए लिखा है –

भीतर भीतर सब रस चूसैं हँसि हँसि के तन मन धन मूसैं ।

जाहिर बातन मे अति तेज, क्यो सखि साजन ! नही अग्रेज।[2]

भारतेन्दु की 'भारत भिक्षा', 'रिपनाष्टक' प्रेमघन की 'स्वागत' तथा राधाकृष्ण दास की 'जुबिली', 'विजयिनी विलाप' आदि रचनाओ मे देशप्रेम के साथ ही राजभक्ति की भावना भी मिलती है। वस्तुत. ये कविताएँ उस अवसर पर लिखी गई थी, जब कम्पनी के कठोर शासन का अन्त हो गया था और देश की सत्ता ब्रिटिश क्राउन के अधीन हो गई थी। महारानी की उदार नीति और उनके लम्बे–चौडे प्रलोभनो ने कवियो को ऐसा करने के लिए विवश कर दिया था। इसलिए इन कविताओ को राष्ट्रद्रोही स्वर से युक्त न मान कर नवीन राजनीतिक चेतना का प्रतीक मानना चाहिए। भारतेन्दु युगीन कविता मे सामाजिक चेतना का उन्मेष भी है। इस युग के कवियो ने जनता की समस्याओ के निरूपण की ओर ध्यान दिया । नारी शिक्षा, विधवा विवाह, बाल विवाह, अस्पृश्यता, अनमेल विवाह, मद्य--निषेध आदि को लेकर सहानुभूतिपूर्ण कविताएँ लिखी गई। आर्थिक विषमता तथा सामाजिक अंतर्द्वन्द्व का खुलकर विरोध हुआ। 'मन की लहर' कविता मे प्रतापनारायण मिश्र ने बाल विधवाओं की करूण दशा अकित की है। स्वदेशी वस्तुओ के उपयोग और विदेशी वस्तुओ के बहिष्कार का स्वर भी इस युग मे प्रबल रहा। भारतेन्दु की

---

1. डॉ० त्रिभुवन सिह आधुनिक साहित्यिक निबन्ध, पृष्ठ 57

2 भारतेन्दु हरिश्चन्द्र. भारतेन्दु ग्रंथावली भाग–दो(संपा० ब्रजरत्नदास), पृष्ठ 812

'प्रबोधिनी' प्रेमघन की 'आर्याभिनन्दन' प्रतापनारायण मिश्र की 'होली है' तथा अम्बिकादत्त व्यास की 'भारत धर्म' शीर्षक कविताओं में यही स्वर मुखरित हुए हैं। विदेशी वस्त्रों और अन्य वस्तुओं के आयात को,भारत की आर्थिक दुर्गति का मूल कारण माना गया है। मैथिलीशरण की भारत–भारती में इसका विशद वर्णन हुआ है–

जिस वस्तु को हम दूसरों को बेचते हैं 'एक' में,
लेते उसी को 'बीस' में हैं डूबकर अविवेक में,
जो देश कच्चा माल ही उत्पन्न करके शान्त है,
उसका पतन एकान्त है, सिद्धान्त यह निर्भ्रान्त हैं। [1]

भारतेन्दु-युग के कवियों में देशानुराग व्यंजक भक्ति–भावना की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है। साम्प्रदायिक मत–मतान्तरों पर आधारित धार्मिकता के स्थान पर,उन्होंने उदारता का परिचय दिया है। प्रेमघन ने 'आनन्द अरूणोदय' में धार्मिक सहिष्णुता और समन्वय–भावना पर बल दिया है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी 'जैन कुतूहल' में धार्मिक विद्वेष की व्यर्थता प्रतिपादित की है। यह प्रवृत्ति द्विवेदी काल में और भी अधिक विकासमान रही तथा कालान्तर में धर्म निरपेक्षता के आदर्श में परिणित हो गयी। मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है–

जिसके लिए संसार अपना सर्वकाल ऋणी रहा,
उस धर्म्म की भी दुर्दशा हमने उठा रक्खी न हा !
जो धर्म्म सुख का हेतु है, भव सिन्धु का जो सेतु है,
देखो, उसे हमने बनाया अब कलह का केतु है !! [2]

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : भारत–भारती, पृष्ठ 114
2. वही : वही , पृष्ठ 136

'वैदेही वनवास' मे राम और सीता के चरित्र को लेकर 'वसुधैव कुटुम्बकम' का प्राचीन आदर्श, इस बात की पूर्ति करता है कि हम सब को उसी प्रकार मिल जुल कर जीवन यापन करना चाहिए, जैसा हमारे पूर्वजो ने किया।[3]

इस सम्पूर्ण विश्लेषण के अन्त मे निष्कर्षत. कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युग मे अपने पूर्ववर्ती युग की श्रृगारिकता, रीति निरूपण आदि की तुलना मे राष्ट्रीयता, देश भक्ति, सामाजिक परिष्कार, साप्रदायिक एकता आदि को अधिक महत्त्व दिया गया है। द्विवेदी युग मे यही चेतना आगे परिपक्व हुई है।

(ग) भाषा आंदोलन : खडीबोली (सरस्वती)

भारतेन्दु युगीन रचनाकारो की भाषा मे द्वैधता बनी रही । जहाँ उन्होने काव्य भाषा के रूप मे ब्रजभाषा का प्रयोग किया वही, गद्य की भाषा खडीबोली रही। भारतेन्दु–युग के कवियो ने रीतिकालीन कवियो की भाँति भाषा को शब्द जाल का जामा नही पहनाया है। इसके विपरीत भाषा की रागात्मक स्वच्छन्दता, व्यावहारिकता के वृत्त में उसकी प्रभाव क्षमता, मुहावरो और लोकोक्तियो की प्रासगिकता आदि विशेषताओ के महत्त्व को उन्होने दृष्टि से ओझल नहीं होने दिया है। "भारतेन्दु–युग के कुछ कवियो ने खडी बोली मे भी काव्य रचना की है, किन्तु यह इस युग की प्रतिनिधि काव्य भाषा नही बन सकी । भारतेन्दु (फूलों का गुच्छा) प्रेमघन (मयक महिमा) और प्रतापनारायण मिश्र की खडीबोली कविताएँ तो परिमाण मे बहुत ही कम है, किन्तु श्रीधर पाठक (एकान्तवासी योगी), बालमुकुन्द गुप्त (स्फुट कविता) तथा राधाकृष्ण दास को खड़ीबोली का

---

3 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' वैदेही वनवास, पृष्ठ, 17, 74

सफल पक्षधर कहा जा सकता है।" [1] इस प्रकार द्विवेदी युग मे खडीबोली को जो काव्योचित गरिमा मिली, उसकी पृष्ठभूमि का निर्माण भारतेन्दु-युग मे ही होने लगा था। सन् 1885 मे भारतेन्दु की मृत्यु से 1900 ई० तक साहित्यिक क्रियाशीलता कुछ मद पड़ी। अनुवाद और अनुकरण की प्रवृत्ति बढ गयी थी। ब्रजभाषा और खड़ीबोली के द्वन्द्व मे खडीबोली धीरे--धीरे अपना स्थान बना रही थी। साहित्यिक गतिविधियो को नियत्रित करने वाला कोई महापुरूष नही था। पथभ्रष्टता, अराजकता, और उच्छृखलता का बोल-बाला था। इधर राजनीति में तिलक राष्ट्रीय जीवन को निखार रहे थे, उधर हिन्दी साहित्य मे अनिश्चितता जैसी स्थिति थी। यह सक्रमण काल था। राष्ट्रीय चेतना को अभिव्यक्त करने की क्षमता से युक्त भाषा की आवश्यकता थी। सन् 1837 ई० मे अदालतो मे उर्दू को स्थान मिला था, हिन्दी की उन्नति बाधित हुई थी। हिन्दी बहुसख्यको की भाषा थी। 'हण्टर–कमीशन' के पास 1882 ई० में हिन्दी भाषियो ने कई निवेदन भेजे। हिन्दी दबी थी । शहरी रईस तथा सरकारी कर्मचारी फ़ारसी पढते थे। केवल हिन्दी जानने वालो को गवॉर कहा जाने लगा। अंत मे पं० मदन मोहन मालवीय, श्यामसुन्दर दास, महावीरप्रसाद द्विवेदी और बालमुकुन्द गुप्त आदि के अथक प्रयत्नो से 1900 ई० मे लेफ्टिनेन्ट गवर्नर एटनी मैकडोनल्ड ने अदालत मे हिन्दी भाषा और नागरी लिपि को भी व्यवहार मे लाने का आज्ञा पत्र निकाला, फिर भी हिन्दी का जिस प्रकार उत्थान होना चाहिए था, वह नही हो सका । अॅग्रेजी और उर्दू के कारण हिन्दी भाषा की प्रगति को धक्का लगा । स्वय भारतेन्दु ब्रजभाषा के पक्षधर थे, अत काव्य

---

1. सपादक डॉ० नगेन्द्र . हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 470

मे खड़ीबोली को प्रश्रय न दे सके। खडबोली की कविता लिखकर वे प्रसन्न नहीं हो सके। "सन् 1885 ई० के बाद खडीबोली का आंदोलन जोर पकड़ लिया। सन् 1885 ई० मे श्रीधर पाठक ने खडीबोली में 'एकान्तवासी –योगी' की रचना की । सन् 1885 ई० में अयोध्या प्रसाद खत्री ने खडीबोली आदोलन नाम की पुस्तक छपवाई।" [1] राधा चरण गोस्वामी कविता मे खड़ीबोली को प्रयुक्त करने के नितान्त विरूद्ध थे। आर्य समाज और ईसाई मिशिनरियो ने खडीबोली मे जो कुछ काव्य लिखा था, उसे वे 'पिशाची कविता' [2] कहते थे। उनका कहना था कि "बस यह खड़ीबोली की कविता भी पिशाची नही तो डाकिनी अवश्य ही कवि समाज मे मानी जायेगी।"[3] इस अराजकता के समय मे खडीबोली की कविता की अवस्था कच्ची और कोमल थी। प्रतापनारायण मिश्र "नवीन हिन्दी को बॉस और ब्रजभाषा को ऊख" की उपमा देते थे। ग्रियर्सन ने 6 सितम्बर, 1887 ई० को बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री को पत्र लिखा था, जिसमें काव्य मे खडीबोली के प्रयोग को 'असफल' [4] माना था। श्रीधर पाठक और अयोध्याप्रसाद खत्री जहॉ खड़ीबोली के समर्थक थे, वहॉ प्रतापनारायण मिश्र और राधाचरण गोस्वामी इसके बड़े विरोधी थे। खड़ीबोली का यह आदोलन बडा विवादास्पद रहा । ग्रियर्सन खड़ीबोली पद्य के विरोधी थे और पिनकाट महोदय समर्थक, ब्रजभाषा वाले गद्य मे खड़ीबोली और पद्य

---

1 सपादक शिवपूजन सहाय, . अयोध्याप्रसाद खत्री स्मारक ग्रंथ, पृष्ठ 64

2 वही . वही, पृष्ठ 64

3 वही वही, पृष्ठ 76

4. वही . वही, पृष्ठ 85

मे ब्रजभाषा के ही समर्थक थे, परन्तु खड़ीबोली के समर्थक दोनो की एक ही भाषा चाहते थे। राधाकृष्ण दास ने इस विवाद को हल करने की दृष्टि से दोनो भाषाओ को गद्य और पद्य मे समान रूप से प्रयुक्त करने की बात कही थी। इधर राजनीतिक आंदोलन एवं वैज्ञानिक आविष्कारो से जो जन–चेतना पैदा हो रही थी, तथा ईसाई मिशनरियो और आर्यसमाजी साहित्यकारो ने जो समर्थन दिया था, उससे खडीबोली को बल मिल रहा था। ऐसे विवाद के समय द्विवेदीजी को उस अव्यवस्थित तथा अनियमित खडीबोली को काव्य की भाषा बनाने का और उसे खराद पर चढाने का काम करना पडा। "उन्नीसवी शताब्दी के अत मे भारतेन्दुयुगीन साहित्य की सजीवता कुंठित सी थी। इधर खड़ीबोली की कविता में सूक्ष्म, सरल और स्वाभाविक भाव व्यजना की कमी थी। खडीबोली मे शुरू से ही राष्ट्रीयता और आधुनिकता का समावेश हुआ था। उसका काव्यादर्श ब्रजभाषा से भिन्न था, फिर भी अनगढ थी।"[1] उसमें विविध काव्य रूपों एव शैलियो का अभाव था और उस पर उर्दू का प्रभाव था। भाषा तथा छन्द के प्रयोगो की भी यही दशा थी। ऐसी अवस्था मे आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का हिन्दी मे प्रवेश हुआ, जिससे खड़ीबोली को नयी शक्ति और नया रूप प्राप्त हुआ ।

भारतेन्दु युगीन खड़ीबोली काव्य अपरिनिष्ठ भाषा मे रचा गया। वह काव्योचित गुणो से विहीन थी। यह नये प्रयोग का युग था। सस्कृत, उर्दू, फ़ारसी और प्रांतीय बोलियों तथा अँग्रेज़ी के दैनिक व्यवहार तक के शब्द काव्य मे प्रयुक्त हो रहे थे, जिसमे व्याकरण की अवस्था का

---

3. डॉ० पूनमचंद तिवारी द्विवेदी युगीन काव्य, पृष्ठ 109

अभाव था। भाषा मे शब्द सकरता, शैथिल्य और अव्यवस्था थी। डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिन्दी साहित्य' मे लिखा है कि "भाषा के स्तर व्यजना, कलात्मकता, माधुर्य और सौन्दर्य मे तब वह असमर्थ थी। अँग्रेजी, सस्कृत, बॅगला आदि के काव्यानुसार कई शैलियॉ प्रचलित हो गयी थी। 'सरस्वती' का सपादन सभालते ही द्विवेदी जी ने काव्य–प्रणाली निर्धारित की और सस्कृत, अँग्रेजी, मराठी, उर्दू, तथा बॅगला के काव्य–शास्त्र से भी प्रेरणा लिया। उन्होने काव्य रचना एव काव्यभाषा के निर्माण एव परिमार्जन के साथ काव्य–प्रणाली के स्थिरीकरण और सिद्धान्त निरूपण मे एक समर्थ आलोचक की भॉतिकाम किया।" [1] द्विवेदी युगीन काव्य की कहानी खडीबोली 'सरस्वती' के प्रकाशन से प्रारम्भ होती है। खडी बोली का यह प्रयोग काल था, यह प्रारम्भिक दशा थी।

द्विवेदीजी गद्य और पद्य मे एक ही भाषा को सुनिश्चित करा देने के समर्थक थे। सन् 1903 ई० मे द्विवेदीजी लिखते है– "गद्य एव पद्य की भाषा पृथक्–पृथक् न होनी चाहिए .... सभ्य समाज की जो भाषा हो उसी भाषा मे गद्य एव पद्यात्मक साहित्य होना चाहिए।" [2] 'सरस्वती' उनकी विचार वाहिका थी। "अत द्विवेदी काल की 'सरस्वती' मे केवल द्विवेदीजी की प्रतिभा ही नही है, बल्कि उनके विचारो का भी उसमे प्रतिबिम्ब पडा है।" [3] 'निराला' का मत है कि खड़ीबोली के घट को साहित्य

---

1. डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी . हिन्दी साहित्य, उद्धृत . द्विवेदी युगीन काव्य (डॉ० पूनमचद तिवारी), पृष्ठ 109

2 आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी . रसज्ञरंजन, पृष्ठ 19

3. आचार्य नददुलारे वाजपेयी . हिन्दी साहित्य बीसवीं शताब्दी, पृष्ठ 4

के विस्तृत प्रागण मे स्थापित कर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने मत्रपाठ द्वारा देश के नवयुवक समुदाय को एक अत्यन्त शुभ मुहुर्त मे आमन्त्रित किया और उस घट मे कविता की प्राण प्रतिष्ठा की, हिन्दी साहित्य की वर्तमान धारा पूर्वज्ञान के महासागर की ओर जितना ही आगे बढ़ती जायेगी लोग उतना ही उसके महत्त्व को समझेगे।[1] 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी आदि सभी भाषा को सरल बोलचाल से सम्बन्धित सर्वजनीन और देश काल से मर्यादाबद्ध बनाने पर तुले हुए थे। तत्सम् के स्थान पर तद्भव शब्दों के प्रयोग पर बल दिया गया था ।

द्विवेदी युगीन काव्य भाषा सम्बन्धी विचारो को इस प्रकार रखा जा सकता है – (क) गद्य और पद्य की रचना एक ही भाषा, खडी बोली मे होनी चाहिए। (ख) काव्य भाषा सरल बोलचाल की तद्भव शब्दावली प्रधान हो और शब्दों की तोड़–मरोड नही करनी चाहिए। (ग) काव्य भाषा मे प्रसाद गुण हों, व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियॉ नहीं होनी चाहिए। कवियो का क्षमतापूर्ण शब्द–भण्डार होना चाहिए। शब्द प्रयोगो मे शब्दाडम्बर, अश्लीलता और ग्राम्यता न हो, देशज शब्दों को अपनाना चाहिए। मुहावरे और प्रयोगो का उपयोग, स्वाभाविक अलंकारों का प्रयोग, छन्दबद्धता के साथ–साथ अतुकान्त काव्य भी लिखा जाना चाहिए। बॅगला और उर्दू छन्दो का प्रयोग भी होना चाहिए।

द्विवेदी–युग मे वर्ण्य विषय का अद्भुत विस्तार हुआ। उसमे वैविध्य और व्यापकत्व आया। नायिका भेद को छोडकर सभी

---

4. सूर्यकात त्रिपाठी 'निराला' . उद्धृत . द्विवेदी युगीन काव्य (डॉ० पूनमचद तिवारी), पृष्ठ 110

चिरपरिचित उपादान तो गृहीत हुए ही, साथ ही अनेक नूतन विषयो को भी काव्य मे स्थान मिला। आचार्य द्विवेदी ने 'कवि–कर्त्तव्य' निबन्ध मे लिखा था "चीटी से लेकर हाथी पर्यन्त पशु, भिक्षुक से लेकर राजा पर्यन्त मनुष्य, बिन्दु से लेकर समुद्र पर्यन्त जल, अनन्त आकाश, अनन्त पृथ्वी, अनन्त पर्वत – सभी पर कविता हो सकती है।"[1] इस युग के कवियो ने परोपकार, मुरली, कृषक, सत्य, लडकपन, ईर्ष्या, निद्रा, ब्रह्मचर्य हिन्दी की अपील, कुलीनता, कामना, विद्या आदि शीर्षक वाली कविताएँ लिखीं, जो वर्ण्य विषय के वैविध्य और व्यापकता की प्रतीक है। द्विवेदी युगीन कवियों ने अपनी रचनाओ के माध्यम से त्याग, बलिदान, कर्त्तव्य–पालन आत्म-गौरव जैसे उच्च आदर्शों की प्रेरणा देने का प्रयास किया है। आचार्य नंददुलारे वाजपेयी लिखते हैं – "द्विवेदी जी और उनके अनुयायियों का आदर्श यदि सक्षेप मे कहा जाय तो, समाज मे एक सात्त्विक ज्योति जगाना था। दीनता और दरिद्रता के प्रति सहानुभूति, समय की सामाजिक और राजनीतिक प्रगति का साथ देना, श्रृगार के विलास–वैभव का निषेध, ये सब द्विवेदीयुग के आदर्श हैं। मध्यवर्ग की राष्ट्रीय भावना जो अमीरो के आतंक से छूट नही पाई थी द्विवेदी–युग की आधारशिला है।"[2] देश की आर्थिक विपन्नता, सामाजिक कुरीतियो का विरोध, धार्मिक, एव सामाजिक रूढ़ियो और आडम्बरो का खण्डन, राष्ट्रीयता की भावना, आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा, इनके काव्य के स्वर रहे हैं। आचार्य वाजपेयी लिखते है – "साहित्यिक सामग्री

---

1 सपादक डॉ० नगेन्द्र . हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 501

2 आचार्य नंद दुलारे वाजपेयी हिन्दी साहित्य – बीसवीं शताब्दी, पृष्ठ 12

को समाजव्यापी बनाने का ध्येय लेकर ये लोग निकले थे।" [1] प्रकृति भी स्वतत्र रूप मे काव्य विषय बनी है। मैथिलीशरण गुप्त, 'हरिऔध', रामचद्र शुक्ल, रामनरेश त्रिपाठी आदि के काव्य मे मनोहारी प्रकृति चित्रण मिलता है। 'प्रियप्रवास' का तो आरम्भ ही प्रकृति वर्णन से हुआ है–

दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला ।।
तरू–शिखा पर थी अब राजती ।
कमलिनी–कुल–वल्लभ की प्रभा ।। [2]

द्विवेदीयुगीन कवियो ने प्रेम के आदर्श स्वरूप को ग्रहण किया है। 'प्रियप्रवास', 'साकेत', 'मिलन' आदि में उसका उदात्त स्वरूप देखा जा सकता है। राधा, कृष्ण की कान्ति–दर्शन कर विश्व–प्रेमिका और विश्व सेविका बन जाती है। उर्मिला अपने मन को 'प्रिय–पथ का विघ्न' बनने नही देती है।

इस प्रकार द्विवेदी–युग ने भारतेन्दु–युग की काव्य भाषा की द्वैधता का अंत कर खड़ीबोली को काव्य भाषा के रूप मे प्रतिष्ठित किया। वर्ण्य-विषय मे वैविध्य एवं व्यापकता आयी। सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक समस्याएँ काव्य की विषय बनी। देश की दुर्दशा के चित्रण के साथ–साथ देशवासियो को स्वतन्त्रता प्राप्ति की प्रेरणा भी दी, उन्हे त्याग, आत्म गौरव, आत्मोत्सर्ग एव बलिदान का मार्ग भी दिखाया ।

---

1. आचार्य नददुलारे वाजपेयी . हिन्दी साहित्य –बीसवी शताब्दी, पृष्ठ 7
2. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' . प्रियप्रवास, पृष्ठ 1

(घ) काव्य विषय में परिवर्तन : (पौराणिक और ऐतिहासिक की नयी विवृत्ति)

रीतिकालीन कवियो की दृष्टि मुख्यत रीतिग्रथो एवं नायिका भेदो तथा श्रृगारिक चित्रणो तक सीमित थी। उनका उद्देश्य अपने–अपने आश्रित राजाओ का मनबहलाव करना मात्र था। उन कवियो ने ऐतिहासिक वीरों एवं सांस्कृतिक महापुरूषो के उज्ज्वल चरित्रो को अपने काव्य का विषय नहीं बनाया, अपतिु सुन्दरी नायिका की काया के इर्द–गिर्द मँडराते रहे। उन्होंने नारी के विविध रूपों एवं आदर्श चरित्रों पर भी ध्यान नही दिया। 'सब विषय काव्योपयुक्त हो सकते हैं, अपना–अपना मत प्रकाशन करने की सबकों स्वतन्त्रता है'–इस मत का प्रचार तो भारतेन्दु काल मे ही हो गया था। परन्तु भारतेन्दु कालीन कविता के विषय सीमित ही रहे। द्विवेदी–युग में आकर ही उपर्युक्त मत व्यवहार में परिणत हुआ। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने लिखा कि –"यदि कोई कवि आदर्श पुरूषो के चरित्रों का अवलम्बन करके एक अच्छा काव्य लिखता तो उससे हिन्दी साहित्य को अलभ्य लाभ होता।"[1] आचार्य द्विवेदी के इस कथन की सफल परिणति हरिऔध एवं मैथिलीशरण गुप्त के ग्रथों में हुई। आचार्य द्विवेदी ने विराट प्रकृति एव व्यापक मानवीय जीवन में से किसी वस्तु का चयन कर काव्य सृजन करने की प्रेरणा दी – "कविता का विषय मनोरजक और उपदेशजनक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि कौतूहल का वर्णन बहुत हो चुका। .... सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरजन हो सकता है। फिर क्या कारण है कि उन विषयो को छोड़कर

---

1. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी . रसज्ञ रजन, (कवि कर्त्तव्य), पृष्ठ 5

स्त्रियो की चेष्टाओ का वर्णन करना कोई–कोई कविता की ही चरम सीमा समझते हैं? केवल अविचार और अंध परम्परा।"[1] स्पष्टत. यह कथन द्विवेदी युगीन चेतना तथा काव्य–दृष्टि को उद्घाटित करता है।

द्विवेदी–युग मे मानव–जीवन के विविध रूपों का चित्रण किया गया। इस युग मे ब्रह्म का अवतार माने जाने वाले राम एवं कृष्ण को भी एक मानव की तरह चित्रित किया गया है। यथार्थवादी दृष्टि एव इहलौकिक चेतना से सम्पन्न, ये कवि ईश्वरावतार को भी व्यापक मानवीय सभावनाओ के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करते हैं। इस सम्बन्ध मे 'हरिऔधजी' ने लिखा है – "मैने श्रीकृष्ण चद्र को इस ग्रंथ में (प्रियप्रवास) एक महापुरूष की भांति अकित किया है, ब्रह्म करके नहीं"[2] इस दृष्टि से 'प्रियप्रवास', 'साकेत', 'पंचवटी', 'जयद्रथ--वध', 'अनघ', 'बुद्धचरित', 'रामचरित चिन्तामणि', आदि ग्रंथ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन ग्रथों में ईश्वर के दिव्य एवं अलौकिक कृत्यो को मानवीय सभावनाओ के साथ चित्रित किया गया, जिससे कि नव–युग के मानव को उसमे विश्वसनीयता का आभास मिल सके।

हरिऔधजी ने 'प्रियप्रवास' में कृष्ण को बाल्यावस्था से ही लोकसेवा मे तथा जातीय उत्थान मे सलग्न दिखाया है –

जो होता है, निरत तप मे मुक्ति की कामना से,
आत्मार्थी है, न कह सकते है उसे आत्मत्यागी ।

---

1. महावीरप्रसाद द्विवेदी . उद्धृत, महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, (डॉ० रामविलास शर्मा), पृष्ठ 334

2. अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रियप्रवास, भूमिका पृष्ठ, 30

जी से प्यारा जगत–हित, औ लोक–सेवा जिसे है,

प्यारी सच्चा अवनि–तल मे आत्मत्यागी वही है।[1]

इस युग के कवियो ने यह अनुभव किया कि ईश्वर का दर्शन विलास एव वैभव मे रहकर नहीं किया जा सकता ।उसका साक्षात्कार तो दीन–दुखियो के प्रति सहानुभूति रखने और उनके दुःख निवारण से ही सम्भव है--

मैं ढूढ़ता तुझे था जब कुज और वन मे ।

तू खोजता मुझे था तब दीन के सदन मे ।

तू आह बन किसी की मुझको पुकारता था,

मैं था तुझे बुलाता सगीत मे भजन मे

मेरे लिए खडा था, दुखियों के द्वार पर तू

मै बाट जोहता, तेरा किसी चमन में [2]

इस युग मे अलौकिक पुरूषो के अतिरिक्त ऐतिहासिक वीर, देश–प्रेमियो, सत्याग्राहियो, समाज सुधारको एव सामान्य मानव आदि का भी पर्याप्त चित्रण किया गया है। इस दृष्टि से 'रग मे भग', 'विकट–भट', 'वीर पचरत्न', 'मौर्य विजय', 'प्रणवीर प्रताप', आदि रचनाऍ महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त किसान, भिक्षुक, नारी एवं विधवा भी काव्य के विषय बनें । इस दृष्टि से 'किसान', 'कृषक क्रन्दन', एवं 'अनाथ' आदि रचनाऍ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन ग्रथो मे किसानो की पीड़ा एव उनके भयकर शोषण का बड़ा ही हृदय–विदारक चित्रण किया गया है। सियारामशरण गुप्त ने ऋण–ग्रस्त किसान का वर्णन इस प्रकार किया है –

---

1 अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' . प्रियप्रवास, पृष्ठ 190

2. रामनरेश त्रिपाठी . मानसी, पृष्ठ 37

पशु तुल्य हम लाखो मनुज हा जी रहे क्यो लोक मे।

जीते हुए भी सड रहे पड़कर विषम दुःख शोक मे [1]

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' ने 'कृषक क्रन्दन' मे किसानो की दयनीय स्थिति का वर्णन इस प्रकार किया है। कवि की करूणा दृष्ट्व्य हैं –

भारत भूमि के बने महादुखिया किसान है,

कुछ भी पाते नही लड़ाते लाख जान हैं।

जर्जर बन गये, खिन्न दु.ख भरे ग्लानि है,

कहाँ सो गये दीनबधु करूणा निधान हैं।

एक दीन के लिए जो परम दया आती रही,

कोटि–कोटि हम हैं, नहीं क्या अब वह होती रही [2]

मैथिलीशरण गुप्त ने'विष्णुप्रिया' में नारी के प्रति दोहरे मापदण्ड का चित्रण करके समाज के सामने प्रश्न खड़ा किया है –

अबला के भय से भाग गये,

वे उससे भी निर्बल निकले

नारी निकले तो असती है,

नर यती कहा कर चल निकले । [3]

प्रकृति के क्षेत्र मे भी द्विवेदी युगीन कवियो ने नयी दृष्टि का परिचय दिया है। रीतिकाल की बहुप्रचलित प्रकृति वर्णन की परम्परा (षड्ऋतु वर्णन, बारहमासा, तथा उद्दीपनगत चित्रण) के अतिरिक्त विविध रूपो मे

---

1 सियारामशरण गुप्त अनाथ, पृष्ठ 26

2 गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' . कृषक क्रन्दन, पृष्ठ 80

3 मैथिलीशरण गुप्त विष्णुप्रिया, पृष्ठ 57

प्रकृति का सूक्ष्म एव मनोरम वर्णन किया है। प्रकृति वर्णन की विविधता एव सजीवता की दृष्टि से 'प्रियप्रवास', 'साकेत', 'पचवटी', 'पथिक', 'मिलन', 'बुद्धचरित', आदि अत्यन्त महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। द्विवेदी-युग में प्रकृति का आलम्बनगत चित्रण प्रचुर परिमाण मे हुआ है –

प्रात काल सिधु मे जाग्रत थी जब तुग तरगे,
सत्पुरूषो मे यथा लोक सेवा की उच्च–उमगे।
सैकत तट पर मुग्ध खडे तुम शोभा देख प्रकृति की,
जाग्रत थे जब दिव्य दशा मे अखिल विश्व विस्मृति का [1]

द्विवेदीयुगीन कवि समाज मे व्याप्त अनेक कुरीतियो एव कुव्यवस्थाओ का सूक्ष्म निरीक्षण करते हैं, और उसका जमकर विरोध भी करते है। समाज मे फैले विभिन्न भ्रष्टाचारो को भी इन कवियों ने अपने काव्य का वर्ण्य-विषय बनाया है। सरकारी कर्मचारियो में फैली 'घूस' की प्रवृत्ति पर करारा व्यग्य करते हुए नाथूराम शर्मा 'शंकर' कहते हैं –

"लठों की लूट मच रही है । पूँजी भर पेट पच रही है।
कितने ही राज कर्मचारी । जिनके कर बाग है हमारी,
वेतन भरपूर पा रहे हैं । तिस पर भी घूस ले रहे हैं" [2]

द्विवेदीयुग की रचनाओं मे राजनीतिक चेतना अत्यन्त प्रखर है । इनकी रचनाओ मे पराधीनता से छटपटाती भारतीय चेतना को चित्रित किया गया हैं। स्वाधीनता की चेतना को कवियो ने काफ़ी प्रोत्साहन दिया है। रामनरेश त्रिपाठी समूचे युग को संदेश देते है कि –

---

1 रामनरेश त्रिपाठी पथिक, पृष्ठ 19

2 नाथूराम शर्मा शंकर . सरस्वती, मई, 1916 ई०, पृष्ठ 138

यह प्रत्येक देशवासी का सत्कर्त्तव्य अटल है,

करे देश सेवा मे अर्पण उसमे जितना बल है। [1]

रामनरेश त्रिपाठी ने देशानुराग की भावना का वर्णन इस प्रकार किया है –

जिसने भी सुन पाया उसका ह्रदय विमोहक गान,

हुआ उसी का देश–प्रेम से पूरण प्लावित प्रान । [2]

राष्ट्रीयता की भावना से ओत–प्रोत रचनाओ मे 'भारत–भारती' का विशिष्ट स्थान है। इस युग के कवियों पर भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस की नीतियो, तिलक की मान्यताओ एव महात्मा गॉधी के सिद्धान्तो का प्रचुर प्रभाव पडा है। गॉधी के विचारों की स्पष्ट अनुगूॅज इस युग की कई रचनाओ मे सुनाई पडती है। सत्य–अहिसा एव स्वदेशी के उपयोग की मान्यताओं का बड़ी ही सजीवता के साथ उल्लेख किया गया है। स्वदेशी वस्त्र धारण करने का उपदेश देते हुए आचार्य प्रवर महावीरप्रसाद द्विवेदी कहते हैं –

अरे भाई ! अरे प्यारे ! सुनो बात,

स्वदेशी वस्त्र से शोभित करो गात।

वृथा क्यो फूॅकते हो देश का दाम,

करो मत और अपना नाम बदनाम। [3]

---

1 रामनरेश त्रिपाठी . पथिक, पृष्ठ 56

2 वही मिलन, पृष्ठ 66

3 आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी . उद्धृत महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण (डॉ० रामविलास शर्मा), पृष्ठ 355

उपर्युक्त विवेचन के अन्त मे निष्कर्षत कहा जा सकता है कि द्विवेदी युगीन कवियो की दृष्टि युगानुरूप एव काफी उदार थी। अपने युग मे फैली सर्वत्र अव्यवस्था एव कु–प्रबध को इन लोगो ने काव्य के माध्यम से नियन्त्रित करने की कोशिश की। अपने समय के जीवन की विसगतियो एव पराधीनता की पीडा से बचने के लिए इन लोगो ने पौराणिक एव ऐतिहासिक गरिमामय आख्यानो को लोगो के सम्मुख लाकर पर्याप्त आत्मबल प्रदान किया। इन लोगो की उदारचेतना मे विराट प्रकृति एव सम्पूर्ण मानवता को स्थान मिला है। यही कारण है कि बहुत दिनो से उपेक्षित एव अनदेखे प्रसग भी काव्य–विषय बन सके।

(ङ) द्विवेदी युगीन कवि (प्रमुख एवं गौण) और उनका सामाजिक सरोकार ।

द्विवेदीकाल के प्रमुख एव गौण कवियो मे विभेद करना कठिन है। कुछ ऐसे रचनाकार हैं जिन्होंने काफ़ी परिमाण मे कविताएँ लिखी हैं, फिर भी उनकी कविताओं को श्रेष्ठ काव्य की संज्ञा नही दिया जा सकता, ऐसी स्थिति मे उन्हें प्रमुख कवियो में स्थान न देकर गौण कवियो की सूची मे रखा गया है। प्रमुख कवियों की सूची मे केवल उन्ही कवियो को स्थान मिला है,जिन्होने द्विवेदी युगीन काव्यादर्शों और मान्यताओ को अपने काव्य मे अभिव्यक्ति दी है। इसके अतिरिक्त ऐसे रचनाकारो का भी उल्लेख किया गया है, जिनकी कविताएँ अनेक पत्र–पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती रही है। द्विवेदीयुगीन प्रमुख कवि एव उनकी रचनाएँ निम्नानुसार हैं –[1]

---

1. डॉ० पूनमचद्र तिवारी द्विवेदी युगीन काव्य, पृष्ठ 365

1. प० नाथूराम शर्मा 'शकर' .—'अनुराग—रत्न', 'शकर सरोज', 'गर्भरण्डा रहस्य', 'लोकमान्य तिलक', प्रमुख रचनाऍ है। 'अविद्यानन्द', 'काव्याख्यान', 'पचपुकार', 'मेरा महत्त्व', 'आर्य—पच की आल्हा', 'निदाघ', 'निदर्शन', 'सूर्य ग्रहण', आदि अन्य उल्लेखनीय रचनाऍ हैं। 'शकर—सर्वस्व' मे उनकी समस्त रचनाऍ सग्रहीत है।

2. श्रीधर पाठक .— 'एकान्तवासी', 'श्रान्त पाथिक' (क्रमश एडविन एण्ड एजलीना और ट्रैवलर के अनुवाद है।) 'काश्मीर—सुषमा', 'श्री गोखले प्रशस्ति', 'भारतगीत', 'मनोविनोद', 'जगत् सचाई सार', जॉर्ज वदना आदि उल्लेखनीय रचनाऍ हैं ।

3. अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' .— 'प्रियप्रवास', 'पद्य—प्रसून' 'प्रेम पुष्पोहार', 'चुभते—चौपदे', 'चोखे—चौपदे', 'रस कलस', 'वैदेही वनवास', प्रमुख ग्रथ हैं । इसके अतिरिक्त 'कर्मवीर', 'जीवन—मुक्त', 'हमे चाहिए', 'अविद्या', 'कुलीनता', 'नोक—झोक', 'मनोव्यथा', 'चेतावनी', 'बेटियॉ', 'सेवाऍ आदि रचनाऍ समाज की ऑखे खोलने के लिए लिखी गयीं । प्रकृति सम्बन्धी रचनाओ में 'चित्तौड़ की शारद रजनी', 'कृतज्ञता', 'वसन्त वर्णन',। उल्लेखनीय हैं। 'वीर वधू संयुक्ता' और 'आर्यबाला' मे नारी की ऐतिहासिक वीरता का चित्रण हुआ है

4. राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' .— 'स्वदेशी कुण्डल', 'स्वदेशी वारामासी', 'जागिए', 'हिन्दू विश्वविद्यालय', 'नये सन् का स्वागत' आदि प्रमुख रचनाऍ है। 'मन बन्दर', 'विश्व वैचित्र्य', 'आनद का गीत', 'चेतावनी', अमलतास', 'वसन्त वियोग' आदि उल्लेखनीय है।

5. प० रामचरित उपाध्याय .— 'रामचरित चिन्तामणि', 'सूक्ति मुक्तावली', 'देवदूत', 'भारत भक्ति', 'रामचरित चन्द्रिका', 'राष्ट्रभारती' प्रमुख रचनाऍ

हैं। 'भारत भक्ति' और 'राष्ट्रभारती' राष्ट्रीय कविताओ का सग्रह है।

6. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' .–'राष्ट्रीय', 'त्रिशूल तरग', 'कृषक क्रन्दन', 'कौशल्या विलाप' आदि इनकी प्रमुख रचनाऐं है।

7. मैथिलीशरण गुप्त – 'रग मे भग', 'जयद्रथ–वध', 'भारत–भारती', 'शकुन्तला पत्रावली', 'किसान', 'पचवटी', 'हिन्दू', 'वकसहार', 'स्वदेश सगीत', 'वन वैभव', 'झकार', 'नहुष', 'सिद्धराज', 'मगलघट', 'यशोधरा', 'द्वापर', 'साकेत', 'जय भारत', 'विष्णुप्रिया', 'रत्नावली', आदि प्रमुख रचनाऐं हैं। इसके अतिरिक्त 'मेघनाथ वध', 'विरहिणी' ब्रजागना', 'प्लासी का युद्ध', 'स्वप्नवासव दत्ता', आदि अनुदित रचनाऐं हैं ।

8. प० लोचनप्रसाद पाण्डेय .– 'नीति कविता', 'मेवाड़ गाथा', 'पद्य–पुष्पाजलि', प्रमुख रचनाऐं हैं। फुटकल रचनाओं में 'नदी कूल मे सायकाल', 'ग्रीष्म', 'वर्षा', 'हेमन्त' आदि उल्लेखनीय हैं।

9. पं० रामनरेश त्रिपाठी .– 'मिलन', 'पथिक', 'स्वप्न' इनके प्रसिद्ध खण्ड काव्य हैं। इसके अतिरिक्त 'जन्मभूमि', 'भारत', 'हिन्दुओ की हीनता', 'स्वेदशगीत', 'महापुरूष' के लक्षण', 'माता का उद्धार' आदि फुटकल रचनाऐं हैं ।

10. ठाकुर गोपालशरण सिंह – 'माधवी', 'सचिता', 'मानवी', 'ज्योतिष्मती', 'कादम्बिनी' आदि इनकी रचनाऐं है।

11. सियारामशरण गुप्त .– मौर्य विजय', 'अनाथ', 'आत्मोत्सर्ग', 'पाथेय', 'राघव– विलाप', 'तिलक वियोग', आदि प्रमुख रचनाऐं हैं।

12. माखनलाल चतुर्वेदी – 'हिमतरंगिणी', 'हिमकिरीटिनी', 'चेतावनी', 'पत्नी', समर्पण आदि प्रमुख रचनाऐं हैं।

13. प० जगन्नाथदास 'रत्नाकर' – ब्रजभाषा के प्रमुख कवि हैं।

'हिण्डोला', 'समालोचनादर्श', 'हरिश्चन्द्र', 'कलकाशी', 'उद्धव शतक', गगावतरण', 'श्रृगार लहरी', 'गगा लहरी', 'श्रीविष्णु लहरी', 'प्रकीर्ण पद्यावली' 'वीराष्टक' इनकी प्रमुख रचनाएँ है।

14. सत्यनारायण 'कविरत्न' – 'प्रेमकली', 'हृदय तरग', 'भ्रमर दूत', प्रमुख रचनाएँ हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय, प्रकृति सम्बन्धी, प्रख्यात व्यक्तियो की प्रशस्तियॉ, तथा प्रेम विषयक अनेक सुन्दर रचनाएँ है।

गौण कवि :- द्विवेदीयुगीन काव्य समृद्धि मे कुछ अन्य कवियो का योगदान भी उल्लेखनीय है। इनमें बालमुकुन्द गुप्त, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लाला भगवानदीन, सैय्यद अमीर अली 'मीर', गिरिधर शर्मा 'नवरत्न', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, रूपनारायण पाण्डेय, मुकुटधर पाण्डेय आदि प्रमुख हैं।

उपर्युक्त काव्य निर्माताओ के अतिरिक्त और भी अनेक महानुभावो ने द्विवेदी–युग मे हिन्दी काव्य की श्री वृद्वि की है जिनमे लोकमणि, जगन्नाथ प्रसाद, कामता प्रसाद गुरू, माधव शुक्ल, सत्यशरण रतूडी, मन्नन द्विवेदी, शिवकुमार त्रिपाठी, पार्वती देवी, तोष कुमारी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

द्विवेदीयुगीन कवियो का चितन समाज सापेक्ष है। उन्हे समाज मे व्याप्त कुरीतियो, बुराइयो, विसगतियो को दूर करके स्वस्थ समाज के निर्माण की चिता है। लोक की पीडा उनके काव्य का मूल स्वर है। यही कारण है कि उनके मन मे समाज व्यवस्था, भारतीय समाज के स्तरीकरण, उसमे निहित उँच–नीच, छुआछूत और लिगादि भेदो के साथ ही समाज मे प्रचलित–बाल हत्या, नर–बलि, विधवा–विवाह–निषेध, सती–प्रथा, बहुविवाह अनमेल विवाह, मदिरो एव तीर्थस्थलो में व्याप्त

व्यभिचार, अधविश्वास एव पाखण्डो को लेकर पीडा का भाव है। जिस दृष्टि बोध एव मानव निष्ठा की सृष्टि, विज्ञान के द्वारा की गई थी, उसके चलते 'मानव' चितन के केन्द्र मे आ गया। द्विवेदीयुगीन काव्य मे व्यष्टि के बदले समष्टि के स्वर की अनुगूँज प्रमुख है। द्विवेदी युगीन काव्य मे लोक कल्याण की भावना सर्वत्र विद्यमान है। अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' काव्य के व्यापक महत्त्व का समर्थन करते हुए लिखते है – "कविता का उद्देश्य मनोविनोद ही नही, समाज उत्थान, देश सेवा, लोक–शिक्षण परोपकार और सदाचार शिक्षा आदि भी है।"[1] इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु द्विवेदी–युग के कवियो ने भारतीय सस्कृति के महापुरूषो का चित्रण कर के, लोगो को उनके आदर्शमूलक कर्मों एव जीवन पद्धतियो से परिचित कराया । विदेशी प्रभुता एवं ऐश्वर्य से आक्रान्त तत्कालीन भारतीय जनमानस के सम्मुख भारतीय सस्कृति के अविस्मरणीय एव महिमापूर्ण पक्षो को उदघाटित कर भारतीय जनता के आत्मबल को पुष्ट करके, उनमे आत्मगौरव की वृद्धि करता है। मैथिलीशरण गुप्त ने तत्कालीन समाज मे व्याप्त भयकर धनलिप्सा के सम्मुख, प्राचीन भारतीय आदर्श को इन शब्दो मे प्रस्तुत किया गया –

मै आर्यों का आदर्श बताने आया,
जन–सम्मुख धन को तुच्छ जताने आया ।।[2]

प्राचीन भारतीय मानव–धर्म का परिचय हरिऔधजी ने इन शब्दो मे दिया है –

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' बोलचाल, पृष्ठ 219

2. मैथिलीशरण गुप्त . साकेत, पृष्ठ 110

विपत्ति से रक्षण सर्व–भूत का, सहाय होना अ–सहाय जीव का ।

उबारना सकट से स्व–जाति को, मनुष्य का सर्व प्रधान धर्म है।।[1]

'भारत–भारती' मे गुप्तजी देशवासियों को पतितावस्था से ऊपर उठने का विनम्र प्रोत्साहन इस प्रकार देते है–

हम कौन थे, क्या हो गये है और क्या होगे अभी,

आओ, विचारे आज मिलकर ये समस्याएँ सभी । [2]

श्रीधर पाठक ने हिन्दुओ की दुर्दशा के समकालीन चित्र प्रस्तुत करते हुए सुधारो की आवश्यकता पर बल दिया है। बाल विधवाओ का करूण चित्र प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं –

बाल–विधवा श्रापवश यह भूमि पातक भई।

होत दु:ख अपार सजनी निरखि जग निठुरई ।। [3]

'शकर' की रचनाओ मे विधवा विवाह का प्रबल समर्थन मिलता है उनकी 'प्रार्थना' [4], 'निषिद्ध जीवन' [5] 'धर्मवीरो की कर्मवीरता' [6] आदि कविताओ मे विधवा पुनर्विवाह न होने से उत्पन्न गर्भपात और भ्रूणहत्या आदि दुष्कर्मो से घर की मानहानि की ओर संकेत तथा विधवाओ के उद्धार करने की प्रेरणा मिलती है। ठाकुर गोपालशरण सिंह ने दहेज प्रथा का

---

1. अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृष्ठ 116
2 मैथिलीशरण गुप्त भारत–भारती, पृष्ठ 14
3 श्रीधर पाठक मनोविनोद, पृष्ठ 170
4. नाथूराम शर्मा अनुराग–रत्न, पृष्ठ 3
5 वही . वही, पृष्ठ 113
6. वही . वही, पृष्ठ 156

विरोध किया तथा स्त्रियो की अशिक्षा और हीन दशा पर भी लिखा –

भगवान हिन्दू जाति का उत्थान कैसे हो भला ।

नित यह कुरीति दहेज वाली घोटती उसका गला ।।

*　　*　　*

अगणित कुटुम्बो का किया इस राक्षसी ने नाश है ।

तो भी बुझी न अभी अहो, इसकी रूधिर की प्यास है ।।[1]

आगे कवि ने स्त्री शिक्षा की वर्तमान दशा का वर्णन इस प्रकार किया है–

आज अविद्या मूर्ति सी हैं, सब श्रीमतियॉ यहॉ ।

दृष्टि अभागी देख ले उनकी दुर्गतियॉ यहॉ ।। [2]

मैथिलीशरण गुप्त ने कृषकों की दीन–हीन दशा का चित्रण इस प्रकार किया है – "भिक्षुक बनाते पर विधे । कर्षक न करना था उन्हे।" [3] नाथूराम शर्मा 'शकर' ने किसानो की दुर्दशा पर लिखते हुए कर भार को भुजग कहा है –

कुछ दीन किसान कमाय रहे,

*　　*　　*

इनको कर भार भुजंग हुआ । [4]

तत्कालीन शिक्षा तथा अन्यान्य विषयो पर 'शकर' का 'हमारा अध पतन' कविता महत्त्वपूर्ण है। भारत की दुर्दशा का यह चित्र दृष्ट्व्य है–

---

1. ठाकुर गोपालशरण सिह . सरस्वती खण्ड 14, सं 1, 1913 ई०
2. वही . सरस्वती खण्ड 26, स 6, 1925 ई०
3. मैथिलीशरण गुप्त . भारत–भारती, पृष्ठ 96
4. संपादक हरिशकर शर्मा शकर–सर्वस्व, पृष्ठ 26

कीचड में केहरी पडा है,

गीदड दल घात मे खड़ा है। [1]

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने हिन्दू–मुस्लिम समस्या पर अपना विचार व्यक्त करते हुए लिखा –

मुसलमान हिन्दुओ, वही है कौमी दुश्मन,

जुदा जुदा जो करे, फाडकर चोली दामन । [2]

'पूर्णजी' का मत है कि " हैं भ्राता सब मनुज" का गॉधीवादी मत्र ही उपादेय है। यही बात 'शकर' कहते हैं –

"जाति पॉति के धर्म–जाल मे उलझे पड़े गवॉर ।

मैं इन सबको सुलझा दूँगा, करके एकाकार । [3]

इस प्रकार द्विवेदीयुगीन कवियो ने विधवा, किसान, अछूत, नारी, दुर्भिक्ष, दलित, बाल और वृद्ध विवाह, छुआछूत, आडम्बर, निर्धनता, अविद्या, पुजारी, तीर्थपण्डे, रईसो की विलासिता, धार्मिक मतवाद एव सामाजिक कुरीतियॉ आदि विषयो पर काव्य रचना करके, समाज व्यवस्था में परिवर्तन की मॉग प्रस्तुत की । अत हम कह सकते हैं कि समाज की दुर्बलताओ, सुधारो की आवश्यकताओं, एव अपेक्षाओं के मध्य कवियों ने देश के राजनीतिक तनावो एव उलझनो के बीच समाज को देखा और नयी सम्भावनाओ की ओर मोड़ा ।

---

1 सपादक हरिशकर शर्मा . शकर सर्वस्व, पृष्ठ 153

2 राय देवीप्रसाद 'पूर्ण सग्रह' पूर्ण सग्रह (सग्रहकर्त्ता– लक्ष्मीकात त्रिपाठी), पृष्ठ 212

3. नाथूराम शर्मा शंकर सरस्वती खण्ड 9, स 5, 1908 ई०

(च) मानवतावाद की स्थापना और लोकमंगल का उन्मेष :-

भक्तिकाल ने शास्त्र सम्मत और खडन–मडनवादी व्यापक दृष्टि दी तथा धर्म की सकीर्णता ने व्यक्ति का व्यक्तित्व छीन लिया। रीतिकाल के शीश–महलो में राजा–रानी, सामन्त, सरदार का श्रृगार तथा विलास का कल्पना लोक जैसा जीवन, अधिकाशत सामाजिक तथा मानवीय चेतना से उदासीन रहा । भारतेन्दु युगीन काव्य का स्वरूप श्रृगारिक ही रहा, यद्यपि वहाँ सामाजिक चेतना के स्वर भी विद्यमान है। भारतेन्दु काल मे देश की गरीबी बढ़ती रही है ।

निरधन दिन–दिन होत है भारत भुव सब भॉति ।

ताहि बचाइ न कोऊ सकत निज भुज बुधि, बल–काति ।।[1]

भारतेन्दु–युग मे हर ओर संकट था । राजभक्ति करके कुछ जन–नायक गौरव का अनुभव कर रह थे। समाज ऐसे समय मे आर्थिक दासता से मुक्ति पाने के लिए छटपटा रहा था । भारतेन्दु की 'भारत मे मची है होरी' रचना में तत्कालीन समाज का चित्र और उसमे से झॉकती हुई देश की दुर्दशा का चित्र बडा विचारोत्तेजक है –

भारत मे मची है होरी ।।

* * *

भई पतझार तत्व कहुँ नाही वसन्त प्रगटो री।

पीरे मुख भई प्रजा ह्वै सोई फूली सरसो री ।।

* * *

---

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र · भारतेन्दु ग्रंथावली भाग–दो (सपा० ब्रजरत्न दास), पृष्ठ 736

तब स्वाधीन पनो, धन–बुधि बल फगुआ माहि लग्यौ री।

*   *   *

सब कुछ जरि गयौ होरी मे तब धूरहि धूर बचो री।[1]

द्विवेदीयुगीन कवियो ने समाज की ज्वलत समस्याओ का यथोचित चित्रण करके पाठको को पर्याप्त मात्रा मे बौद्धिक परितोष प्रदान किया। इन कवियो के अनुसार मनुष्य जन्म से समान है, अत उसमे भेद–भाव करना उचित नही है। समानता, स्वतत्रता एव बन्धुत्व मानव का जन्म सिद्ध अधिकार है। इस युग मे मानवीय मूल्यो के चित्रण की मात्रा के अनुसार कविता की महत्ता निर्धारित किया गया – "जिस रचना अथवा कविता कलाप में जितनी अधिक मात्रा मे मानवता का प्रदर्शन होगा, वह कविता उतनी ही अधिक मात्रा मे महत्त्व की अधिकारिणी होगी ।"[2] मानवता के विकास के कारण, इन कवियो ने राजा को ईश्वर का अश या अवतार न मानकर, उन्हें सामान्य मानव (प्रजा) का प्रतिनिधि मात्र माना है –

"राजा प्रजा का पात्र है, वह एक प्रतिनिधि मात्र है।"[3]

ससार को छोडकर ईश्वर की खोज करने की प्रवृत्ति को इन कवियों ने निन्दनीय एव स्वार्थी प्रवृत्ति बताया, जिसके द्वारा मानव का कल्याण हो सके; वही मनुष्य महान है, उसी का कर्म पूजा हैं। इसलिए रामनरेश त्रिपाठी ने "ईश्वर भक्ति लोक-सेवा है।"[4] का अमर सदेश दिया है।

---

1 भारतेन्दु हरिश्चन्द . भारतेदु ग्रथावली भाग–दो (सपा० ब्रजरत्न दास), पृष्ठ 405, 407

2 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' . सन्दर्भ सर्वस्व, पृष्ठ 187

3 मैथिलीशरण गुप्त वकसंहार, पृष्ठ 22

4. रामनरेश त्रिपाठी मिलन, पृष्ठ 12

द्विवेदी–युग मे सत्ता और जनता का सघर्ष था। विदेशी शासन से मुक्ति, जनता मे भोजन, वस्त्र, आवास, स्वास्थ्य एव जीवन स्तर की समस्याओ को हल करने की प्रवृत्ति सम्बन्धी चेष्टाएँ काव्य मे स्थान पा रही थी। विवेकानन्द का अद्वैत दर्शन की व्यावहारिक व्याख्या का प्रभाव चतुर्दिक फैला हुआ था। जिसका परिणाम यह हुआ कि – "करूणा, विश्वबन्धुत्व, समभाव, सत्य अहिसा, सहनशीलता, क्षमा प्रेम, सहानुभूति, सभी धर्मो की समानता, उँच–नीच का भेदभाव, अछूतोद्धार और धर्म के क्षेत्र मे समान अधिकार, जो कि अलग–अलग या सामूहिक रूप से मानवता के पोषक अग है, द्विवेदी युगीन साहित्य मे जीवन–सापेक्ष बन गये ।"[1] द्विवेदी युगीन काव्य अपनी यथार्थ अभिव्यक्ति के साथ–साथ मानवता का सिरा भी पकड़े हुए है। केवल द्विवेदी–युग में ही मनुष्य को मनुष्य के रूप मे देखा गया था । द्विवेदीयुगीन कवियो ने काव्य मे श्रमिक, किसान, दलित वर्ग, नारी, पराधीन देश, भूखमरी, बेकारी, कुरीतियाँ रूढ़ियाँ आदि विषयो को अपनाया और मानवता की दुहाई दी। सेवा तथा सहानुभूति ईश्वर के पर्याय बन गये । गुप्तजी ने 'भारत–भारती' में लिखा है–

दुर्भिक्ष – दुर्भिक्ष मानो देह धर के घूमता सब ओर है" [2]

* * *

कुल जाति–पाँति न चाहिए, यह सब रहे या जाय रे ।
बस एक मुट्ठी अन्न हमको चाहिए अब हाय रे ।[3]

---

1. डॉ॰ पूनमचद तिवारी . द्विवेदी युगीन काव्य, पृष्ठ 135

2 मैथिलीशरण गुप्त . भारत–भारती, पृष्ठ 97

3. वही . वही, पृष्ठ 100

कृषक– पानी बना कर रक्त का, कृषि कृषक करते है यहाँ,
फिर भी अभागे भूख से, दिन रात मरते हैं यहाँ। [1]

स्त्रियाँ– पाले हुए पशु–पक्षियो का ध्यान तो रखते सभी,
पर नारियों की दुर्दशा क्या देखते हैं हम कभी ?[2]

'भारत–भारती' के अशो को देखकर तत्कालीन भारत का चित्र उभर आता है। ऐसी दुरावस्था मे हमे मानवीय दृष्टिकोण अपनाने की कितनी आवश्यकता थी समझा जा सकता है। परन्तु समाज चुप था। कवि को इसीलिए कहना पडा –

"होती प्रलय के पूर्व जैसे स्तब्ध सारी सृष्टि है।" [3]

सचमुच मे वह प्रलय आया। तिलक और गॉधी के गरम और नरम दलो के साथ चलकर जनता ने देश को आजादी के राज–मार्ग पर दौडा दिया ।

द्विवेदीयुगीन सभी कवि राष्ट्र, समाज और जाति से सम्बन्धित विषयो को काव्य का विषय बनाए । लोकहित उनका लक्ष्य था, मानवता का उत्थान ही उनकी साधना थी। मैथिलीशरण गुप्त की 'कृषक कथा' और 'भारतीय कृषक' कविताओ मे तथा 'किसान' रचना मे भारतीय किसान के दुखी जीवन का करूण, दारूण तथा भयावह चित्रण हुआ है। श्रीगयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' के 'कृषक क्रन्दन' काव्य सग्रह मे 'आर्त कृषक' 'दुखिया किसान' और 'कृषकक्रन्दन' किसानो के दुखी जीवन को व्यक्त करने वाली रचनाएँ हैं। सियारामशरण गुप्त का 'अनाथ' और 'एक फूल की

---

1. मैथिलीशरण गुप्त . भारत–भारती, पृष्ठ 103
2. वही . वही, पृष्ठ 148
3. वही वही, पृष्ठ 171

चाह' रचनाओ मे भूख, दरिद्रता, बीमारी, वेदना, मृत्यु का साक्षात तथा अछूतोद्धार आदि समस्याओ का हृदयस्पर्शी चित्रण हुआ है ।

द्विवेदीयुगीन काव्य मे नारी स्वातन्त्र्य सम्बन्धी भावना का विकास हुआ है। स्वयं आचार्य द्विवेदीजी ने 'कान्यकुब्ज अबला विलाप' लिखकर मार्गदर्शन किया –

जहॉ हमारा आदर होता वहीं देवता करते वास,
जहॉ निरादर होता वह घर हो जाता सत्यानाश ।[1]
कन्या कुल को भॉति–भॉति से पीड़ित हम नित करते हैं।
मुनियों के वंशज होने का तिस पर दम भरते हैं ।।[2]

श्रीधर पाठक, 'हरिऔध', 'सनेही' और अन्य आलोच्य युगीन कवियों ने नारी सम्बन्धी समान अधिकार तथा सहकर्मिणी की उच्च भावना को खुलकर प्रश्रय दिया । द्विवेदी युग की यह एक बहुत बड़ी देन है। नारी अब "ढोल गवॉर शूद्र पशु नारी" के सन्दर्भ मे नही देखी जा रही थी। उसका व्यक्तित्व अब सामाजिक एव आर्थिक क्षेत्र में अपनी प्रतिष्ठा की मॉग कर रहा था । राधा का लोकहितकारी रूप आलोच्य काल मे इस प्रकार चित्रित किया गया –

वे छाया थी सु–जन शिर की शासिका थी खलो की ।
कगालो की परम निधि थी औषधी पीड़ितो की ।
दीनो की थी बहिन, जननी थी अनाथाश्रितो की ।

---

1. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी . द्विवेदी काव्यमाला (सपा० प० देवीदत्त शुक्ल), पृष्ठ 425

2 वही : वही, पृष्ठ 436

आराध्या थी ब्रज–अवनि की, प्रेमिका विश्व की थी।[1]

गुप्त जी के 'साकेत' की उर्मिला और कैकेयी, 'यशोधरा' की यशोधरा और द्वापर की विधृता आदि के चित्रण नारी की वकालत, उसकी प्रशंसा एव तरफदारी के प्रमाण हैं। इसीलिए मैथिलीशरण गुप्त ने यशोधरा की सीमा रेखा मे नारी की महान् त्याग भावना को स्वय गौतम बुद्ध प्रणाम करते है।[2]

'मानव सेवा ईश्वर सेवा का प्रतिरूप है।' आलोच्य काल का साहित्यकार इस विचार से प्रभावित हुआ। 'प्रियप्रवास' की राधा तथा कृष्ण का मानव प्रेम, जन–सेवा, विश्वात्मा भाव और लोकहित की अदम्य कामना के रूप मे मिलता है। 'मिलन' मे विजया द्वारा एक निर्धन परिवार की सेवा मे सही दाम्पत्य प्रेम का अनुभव किया गया है। 'स्वप्न' मे दीन–हीन और असहायों के बीच हरि का दर्शन इसी मानव सेवा का प्रतिरूप है।

द्विवेदीयुगीन काव्य मे मानवता को धर्म से भी बडी उपलब्धि माना गया है; बिना मानवता के लोक–कल्याण संभव नहीं है। यहाँ नारी सहधर्मिणी, सहकर्मिणी और समान अधिकारों की पात्र मानी गयी। ईश्वर सेवा का सही रूप मानव–सेवा तथा जन–सेवा समझा जाने लगा। अछूत, किसान, मजदूर, अशिक्षित नारी एव विधवा काव्य के वर्ण्य विषय बने। 'सनेहीजी' ने लिखा –

---

1 अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रियप्रवास, पृष्ठ 209

2. दीन न हो गोपे, हीन नही नारी कभी,
भूत–दया–मूर्ति वह मन से, शरीर से,

मैथिलीशरण गुप्त यशोधरा, पृष्ठ 110

खपाया किये जान मजदूर, पेट भरना, पर उनका दूर ।
उडाते माल धनिक भरपूर, भलाई, लड्डू मोतीचूर ।।

* * *

अन्नदाता है धीर किसान, सिपाही दिखलाते है ज्ञान।[1]

रामचन्द्र शुक्ल की 'अछूत की आह' बडी मार्मिक रचना है –

हाय हमने भी कुलीनो की तरह, जन्म पाया, प्यार से पाले गये ।
जी बचे, फूले फले तो क्या हुआ, कीट से भी तुच्छतर माने गये।
जो दयानिधि को तनिक आवे दया, तो अछूतो की उमडती आह का ।
यह असर होवे कि हिन्दुस्तान मे पॉव जम जावे परस्पर प्यार का।[2]

इस सम्पूर्ण विश्लेषण के अन्त मे निष्कर्षत कहा जा सकता है कि द्विवेदी–युग के रचनाकार मानवता के उच्च आदर्शो से प्रभावित है। उनकी करूणा, दया एव सहानुभूति समाज के शोषित, दलित, असहाय और उपेक्षितो के प्रति उमडी है। उनकी यह उच्च भावना लोक की पीड़ा से उद्‌भूत होकर एक ऐसे समाज की कामना करता है, जिसमे सभी सुखी हो, असमानता न हो, शोषण मुक्त हो, समभाव की भावना हो। इनका, सचमुच मानवीय सरोकार था, किसी वाद के तहत समाज के वर्ग विशेष के प्रति आक्रोश नही । इसीलिए उनके काव्य–फलक मे एक विराट समाज उभर कर सामने आया, जिसमे यदि विसगतियॉ और विडम्बना के प्रति दीप्त आक्रोश था;तो,उसके उन्मूलन की मानवीय प्राणवत्ता भी।सबकुछ लोकमगल

---

1. गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' उद्धृत · महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग (डॉ० उदयभानु सिह), पृष्ठ 246
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल . सरस्वती, नवम्बर, 1906 ई०,पृष्ठ 442

से प्रेरित था, मानव–मात्र के प्रति मानवीय करूणा से, मानवीय करूणा ही इस लोकमगल के लिए दीपस्तभ बनी रही। इसकी व्यापकता मे स्त्री, अशिक्षित व्यक्ति, किसान, मजदूर, अछूत, मुसलमान, उपेक्षित अन्य पात्र आदि सभी शामिल हैं।

तृतीय अध्याय

लोक-मंगल के तत्त्व और राष्ट्र-प्रेम का संश्लेष

लोक-मंगल के तत्त्व और राष्ट्रप्रेम का संश्लेष :

उन्नीसवी शताब्दी के सास्कृतिक पुनरूत्थान आदोलन का मूल उद्देश्य धार्मिक एव सामाजिक क्षेत्र मे व्याप्त विद्रूपता, विषमताओं, विसंगतियो आदि को दूर करके एक स्वस्थ्य एव प्रगतिशील समाज की स्थापना करना था। सामाजिक एव धार्मिक क्षेत्र मे व्याप्त विसगतियो एव विषमताओ के परिष्कार एव परिमार्जन की प्रक्रिया ने लोगो में जिस चेतना को सचरित किया, कालान्तर मे वही चेतना राष्ट्रीयता के विकास मे महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई। यह सास्कृतिक राष्ट्रीयता के उन्मेष का काल था। इस सन्दर्भ मे रामधारी सिह दिनकर का यह कथन उल्लेखनीय है– " राष्ट्रीयताभारत वर्ष मे पुनरूत्थान की कुक्षि से उत्पन्न हुई।"[1] स्पष्ट है कि उन्नीसवी शताब्दी के पुनरूत्थान आदोलन ने जिस सास्कृतिक राष्ट्रीयता को जन्म दिया, प्रकारान्तर से वही भारतीय राष्ट्रवाद की नीव बनी। राष्ट्रीय भावना की जागृति के साथ पाश्चात्य सभ्यता के अनुकरण के प्रति विरोध प्रारम्भ हुआ, स्वामी दयानद सरस्वती, स्वामी विवेकानंद, ने धर्म और अध्यात्म मे भारत वर्ष की श्रेष्ठता प्रमाणित की और बाल गगाधर तिलक ने राजनीति में भारतीय नीति का पोषण किया। उनके आदर्श पर साहित्य और समाज में भी भारतीयता की विजय श्री अग्रसर हुई। बग–विच्छेद के कारण असतोष की जो लहर 1905 ई० मे स्वदेशी आदोलन के नाम से चल पडी, उसने इस राष्ट्रीय भावना को सबसे अधिक शक्ति प्रदान की। उग्र राष्ट्रवाद के मूल मे सास्कृतिक चेतना क्रियाशील थी। उन्होंने अपना आदर्श उदार राष्ट्रवादियों के विपरीत भारतीय सस्कृति, धर्म, भाषा एव साहित्य आदि को बनाया। महात्मा गॉधी का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त, सर्वोदयी विचारधारा, दलितोद्धार आदि लोक कल्याण और राष्ट्रप्रेम से ओतप्रोत था। यहॉ वैयक्तिक प्रेम–भाव का प्रवाह मानवता की ओर हुआ

---

1. रामधारीसिह दिनकर . पंत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ 17

है। अब वैयक्तिक प्रेम की अपेक्षा, मानव–प्रेम, लोक–प्रेम, धर्म–प्रेम, समाज–प्रेम, राष्ट्र–प्रेम, देश–प्रेम क्रमश महत्त्वपूर्ण हो गया। इस प्रकार व्यष्टि की अपेक्षा समष्टि का चितन महत्त्वपूर्ण हो उठा। यही समष्टि चितन लोक–मांगलिकता का मूल तत्त्व है। लोगो मे निस्वार्थता, त्याग की भावना, करूणा आदि उच्च–मनोभावो का सचरण हुआ। उन्नीसवी शताब्दी के अंत तक सास्कृतिक राष्ट्रीयता के विकास की प्रक्रिया लगभग पूरी हो चुकी थी। अब आवश्यकता थी ब्रिटिश सत्ता के शोषण, अन्याय, अत्याचार दुर्दमनीय शक्ति के खिलाफ़ खडा होकर राष्ट्र को मुक्त कराना, जिससे राष्ट्र पुन. अपने गौरव, वैभव एव समृद्धि को पुन. प्राप्त कर सके और अन्तत. यही हुआ भी।

राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त 'भारत–भारती' में इसी सास्कृतिक एव राष्ट्रीयता का आख्यान प्रस्तुत किया है। "इस युग मे काव्य की सबसे बड़ी प्रेरणा थी–सास्कृतिक और नैतिक चेतना। इन कवियो का उद्देश्य किसी व्यक्तिगत विषय तक ही सीमित नहीं रहता था। वे लोक–कल्याण की भावना से प्रेरित होकर कविता लिखते थे। लोक-कल्याण की भावना के अन्तर्गत समाज–सुधार, राष्ट्रीय चेतना, नैतिक सुधार तथा विवेकशील दृष्टिकोण था।"[1] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि द्विवेदीयुगीन काव्य मे लोक-मागलिकता एव राष्ट्रीयता की भावना का संश्लेषण हुआ। किन प्रक्रियाओ से लोक की चिता का पर्यवसान राष्ट्र–प्रेम के रूप मे हुआ, उस सश्लेषण की प्रक्रिया को समझने के लिए–सांस्कृतिक पुनरूत्थान आदोलन तथा राष्ट्रीय आदोलन के कुछ मनीषियो एव राष्ट्रवादियों के चिंतन और उनकी कार्य–शैली को जानना आवश्यक है। सामान्यत इसको निम्न शीर्षकों एव उपशीर्षकों मे विश्लेषित तथा विवेचित किया गया है.–

---

1 डॉ० भक्तराम शर्मा द्विवेदी युगीन काव्य पर आर्य समाज का प्रभाव, पृष्ठ ४८

(क) नवजागरण · सांस्कृतिक राष्ट्रीय आंदोलन

भारत में अँग्रजो के राज्य की स्थापना के पश्चात भारतीय सस्कृति का सम्पर्क पाश्चात्य सस्कृति एव विचारधाराओं से हुआ। उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक भारतीय सस्कृति धार्मिक–सामाजिक रूढियो, अधविश्वासों आदि से आच्छादित हो गयी थी, उसमे जडता का आभास होने लगा था। जब इसका सम्पर्क पाश्चात्य सस्कृति के बुद्धिवाद और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से हुआ, तो उससे प्रतिक्रिया होना स्वाभाविक था और प्रतिक्रिया हुई भी। इस प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप जो सचेतना आयी उसे नवजागरण कहा गया। इस नवजागरण के परिणामस्वरूप विद्वानों ने पाश्चात्य सस्कृति की महत्ता को स्वीकार करने के बदले भारतीय सस्कृति को बुद्धिवाद और वैज्ञानिक दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य मे देखने का प्रयास किया। "अतएव भारत मे नवोत्थान का जो आदोलन उठा उसका लक्ष्य अपने धर्म; अपनी परम्परा और अपने विश्वासो का त्याग नही, प्रत्युत, यूरोप की विशिष्टताओ के साथ उनका सामजस्य बिठाना था।"[1]

उन्नीसवीं शताब्दी मे हुए नवजागरण से जो वैचारिक परिवर्तन हुआ उससे धार्मिक–सामाजिक सुधार की प्रक्रिया प्रारम्भ हुई। "विभिन्न सुधारों के माध्यम से धार्मिक एव सामाजिक बुराइयो का अत कर समाज मे समानता, स्वतन्त्रता तथा मानवतावादी मूल्यो को स्थापित करने की कोशिश हुई। सामाजिक सुधार विशेष कर नारी उद्धार, अछूतोद्धार एवं शिक्षा के प्रसार की दिशा मे उल्लेखनीय काम हुए।"[2] इस्लाम की भी नयी व्याख्या प्रस्तुत की गयी। सर सैयद अहमद ने जिस इस्लाम की व्याख्या पेश की वह

---

1 रामधारीसिह दिनकर संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 532

2 सपादक प्रो० आर०एल० शुक्ल . आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ 269

प्राकृतिक नियमो के अनुसार एव वैज्ञानिक प्रगति के सर्वथा अनुकूल था तथा मानवतावाद, बुद्धिवाद एव प्रगतिशील विचारधारा से उसका विरोध नहीं था।

नवोत्थान का दूसरा प्रधान लक्षण निवृत्ति का त्याग था। निवृत्तिवाद भारतीय स्वभाव का अग हो गया था। समाज में सन्यास की प्रतिष्ठा थी। स्वामी विवेकानद और लोकमान्य तिलक ने वेदान्त और गीता की नयी व्याख्या प्रस्तुत करके यह प्रतिपादित किया कि वैदिक धर्म का मूल उपदेश निवृत्ति नही, बल्कि प्रवृत्ति है। इस्लाम हिन्दुत्व की तुलना मे प्रवृत्तिमार्गी पहले से ही था। "जीवन सत्य है, संसार सपना नहीं है, वैराग्य जीवन की पराजय को नहीं कहते हैं तथा कर्माकर्म का विचार ऐसा नहीं होना चाहिए कि मनुष्य के इहलौकिक सुखों का ही नाश हो जाय, ये और ऐसे उपदेश इस काल के मुख से बार–बार सुनाई देते हैं। .... यही कारण है कि-- उन्नीसवीं शताब्दी के बाद से भारतीय साहित्य मे क्रान्तिकारी और अनय विरोधी स्वर जोर से गूँजने लगे। यह स्पष्ट ही गीता और वेदान्त की प्रवृत्ति मार्गी टीका का परिणाम है।"[1]

भारतीय नवजागरण प्राचीन और नवीन के समन्वय, अतीत के गौरव, स्वदेशी तथा समाज सुधार के विभिन्न प्रश्नों– बाल–विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह, छुआछूत, दहेज–प्रथा, पर्दा–प्रथा, सती–प्रथा आदि को हल करने मे व्यस्त हो गया। राजा राममोहन राय, केशवचंद्र सेन, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद आदि ने सास्कृतिक नवजागरण को सगठित किया। सन् 1885 ई० मे भारतीय राष्ट्रीय कॉंग्रेस के जन्म के पश्चात भारत मे राजनीतिक संघर्ष बढ़ने लगा। द्विवेदी–युग की पृष्ठभूमि मे उन्नीसवीं शताब्दी की यही सास्कृतिक सचेतना सक्रिय थी।

द्विवेदीयुगीन काव्य के मूल में जातीय गौरव का भाव और अपने

---

1 रामधारीसिह दिनकर . संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 534-535

महान् अतीत की चेतना है। पश्चिम का अधानुकरण करने की प्रवृत्ति द्विवेदी–युग मे अपनी राष्ट्रीय धरोहर को महत्त्व देने के कारण घटने लगी थी। क्रान्तिकारी, गरमदल वाले कॉग्रेसी और आधुनिक शिक्षा प्राप्त मध्यम वर्ग के लोगो मे भारतीय सस्कृति के उत्थान की मनोभावना सर्वोपरि थी। "तिलक, एनीबेसेट, गोखले, रानाडे, अरविन्द घोष, रवीन्द्रनाथ टैगोर इसी सास्कृतिक नवोत्थान के सुदृढ़ स्तम्भ थे। इन्होने सभी राष्ट्रीय प्रवृत्तियो को आत्मसात् किया था। इसी सास्कृतिक चेतना से राष्ट्रीयता का जन्म हुआ। भारतेन्दुयुगीन काव्य मे जो कर्त्तव्यपरायणता, सेवा भाव, लोक–रक्षा, देश–प्रेम आदि की साधना की गयी थी, वह प्रथम महायुद्ध की चपेट के कारण और अधिक साधनात्मक, तप–त्यागमय, अहिसा तथा आत्मशुद्धि से भर उठी। विश्व–बन्धुत्व, एकोऽह बहुस्याम, मानव प्रेम आदि पुन· जाग उठे ।[1]

विवेकानंद, श्रीअरविन्द, विपिनचद्र पाल, लोकमान्य बालगगाधर तिलक, महात्मा गॉधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर आदि पश्चिमी भौतिकवाद से भारत की रक्षा करना चाहते थे । भारत को समूचे विश्व–मानवता की निर्वाण भूमि के रूप मे प्रस्तुत किया गया । भारत माता के गीत गाये जाने लगे । राजा राममोहन राय का एकेश्वरवाद, विश्वधर्म, प्रकृति तथा अंतश्चेतना को ईश्वरीय ज्ञान का मूल स्रोत मानने वाला मत फैला । आर्य समाज, वेदान्त दर्शन, गॉधी का गीता धर्म, तिलक का गीता रहस्य, रवीन्द्र की असीम चेतना की साधना आदि से भारतीय सस्कृति की ही प्रतिष्ठा हुई । गॉधी ने विश्व–मानवता, विश्व–बन्धुत्व, सत्य और अहिसा का पाठ पढाया । अहिंसावाद का प्रारम्भ हुआ । अरविन्द ने जिस सत्याग्रह और असहयोग की बात की थी, वह गॉधी के कारण महत्त्वपूर्ण हो उठे । गॉधी ने राजनीति से धर्म और नैतिकता को सम्बद्ध कर दिया । नवोत्थान के सन्दर्भ में प्रो० विपिनचद्र का

---

1 डॉ० पूनमचद तिवारी द्विवेदी युगीन काव्य, पृष्ठ 99

मत उल्लेखनीय है – "बहरहाल इन सामाजिक धार्मिक आदोलनो के जरिए जो सास्कृतिक वैचारिक सघर्ष चला, उसने राष्ट्रीय चेतना को जन्म देने और उसके विकास मे महत्त्वपूर्ण योगदान किया, क्योकि शुरूआती दौर मे इसने जो बौद्धिक और सास्कृतिक जागरूकता पैदा की, उससे लोगो का भविष्य के प्रति नई दृष्टि मिली। दूसरे, यह सघर्ष औपनिवेशिक सस्कृति एव विचारधारा के हमले के प्रतिरोध के रूप मे छेडा गया था । दो, मोर्चो पर एक साथ चले इस सघर्ष ने आज की आधुनिक सास्कृतिक स्थिति को जन्म दिया – नए आदमी, नए परिवार और नया समाज ।" [1]

नवजागरण की उपादेयता के सन्दर्भ मे रामधारीसिह दिनकर लिखते है – "इस नवोत्थान से भारत का कायाकल्प हुआ है, धर्म की रूढियॉ धूलवत् झड गयी है, मनुष्य की उदारता मे वृद्धि हुई है और हिन्दू-धर्म संशोधित होकर इस रूप मे खडा हो गया है, जिसे हम विश्व धर्म की भूमिका कह सकते हैं ।"[2]

नवजागरण ने किन प्रक्रियाओ से अपने को प्रकट किया, इसे जानने के लिए इसके कुछ आदोलनों और नेताओ की विचारधारा को जानना आवश्यक है – जैसे, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन (विवेकानन्द), गॉधीवाद, श्री अरविन्द का पृथ्वी का रूपातर ।

1. आर्य समाज :

स्वामी दयानन्द का विश्वास था कि स्वार्थी एव अज्ञानी पुरोहितो ने पुराणो जैसे ग्रथों के सहारे हिन्दू धर्म को भ्रष्ट किया है । इसलिए हिन्दू रूढिवादिता का विरोध करते हुए;उन्होने मूर्ति पूजा, बहुदेववाद, अवतारवाद, पशुबलि, श्राद्ध तथा झूठे कर्मकाडो और अधविश्वासो का विरोध किया ।

---

1 सपादक प्रो० विपिनचद्र भारत का स्वतन्त्रता सघर्ष, पृष्ठ 51

आर्य समाजियों ने स्त्री–दशा को सुधारने एवं उनमें शिक्षा का प्रसार करने के लिए काफ़ी प्रयास किया । जाति–पाँति तथा छुआछूत का विरोध किया और सामाजिक समानता एवं एकता को अपना आदर्श माना । समाज–सुधार, परोपकार और शिक्षा के क्षेत्र में समाज का कार्य उल्लेखनीय रहा । समाज ने अनाथालयों, विधवाआश्रमों की स्थापना की । समाज द्वारा शुरू किया गया अकाल सहायता का कार्य प्रशंसनीय था । इस प्रकार समाज ने सामाजिक कल्याण तथा सामूहिक उत्थान को अपना उद्देश्य बनाया । चूँकि सामूहिक प्रयत्नों में समाज के अनुयायी निःस्वार्थ भाव से लगे हुए थे, अतः इससे सामूहिक उत्थान एवं जन कल्याण के लिए सेवा और त्याग की भावना को भारी प्रेरणा तथा प्रतिष्ठा मिली । आर्य समाज ने स्त्री–शिक्षा के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया । आर्य समाज ने प्रायः सभी मंदिरों के साथ पुत्री पाठशालाओं की स्थापना की। अछूतोद्धार आर्य समाज का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य था । डॉ० सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है – "अछूत जातियों के कितने ही व्यक्ति आर्य समाज के सम्पर्क में आकर 'पंडित' व 'ठाकुर' बन गये । पहाड़ों के मेघ और शिल्पकार आर्य समाज द्वारा 'महाशय' बना दिए गए और वे यज्ञोपवीत धारण कर यज्ञ–हवन करने में तत्पर हो गये ।"[1]

स्वामी दयानन्द ने भारत की राजनीतिक दुर्दशा को भी तीव्रता के साथ अनुभव किया । "उन्होंने कहा, आपसी फूट के कारण भारत का प्राचीन गौरव नष्ट हो गया, ... विदेशी शासन का अंत कर भारत को स्वराज्य के लिए प्रयत्न करना चाहिए, यह आवाज पहले–पहल दयानन्द ने उठाई । उन्होंने यह सिद्धान्त भी प्रतिपादित किया कि 'सुशासन' कभी स्वशासन का स्थान नहीं ले सकता । विदेशी राज चाहे कितना ही उत्कृष्ट

व सुशासित क्यो न हो, 'स्वराज्य' उसकी अपेक्षा अच्छा है ।"[1] अत स्पष्ट है कि उनकी इस विचारधारा ने देश मे राष्ट्रीय भावना के सचरण मे महत्त्वपूर्ण योगदान किया। आर्य समाज का प्रभाव उत्तर भारत मे सर्वाधिक रहा । उत्तर भारत मे हिन्दुओ को जगाकर, उन्हे प्रगतिशील करने का श्रेय आर्य समाज को ही है ।

आर्य समाज का एक लक्ष्य यह था कि हिन्दुओ का धर्म—परिवर्तन न होने दिया जाए । इसके कारण अन्य धर्मों के खिलाफ़ जेहाद शुरू हो गया। इस जेहाद ने बीसवीं सदी के भारत में साप्रदायिकता को बढावा दिया। यद्यपि ऐसा करके आर्य समाज ने हिन्दू जाति के विखण्डन को रोकने का प्रयास किया, परन्तु अन्य धर्मावलम्बियो ने इसे प्रतिक्रिया के रूप मे ग्रहण किया, जबकि ऐसा वे स्वयं कर रहे थे ।

इस प्रकार धर्म तथा सामाजिक सुधार के क्षेत्र मे आर्य समाज ने जो कार्य किया, उसका भारतीय नवजागरण मे विशेष स्थान है । स्वामी दयानन्द ने हिन्दू जाति और आर्य—धर्म के प्राचीन गौरव का आख्यान कर के, हिन्दू जाति की हीन भावना को दूर करके; उसमें नई स्फूर्ति का सचार किया और उसमें यह आकाक्षा उत्पन्न किया कि एक बार हिन्दू लोग अपने लुप्त गौरव को प्राप्त करे ।

द्विवेदी—काल पर आर्य समाज का व्यापक प्रभाव पडा । कवियों ने सामाजिक कुरीतियों एवं दोषों का यथार्थ चित्रण कर हिन्दुओं को उनसे दूर रहने की प्रेरणा दी । उनकी दृष्टि समाज के प्रत्येक दोष की ओर गई । अत. उन्होंने वर्णव्यवस्था, जात—पात, छूत—छात, शुद्धि, आश्रम—व्यवस्था, स्त्री—पुरूष का साम्य, स्त्री—शिक्षा, बहुविवाह, अनमेल—विवाह, बाल—विवाह, विधवा—विवाह, नियोग, दहेज—प्रथा, गुरू—महत्त्व, अतिथि—सत्कार, परोपकार

आदि सामाजिक विषयो पर अपनी लेखनी चलाई । द्विवेदी युगीन कवियो पर आर्य समाज के प्रभाव को स्वीकार करते हुए डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त ने लिखा है – "वस्तुत द्विवेदी मण्डल के विभिन्न कवियों की आदर्शवादी भावनाओ के पोषण मे आर्य समाज का पर्याप्त योगदान परिलक्षित होता है ।"[1]

वर्णव्यवस्था के सन्दर्भ मे सनातन धर्मी मैथिलीशरण गुप्त ने उच्चासन से पतित ब्राह्मणो, शौर्य से रहित क्षत्रियो, व्यापार–वाणिज्य से रहित वैश्यों तथा सेवा एवं श्रम से जी चुराने वाले शूद्रो की कटु आलोचना की है । उन्होंने 'भारत–भारती' मे सभी वर्णों को अपने–अपने कर्त्तव्यो का पालन करने की प्रेरणा दी है–

ब्राह्मण बढावे बोध को, क्षत्रिय बढावे शक्ति को,
सब वैश्य निज वाणिज्य को, त्यों शूद्र भी अनुरक्ति को
यों एक मन होकर सभी कर्त्तव्य के पालक बने
तो क्या न कीर्ति–वितान चारो ओर भारत के तने ?[2]

गुप्त जी नाम मात्र से आर्य को आर्य नहीं मानते अपितु उसके अनुरूप कार्य भी होना चाहिए –

जग जान ले कि न आर्य्य केवल नाम के ही आर्य्य हैं,
वे नाम के अनुरूप ही करते सदा शुभ कार्य्य हैं। [3]

नाथूराम शर्मा 'शंकर' की 'आर्य समाज का अभ्युदय'[4] एव 'दयानन्दोदय'[5] तथा

---

1. डॉ० गणपति चन्द्र गुप्त . हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास, पृष्ठ 613
2. मैथिलीशरण गुप्त : भारत–भारती, पृष्ठ 177
3. वही . वही , पृष्ठ 174
4. नाथूराम शर्मा 'शंकर' . शंकर सरोज, पृष्ठ 26

रूपनारायण पाण्डेय की 'तपोबल'[1]आदि कविताओ मे भी चतुर्वर्णों के गुण—कर्म स्वभावानुसार विभाजन पर बल दिया गया है तथा उनको निज कर्त्तव्य—पालन का शुभ परामर्श दिया गया है ।

'शकर' ने अपनी कविता 'एरण्ड—वन—विडाल व्याघ्र' मे इस बात का आख्यान किया है कि जब वेद गुण एव कर्मानुसार जाति—धर्म को मानता है, तो फिर कल्पित जाति—पॉति के भेद व्यर्थ हैं,उन्होने अपने मत का प्रकटीकरण इस प्रकार किया है—

जीवो की उन्नति अवनति के, कारण केवल है गुणकर्म ।
हेतु नहीं गरिमा—लघिमा का, जन्म जनित स्वाभाविक धर्म ।।
इस प्रकार से समझाते हैं सबको नारायणकृत वेद ।
फिर क्या मेल मान सकता है, कल्पित जाति—पॉति भय—भेद ।।[2]

स्त्रियों की सम्मान वृद्धि पुनरूत्थान आदोलन का परिणाम है । श्रीधर पाठक ने भारतीय नारी को पावनता प्रदान किया है । उन्होने 'आर्य महिला' कविता में पवित्रता की ज्योति किस प्रकार प्रज्ज्वलित की है, यह दृष्ट्व्य है —

अहो पूज्य भारत—महिला गण अहो आर्य कुल—प्यारी,
अहो आर्य—गृह लक्ष्मि, सरस्वती, आर्यलोक उजियारी ।
आर्य—जगत में पुन. जननि निज जीवन—ज्योति जगाओ,
आर्य—हृदय मे पुन. आर्यता का शुचि स्रोत बहाओ ।। [3]

आर्य समाज ने स्त्री—शिक्षा पर काफ़ी बल दिया था। द्विवेदीयुगीन कवियों ने भी स्त्री—शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार किया है । प्राय सभी कवियों

---

1. पं० रूपनारायण पाण्डेय : सरस्वती, नवम्बर, 1912, पृष्ठ 576
2. नाथूराम शर्मा 'शकर' : शंकर—सर्वस्व (संपादक हरिशंकर शर्मा), पृष्ठ 161
3. श्रीधर पाठक . भारतगीत, पृष्ठ 160

ने स्त्री–शिक्षा पर कविताएँ लिखी है । रामचरित उपाध्याय 'हमी हम'[1] कविता मे स्त्रियों के शिक्षित होने से 'परदासिस्टम' दूर होने की बात कही है। मैथिलीशरण गुप्त का मत है कि आज के पुरुषो ने ही नारियो को अशिक्षित, अपाहिज और पगु बना रखा है । अर्द्धांगिनियो को शिक्षा से वचित रखने पर हमारी शिक्षा व्यर्थ रहेगी –

विद्या हमारी भी न तब तक काम मे कुछ आयगी ।
अर्द्धांगिनियों को भी सु–शिक्षा दी न जब तक जायगी ।
सर्वाग के बदले हुई यदि व्याधि पक्षाघात की
तो भी न क्या दुर्बल तथा व्याकुल रहेगी वातकी।[2]

इस प्रकार समाज मे व्याप्त अनेक सामाजिक बुराइयो जैसे– अनमेल--विवाह, बाल–विवाह, विधवा–विवाह, पर्दा–प्रथा, दहेज प्रथा आदि पर द्विवेदी युगीन कवियो ने कविताएँ लिखकर सामाजिक चेतना का परिष्कार करने का सद्प्रयास किया ।

द्विवेदी–युग काल के कवियों ने धार्मिक रूढियों, अधविश्वासो, पुरोहितवाद आदि पर प्रहार किया । पाखंड–खण्डन के क्षेत्र मे प० नाथूराम शर्मा 'शकर' अग्रगण्य कवि हैं। उन्होने हठधर्मियो, पाखडी पुरोहितो, बनावटी साधु--संतो एव कपटी कथा–वाचकों के ढोल के पोल तथा उनसे सावधान रहने की दृष्टि से 'बनावटी साधु', 'कोरे कथक्कड', 'अधेरखाता', 'दाम्भिक दृश्य' आदि कविताएँ लिखी है। शकर' की यह कविता उल्लेखनीय है –

मूड़ मुड़ायौ मानकर, मूढ़ गुरू की सीख ।
सडा स्वामीजी, भये, मॉगत डोलें भीख ।।

---

1 रामचरित उपाध्याय . 'हमी हम' : सरस्वती, जून, 1906, पृष्ठ, 354

2 मैथिलीशरण गप्त . भारत–भारती, पृष्ठ 185

ओढे अम्बर गेरूआ, धार गठीली दड ।

देखौ दडीजी बने व्यापक ब्रह्म अखण्ड ।।

*   *   *

ऊपर से त्यागी बने भीतर धन की आस ।

चारे के चेरे, भये बाबा गर्धवदास ।।[1]

आर्य समाज वेद को ही मात्र ईश्वरीय ज्ञान मानता है । वेदो की प्राचीनता तथा ईश्वरीयता के विषय मे मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत—भारती' के 'वेद' शीर्षक के अन्तर्गत यशगान किया है । इस सन्दर्भ मे 'हरिऔधजी' की 'धर्मवीर'[2] वेद और धर्म[3] तथा 'वेद है'[4] कविताएँ अवलोकनीय है । इनमे कवि ने वेद को बौद्धो, ईसाइयो तथा मुसलमानो के धार्मिक ग्रथो का मूल स्रोत तथा अधकार युग मे जब ससार अचेत पड़ा हुआ था, तब उनका प्रकट होना बताया है ।

आर्य समाज ने राष्ट्रीय चेतना के विकास मे भी महत्त्वपूर्ण योगदान किया । स्वामी दयानन्द ने स्वराज्य, स्वदेश और स्वदेशी के द्वारा राजनीतिक क्षेत्र में क्रान्ति करने का प्रयास किया । द्विवेदीयुगीन कवियो की राष्ट्रीय चेतना के निर्माण मे आर्य समाज का प्रभाव पडा है । डॉ० गोविन्दराम शर्मा का मत है कि — "आर्य समाज ने केवल धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में ही नही राजनीतिक क्षेत्र मे भी जागृति उत्पन्न की । . .. आर्य समाज के प्रशसनीय प्रयत्न के फलस्वरूप जनता की हीनता की भावना दूर होने लगी उसका आत्म-सम्मान फिर से जाग उठा और वह अपनी सर्वोच्च सस्कृति के

---

1. नाथूराम शर्मा 'शकर' . शकर सरोज, पृष्ठ 86-87
2 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' पद्य प्रमोद, पृष्ठ 35
3 वही पद्य प्रसून, पृष्ठ 21
4. वही पद्य प्रमोद, पृष्ठ 19-24

समक्ष पाश्चात्य सभ्यता को तुच्छ समझने लगी ।"[1]

रामनरेश त्रिपाठी अपने 'पथिक' काव्य मे पराधीनता को भारी दु:ख मानते हैं। उन्होने पराधीनता से निवृत्ति का उपाय 'स्वशासन' माना है। कवि का कथन है :–

पराधीन रहकर अपना सुख शोक न कह सकता है ।
यह अपमान जगत मे केवल पशु ही सह सकता है ।।
अपना शासन आप करो तुम यही शान्ति है, सुख है ।
पराधीनता से बढ जग मे नही दूसरा दु:ख है ।।[2]

'भारत—भारती' राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने वाली सबसे महत्वपूर्ण कृति है । 'साकेत' के भीतर भी भारत की राष्ट्रीयता एव स्वाधीनता संग्राम की पदचाप सुनाई देती है — वैतालिक भी सांस्कृतिक जागरण—गीत है । 'मंगलघट' की 'मातृमदिर' कविता मे भी उन्होने भारतीय सस्कृति की सामाजिकता को लक्ष्य करके अपनी राष्ट्र—भावना को इस प्रकार व्यक्त किया है —

जाति धर्म, वा सम्प्रदाय का, नहीं भेद व्यवधान यहॉं,
सबका स्वागत, सबका आदर, सबका सम—सम्मान यहॉं ।।[3]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आर्य समाज ने उत्तर भारत के हिन्दू समाज को चेतनशील और जागरूक बनाया, उसने समाज निर्माण की सचेतना दी और उनमे जातीयता का उन्मेष किया । यह एक साथ सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक नव जागरण का सांस्कृतिक राष्ट्रीय आंदोलन था । द्विवेदीयुगीन काव्य मे इसी सास्कृतिक राष्ट्रीय चेतना का स्वर सर्वत्र सुनाई पड़ता है ।

---

1. डॉ० गोविन्दराम शर्मा हिन्दी के आधुनिक काव्य, पृष्ठ 117
2. रामनरेश त्रिपाठी पथिक, पृष्ठ 48
3. मैथिलीशरण गुप्त मगलघट, पृष्ठ 262

2. **विवेकानंद :-**

परमहस रामकृष्ण ने साधनापूर्वक धर्म की जो अनुभूतियाँ प्राप्त की थी, स्वामी विवेकानन्द ने उनसे व्यावहारिक सिद्धान्त निकाले । उन्होने उनके धार्मिक संदेश को ऐसे रूप मे प्रस्तुत किया जो समसामयिक भारतीय समाज की आवश्यकताओ के अनुरूप था । उन्होने कहा कि अगर ज्ञान के साथ जिस वास्तविक ससार मे हम रहते हैं,उसमे कर्म न किया जाय तो ज्ञान निरर्थक है । अपने गुरू की तरह ही, उन्होने 'सर्व धर्म समभाव' की घोषणा की तथा धार्मिक मामलो मे किसी भी सकीर्णता की निंदा की। उन्होने 1898 ई० मे लिखा– "हमारी जन्मभूमि का कल्याण तो इसमें है कि दो धर्म हिन्दुत्व और इस्लाम मिलकर एक हो जायँ । वेदान्ती मस्तिष्क और इस्लामी शरीर के सयोग से जो धर्म खडा होगा, वही भारत की आशा है ।"[1]

विवेकानद ने जाति प्रथा और धार्मिक कर्मकाड, समारोहो और अधविश्वासो पर उस समय हिन्दुओं द्वारा दिये जा रहे जोर की निंदा की तथा लोगो से स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व की भावना को आत्मसात् करने की अपील की । "हमारा धर्म रसोईघर में है । हमारा ईश्वर खाना पकाने के बर्तन मे है और हमारा धर्म है, मुझे छुओ मत मैं पवित्र हूँ । अगर यह एक शताब्दी तक और चलता रहा तो हम सब पागलखाने मे होगे ।"[2] विवेकानद का मानना था कि मनुष्य की सेवा भगवान की क्रियात्मक पूजा का रूप मानकर करना चाहिए । इसकी घोषणा उन्होंने ओजपूर्ण शब्दो मे इस प्रकार किया– "मैंने अपनी मुक्ति की सारी इच्छा समाप्त कर दी है । मेरा बार–बार जन्म हो तथा मैं सहस्त्रों दुखों को झेलता रहूँ– इसलिए कि मैं पूजा कर सकूँ उन एकमात्र सत् भगवान की, जिन्हे मैं मानता हूँ । मेरे वे

---

1 रामधारीसिह दिनकर . संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 596

2 प्रो० विपिनचन्द्र आधुनिक भारत, पृष्ठ 177

भगवान हैं दुखी व्यक्ति, वे ही मेरी पूजा के विशेष पात्र हैं । . जिसके कारण हम लोग सदा से एक बने हुए हैं और सदा एक रहेगे, उन्ही भगवान की पूजा करो ।"[1]

अपने गुरू की तरह ही विवेकानन्द महान मानवतावादी थे । देश के आम लोगो की गरीबी, विपन्नता एव कष्ट से उन्हे आघात पहुँचा और उन्होने लिखा है कि— "एक मात्र भगवान जिसमे मैं विश्वास करता हूँ वह है सभी आत्माओं का कुल योग और सबसे पहले मेंरे भगवान सभी जातियो के कुष्ठ पीडित दरिद्र हैं ।"[2] नारियो के प्रति उनमे असीम उदारता का भाव था। वे कहते थे— "नारियॉ महाकाली की साकार प्रतिमाएँ हैं । यदि तुमने इन्हे ऊपर नही उठाया, तो यह मत सोचो कि तुम्हारी अपनी उन्नति का कोई अन्य मार्ग है । ससार मे सभी जातियॉ नारियो का समुचित सम्मान करके ही महान् हुई हैं ।"[3]

अपने उपदेशो के द्वारा स्वामी विवेकानद ने भारतवासियो मे असतोष जगाना चाहा, उन्हे कर्म की भावना से आदोलित करने की चेष्टा की तथा उपनिषद् काल से चली आ रही निवृत्ति की भावना से मुक्त करके देशवासियो को प्रवृत्ति के कर्म-मार्ग पर आरूढ करने का प्रयास किया । आगे चलकर प्रवृत्ति की यह भावना बालगगाधर 'तिलक' मे साकार हुई । देश की उन्नति के सम्बन्ध मे विवेकानद का विचार था कि— "भारत वर्ष की उन्नति करनी है— ग़रीबों को भोजन देना है, शिक्षा का प्रसार करना है और पुरोहितो के दोष को दूर करना है । कोई पुरोहिती छल न रहे, कोई सामाजिक अत्याचार न रहे । .... हमारे नासमझ युवक अग्रेज़ो से अधिकार पाने के

---

1 स्वामी विवेकानन्द . कल्याण, भक्ति अंक वर्ष 32, सं० 1, पृष्ठ 554

2. सपादक प्रो० आर०एल० शुक्ल आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ 245

3 रामधारीसिंह दिनकर सस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 592

लिए सभाएँ करते है । पर वे लोग सिर्फ हँसते है । जो स्वतन्त्रता देने को तैयार नहीं है, वह स्वतन्त्रता पाने लायक भी नही है। मान लो, अग्रेजो ने सभी अधिकार तुम्हे सौंप दिये । तब तो तुम प्रजा को दबाओगे और उन्हे कुछ भी अधिकार न दोगे । गुलाम लोग गुलाम बनाने के लिए अधिकार चाहते हैं ।"[1] इस प्रकार विवेकानन्द ने राजनीतिक स्वतन्त्रता की अपेक्षा धार्मिक एव सामाजिक स्वतन्त्रता को अधिक महत्त्वपूर्ण माना, क्योकि बिना धार्मिक–सामाजिक स्वतन्त्रता के राजनीतिक स्वतन्त्रता का कोई अर्थ नहीं होता ।

मानवतावादी राहत तथा सामाजिक कार्य करने के लिए विवेकानद ने 1896 ई० मे रामकृष्ण मिशन की स्थापना की । मिशन ने पूरे देश मे स्कूलो अस्पतालो, दवाखानो, अनाथालयों, पुस्तकालयों आदि की स्थापना द्वारा समाज सेवा की । इस प्रकार मिशन ने व्यक्तिगत मुक्ति पर नही, बल्कि सामाजिक भलाई पर जोर दिया । इसके अतिरिक्त भारतीयो में आत्मविश्वास एव आत्मसम्मान पैदा करके, उन्हे राष्ट्रीय मुक्ति–संग्राम की ओर प्रेरित किया।

द्विवेदीयुगीन काव्य में परोपकार की भावना, मानव सेवा, स्त्री–सम्मान, स्वतन्त्रता, समानता भ्रातृत्व आदि सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना का जो उन्मेष दिखाई पडता है, उस पर विवेकानंद के चितन का यथेष्ट प्रभाव है।

मैथिलीशरण गुप्त की 'साकेत' रचना में राम की यह उक्ति उल्लेखनीय है–

> मैं आया उनके हेतु कि जो तापित हैं,
> जो विवश, विकल, बल–हीन, दीन शापित हैं ।[2]

---

1 स्वामी विवेकानंद : अनुवादक प० द्वारिकानाथ तिवारी जाति, सस्कृति और समाजवाद, पृष्ठ 21

2. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत, पृष्ठ 111

यह मानव–धर्म मानव को मानव का सम्मान करना सिखाता है और उसकी सेवा को ईश्वर प्राप्ति का साधन मानता है । हरिऔधजी ने 'प्रियप्रवास' मे जगत–हित, आत्म–त्याग आदि लोक सग्रह की भावना के प्रसार का सदेश दिया है । श्रीकृष्ण के मुख से उच्चरित हुए उद्‌गार ने उनकी सर्वभूतहितकारिणी भावनाओ को कितनी स्पष्टता के साथ व्यक्त किया है–

प्रवाह होते तक शेष–श्वास के। स–रक्त होते तक एक भी शिरा।

स–शक्त होते तक एक लोम के। किया करूँगा 'हितसर्वभूत' का।[1]

'प्रियप्रवास' की नायिका राधा, अपने प्राणो से भी अधिक प्रिय श्रीकृष्ण के सामीप्य का त्याग लोकहित के लिए करती है–

'प्यारे जीवे जग–हित करे, गेह चाहे न आवें'[2]

वस्तुतः 'हरिऔध' का स्पष्ट विचार है कि लोकहित के द्वारा ही मानव विश्व मे पूज्य होता है । यहॉ कवि विवेकानन्द की विचारधारा– 'मानव सेवा ही ईश्वर की सेवा है।' से प्रभावित दिखाई पडता है।

प० लोचनप्रसाद पाण्डेय ने 'शान्ति संगीत' कविता में परोपकार को यथार्थ धर्म का एक मात्र सार बताया है–

तू भिन्नता–विषय का तज निज–गान,
ससार को निज–कुटुम्ब समान जान ।
निष्काम हो दुःखित को दु.ख से उबार,
है धर्मसार बस एक परोपकार ।[3]

इसी प्रकार प० रामचरित उपाध्याय ने 'देवदूत'[4]

---

1. अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' . प्रियप्रवास, पृष्ठ 109
2 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृष्ठ 197
3. पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय . 'शान्ति संगीत', सरस्वती, मई, 1911 पृष्ठ 218
4. रामचरित उपाध्याय देवदूत, पृष्ठ 8

'परोपकार'[1], 'मान का मूल्य'[2]आदि कविताओ मे परोपकार को जीवन का धर्म समझकर उस पर आचरण करने की प्रेरणा दी है।

विवेकानंद का यह कथन कि– "जो जातियॉ नारियो का सम्मान करना नही जानती, वह न तो अतीत में उन्नति कर सकी, न आगे उन्नति कर सकेगी।"[3] का समर्थन करते हुए मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत–भारती' मे लिखा है–

ऐसी उपेक्षा नारियो की जब स्वयं हम कर रहे,
अपना किया अपराध उनके शीश पर हैं धर रहे,
भागे न क्यों हमसे भला फिर दूर सारी सिद्धियॉ
पाती स्त्रियॉ आदर जहॉ रहती वही सब ऋद्धियॉ।[4]

द्विवेदी युगीन काव्य मे जिस धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का स्वर विद्यमान है, उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि, रामकृष्ण मिशन की समाज सेवा की भावना और विवेकानद के चितन का यथेष्ट प्रभाव उन पर पड़ा है ।

(3) श्री अरविन्द :-

श्री अरविन्द एक योगी के अलावा राजनीतिज्ञ, दार्शनिक एवं कवि भी थे । उन्होंने वेदान्त के सिद्धान्तों एव आदर्शो को पुनः स्थापित करने का प्रयत्न किया । वे इंग्लैण्ड से अत्यधिक अॅग्रेजी वातावरण मे पल बढकर भारत लौटते ही अॅग्रेजी तौर–तरीकों के खिलाफ़ तीव्र प्रतिक्रिया दर्शाने लगे । श्री अरविन्द कॉंग्रेस के नरम पंथी नेताओं की

---

1. रामचरित उपाध्याय . 'परोपकार' सरस्वती, जून, 1913 ई०, पृष्ठ 343
2. वही . 'मान का मूल्य', सरस्वती, अगस्त, 1916, पृष्ठ 99–100
3. रामधारीसिह दिनकर . संस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 592
4. मैथिलीशरण गुप्त : भारत–भारती, पृष्ठ 146

नीतियो को महान् फ्रांसीसी क्राति की तुलना मे कमजोर एव शक्तिहीन कहा। बग-भग आदोलन के पूर्व वह बड़ौदा से ही क्रांतिकारी दर्शन की पृष्ठ-भूमि तैयार कर रहे थे, उन्होंने 1903 ई० मे वारीन्द्र कुमार घोष को अपना दूत बनाकर बगाल भेजा जहाँ उन्होने 'अनुशीलन समिति' का गठन किया। बग-भंग आंदोलन के समय उचित अवसर देखकर वे कलकत्ता पहुँचे और क्रातिकारी दर्शन को कार्यरूप देना प्रारम्भ किया। बंग-भंग आदोलन का नेतृत्व पहले उदारवादी कॉग्रेसियों जैसे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी आदि के हाथो में था। शीघ्र ही यह नेतृत्व श्री अरविन्द, विपिनचन्द्र पाल, वारीन्द्र कुमार घोष आदि उग्रपथी नेताओं के हाथ में आ गया। यहीं से इसका संचरण देश के अन्य भागो महाराष्ट्र, पंजाब आदि प्रातों मे फैलने लगा। असहयोग, निष्क्रिय प्रतिरोध, स्वदेशी का प्रचार, विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा तथा क्रातिकारी राजनीतिक दर्शन आदि विषयो पर 'बंदेमातरम' मे श्री अरविन्द लगातार लिखते रहे। "उन्होने एक ऐसे कार्यक्रम की परिकल्पना की जिसमे ॲंग्रेजी वस्तुओं, सरकारी शिक्षा, न्याय एवं कार्यकारी प्रशासन के संगठित एव निर्मम बहिष्कार की बात कही गई थी। (जिसके पीछे उद्योगो, राष्ट्रीय विद्यालयो एवं मध्यस्थ न्यायालयो का समर्थन होता) साथ ही, इसमे अन्यायपूर्ण कानूनों की सविनय अवज्ञा करने, राजभक्तों का सामाजिक बहिष्कार करने और ॲंग्रेजी दमन के सहन—सीमा से आगे बढ़ जाने पर सशस्त्र संघर्ष करने की योजना भी थी।"[1] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि श्री अरविन्द द्वारा प्रस्तुत राष्ट्रीय आदोलन के कार्यक्रम संपूर्ण गॉधीवादी कार्यक्रम के पुरोधा हैं बस इसमें गॉधीवादी की अहिंसा का और करों एव लगानों की नाअदायगी के आह्वान का अभाव है। उन्होंने करों एवं लगानों की नाअदायगी का आह्वान इसलिए नहीं किया, क्योंकि उनकी दृष्टि मे बंगाल के ज़मींदार देशभक्त थे

---

१. सुमित सरकार. आधुनिक भारत (अनुवादक : सुशीला डोभाल), पृष्ठ 140

। श्री अरविन्द ने 8 जून 1907 ई० के बदेमातरम् के अक मे घोषणा की "श्री गॉधी (सरकारी) नियम की अवज्ञा करेगे जेल जाने को पूर्णरूप से तैयार"[1] कलकत्ता में होने वाली नेशनल कॉग्रेस मे उन्होंने प्रस्तावित किया कि देश की अपनी शिक्षा प्रणाली होनी चाहिए, जो देश की औद्योगिक, वैज्ञानिक आवश्यकता के अनुकूल हो ।

श्री अरविन्द ने सबसे पहले पूर्ण-स्वराज्य की मॉग की । डॉ० कर्ण सिह ने अपनी पुस्तक 'प्रोफेट ऑफ इंडियन नेशनलिज्म' में यह प्रश्न उठाया है कि "अब इस सवाल पर विचार करना चाहिए कि क्यो श्री अरवन्दि अपने देश के लिए पूर्ण स्वराज्य से कम कोई दूसरी चीज स्वीकार करने को तैयार नही थे, जबकि उस समय पूर्ण स्वराज्य की धारणा लोगों को पूर्णत अव्यावहारिक और उसकी प्राप्ति असभव लगती थी ।[2] उन्होंने स्वय इसका उत्तर देते हुए लिखा है कि "पहला तो यह कि अपनी मूल आध्यात्मिक और आदर्शवादी धारणा के अनुकूल वे मातृभूमि को दिव्य महाशक्ति मानते थे जिसको स्वतत्र कराना उसकी संततियों का वे पावन कर्त्तव्य मानते थे । साथ ही, वे यह भी मानते थे कि भारत की स्वाधीनता भारत के लिए ही नहीं, विश्व मानवता के लिए अत्यन्त आवश्यक है । दूसरा यह कि भारत का पुनर्निर्माण यानी, मुख्यत. आर्थिक सामाजिक, राजनीतिक या जो कुछ और विकास की दिशाये हो सकती हैं, बिना पूर्ण स्वराज्य के सम्भव नही ।"[3]

---

1. श्री अरविन्द वदेमातरम्, 8 जून, 1907 (उद्धृत उत्तर योगी, श्री अरविन्द. श्री शिव प्रसाद सिंह), पृष्ठ 136
2. डॉ० कर्ण सिह उद्धृत उत्तर योगी; श्रीअरविन्द, (श्री शिव प्रसाद सिह) पृष्ठ 132
3. वही वही, पृष्ठ 132

श्री अरविन्द के पूर्ण-स्वराज्य की मॉग को दिसम्बर, 1929 ई० मे कॉग्रेस के लाहौर अधिवेशन मे साकार किया गया । इतिहास इसका साक्षी है । श्री अरविन्द राष्ट्रीयता को धर्म मानते थे; जिसका विश्लेषण उन्होने अपने बम्बई के भाषण मे किया है, "बम्बई का भाषण जो 'आज की स्थिति' पर दिया गया, इस बात का सबूत है कि वक्ता किसी आंतरिक शक्ति से परिचालित था । यह वही भाषण है जिसमे, उन्होने भारतीय राष्ट्रीयता के विषय मे यह सुप्रसिद्ध वाक्य कहा था कि 'राष्ट्रीयता ईश्वर प्रदत्त धर्म है, इसीलिए यह दिव्य, अमर और अपराजेय धर्म है ।' इसी भाषण मे उन्होने घोषणा की, कि उनका दृढ़ विश्वास है कि राष्ट्रीय आंदोलनों के पीछे दिव्य शक्ति कार्य कर रही है, एक ऐसी महाशक्ति जो किसी प्रकार की बाधा को कभी स्वीकार नही करेगी और अन्ततः विजयी होकर रहेगी । .... कलकत्ता लौटने के बाद के उनके सभी भाषण इसी आध्यात्मिकता से प्रेरित थे ।"[1]

भवानी भारती इस देश की अधिष्ठात्री है, यही प्रकट शक्ति, भारत माता है । इसके लिए श्री अरविन्द ऐसे कर्मयोगियो का एक मठ बनाना चाहते थे जिसमे व्यक्ति अपना सब कुछ त्याग कर मात्र मातृभूमि की सेवा के लिए तत्पर होगा, इनमें से कुछ यदि वे चाहें, तो पूर्ण सन्यास धारण कर सकते हैं, अधिकाश ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए अपना नियत कार्य पूरा करके गृहस्थाश्रम मे प्रवेश ले सकते हैं । लेकिन शर्त यह है कि उस महान् कार्य को पूर्ण करने के लिए वैराग्य स्वीकार करना होगा । कारण कोई महान् कार्य बिना त्याग के संभव नही है। इस सम्बन्ध में श्री अरविन्द का कथन उल्लेखनीय है "हम ऐसे व्यक्तियो का एक केन्द्र चाहते हैं, जिनके भीतर की शक्ति पूर्णत. विकसित हो चुकी हो, जिनके भीतर व्यक्तित्व का

---

1 डॉ० कर्ण सिह . उद्धृत . उत्तर योगी, श्री अरविन्द (श्री शिवप्रसाद सिह), पृष्ठ 164

प्रत्येक अणु इससे प्रभावित हो और इस तरह उच्छलित होती हो कि जमीन को उपजाऊ बना सके । ये लोग भवानी की अग्नि शिखा को अपने दिल और दिमाग में लिए देश के कोने–कोनें मे ज्योति फैलाने का कार्य करेंगे"[1] यहाँ स्पष्ट है कि श्री अरविन्द ने जिस स्वाधीनता की कामना की, वह स्वाधीनता, बिना आत्म त्याग एव आत्म–शक्ति को जागृत किये सम्भव नहीं है, और इसके लिए व्यक्ति को सतत् साधना द्वारा क्रमश. अपने पशुत्व को संस्कारित करते हुए देवत्व की ओर बढ़ना होगा । परमात्मा के लिए पूर्ण समर्पित होने के पश्चात हमारे अदर उसकी दिव्य ज्योति अवतरित होती है, किन्तु बिना उसकी कृपा से यह समर्पण का भाव जागृत नहीं हो सकता । कुछ दिनों बाद हमारा यह समर्पण जो बुद्धि भावना से भी प्रेरित होता है, धीरे–धीरे कम होता जाता है, फिर बिल्कुल लुप्त हो जाता है और वह दिव्य शक्ति हमारा मार्ग –दर्शन करने लगती है । यहाँ तक पहुँचकर अन्तश्चेतना जागृत हो जाती है। यहीं पर अतिमानव स्थिति का प्रथम प्रयास समाप्त हो जाता है और दूसरी स्थिति जिसे हम समर्पण के फल की स्थिति कहते हैं, उससे हमारा सम्बन्ध उस अभीष्ट दिव्य सत्ता के साथ हो जाता है ।

द्विवेदी युगीन कवियों पर श्री अरविन्द चिन्तनधारा का प्रभाव लक्षित होता है । इस युग के दो सशक्त कवियों हरिऔध और मैथिलीशरण गुप्त के काव्य मे मानव चिन्तन सम्बन्धी प्रयास समग्र रूप में हुआ है । गुप्तजी की 'भारत–भारती' में अतीत भारत का गौरवगान, मनुष्य को अभ्युदय के प्रति प्रबुद्ध होने के लिए जागरूक करने का ही प्रयास है । 'भारत–भारती' के 'अतीत खण्ड' में देशवासियों के अभ्युदय का आह्वान किया गया है। कवि का कथन है–

थे ज्यो समुन्नति के सुखद उत्तुंग श्रृंगों पर चढ़े,

---

1. प्रो० मीरा श्रीवास्तव : श्री अरविन्द और भारत, पृष्ठ 32

त्यो ही विशुद्ध विनीतता मे हम सभी से थे बढे,

भव–सिन्धु तरने के लिए आत्मावलम्बी धीर ज्यो,

परमार्थ–साधन–हेतु थे आतुर परन्तु गंभीर त्यों

*   *   *

जो ईश कर्ता है हमारा दूसरों का भी वही,

हैं कर्म्म भिन्न परन्तु सबमें तत्त्व–समता हो रही,[1]

'साकेत' के अन्तर्गत मानव की अन्तर्वृत्तियो के उदात्तीकरण का उत्कृष्ट चित्रण हुआ है । गुप्तजी ने उर्मिला के चरित्र–चित्रण में जिस आत्म निवेदन तथा प्रणति का चित्र प्रस्तुत किया है, वह नि. श्रेयस की ही उपलब्धि है– लक्ष्मण के रक्षात्मक राजधर्म के निर्वाह के लिए वह पूर्णसमर्पण पूर्वक तप स्वीकार करती है –

कहा. उर्मिला ने — "हे मन ! तू प्रिय पथ का विघ्न न बन,

आज स्वार्थ है त्याग भरा ? हो अनुराग विराग–भरा ।

तू विकार से पूर्ण न हो, शोक–भार से चूर्ण न हो ।

भ्रात–स्नेह–सुधा बरसे, भू पर स्वर्ग–भाव सरसे ।[2]

भरत के चरित्र मे अभ्युदय और निःश्रेयस के सगुफन का प्रयास अत्यन्त उत्कृष्ट रूप मे हुआ है ।[3]

हरिऔधजी ने 'प्रियप्रवास' में कृष्ण और राधा के चरित्रो मे अभ्युदय और निश्रेयस के युग्मों का सफल सगुंफन किया है । 'प्रियप्रवास' के कृष्ण और राधा मानव उत्थान के लिए सदैव क्रियाशील है ।

द्विवेदी युगीन कवियों द्वारा लिखे गये बलिपंथी की

---

1 मैथिलीशरण गुप्त . भारती–भारती, पृष्ठ 27

2. वही · साकेत, पृष्ठ 51

3 वही : वही पृष्ठ 220

भावना तथा जागरण और अभियान गीत मे 'अभ्युदय' का चित्रण हुआ है । यहाँ कवियो ने राष्ट्र को धर्म, भारत भूमि को माँ, अँग्रेज़ो को दु.शासन आदि के रूप मे चित्रित किया है । जून, 1918 ई० में 'साप्ताहिक प्रताप' के मुख –पृष्ठ पर ये पक्तियाँ प्रकाशित हुई थी– "धर्मयुद्ध मे बडी बडाई, आन बान की, रहे निभाते सदा देशाभिमान की ।" इलाचन्द्र जोशी का यह जागरण 'गीत' 'शक्ति' की आराधना का ही आह्वान है–

अब उठो हिन्द के नरनारी ।
अब वीर बनो, अति धीर बनो, रणधीर बनो,
फिर दूर करो सब अँधियारी ।[1]

माखनलाल चतुर्वेदी ने अन्यायी एव अत्याचारी अँग्रेजों को, जो अपनी शक्ति से भारतीय जन-मानस को कुचलने के लिए कटिबद्ध हैं, उनको यह बताना चाहा है कि; जिसकी आध्यात्मिक शक्ति विकसित हो गई हो; उसको कुचलना सम्भव नही है । कवि ने अन्याय के प्रतिकार के लिए आत्म बलिदान का आह्वान किया है–

कला दुखियों की सुनकर,
नृत्य का रग–स्थल हो धूल
टेक अन्यायों का प्रतिकार,
चढ़ाकर अपना जीवन फूल ।[2]

इस विवेचन के अत मे निष्कर्षत. कहा जा सकता है कि श्री अरविन्द ने राष्ट्रीय आदोलन के सम्बन्ध मे जो कार्यक्रम प्रस्तुत किया, वही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन का मूलाधार बना रहा–थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ । उनके क्रांतिकारी दर्शन एव आध्यात्मिक चिंतन को द्विवेदी युगीन कवियो ने

---

1. इलाचन्द्र जोशी साप्ताहिक प्रताप, विजयादशमी 1916 ई०, पृष्ठ 24
2 माखनलाल चतुर्वेदी . हिमकिरीटिनी . पृष्ठ 97

यथासभव आत्मसात् कर के उसे काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है ।

(4) महात्मा गाँधी :-

गाँधीजी प्रधान रूप से संत, तपोमय, राजनीतिज्ञ, समाज सुधारक और आचार शास्त्री थे । उनकी धर्म मे विशेष आस्था थी । गंभीर चिन्तक होने के कारण, उन्होने एक दार्शनिक दृष्टिकोण अपना लिया था और उसी दृष्टिकोण से उनका वैयक्तिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन संचालित हुआ । उनका दृष्टिकोण तत्कालीन मार्क्सवादी हिंसात्मक क्रांति की विचारधारा के विपरीत अहिसात्मक था, और जैन–बौद्ध धर्मो की अहिसा का राजनैतिक तथा सामाजिक धरातल पर साहसी संचरण था ।

गाँधीजी एक सनातनी हिन्दू थे । वे ईश्वर को ही परमतत्त्व मानते थे, उनकी धारणा है कि यह विश्व उसी परमतत्त्व की अभिव्यक्ति है । ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापी है । उसे तर्क द्वारा भले ही सिद्ध न किया जा सके, परन्तु सत्याचरण द्वारा उसकी अनुभूति की जा सकती है । आत्मा के सम्बन्ध में गाँधी जी का मत है कि समस्त प्राणियो में एक ही आत्मा है, इसलिए सभी मनुष्य समान हैं । गाँधीजी की इसी अवधारणा ने उन्हे छुआछूत का विरोध करने के लिए प्रेरित किया । गाँधीजी सत्य को ही ईश्वर माना है । इस सत्य का साक्षात्कार कर लेना ईश्वर को प्राप्त करना है । उनकी यह धारणा भी है कि इस सत्य की प्राप्ति ससार से दूर रहकर नहीं, अपितु इस संसार मे रहकर प्राप्त की जा सकती है । इसी लिए उन्होने सत्य की खोज, जीवन संघर्ष में लगे रह कर किया । सत्याग्रह के सम्बन्ध में उनका मानना था कि जो सत्य है उसके लिए निर्भय होकर मनुष्य को डटे रहना चाहिए । उनका सत्याग्रह आत्म–बल पर आश्रित है । जो ईश्वर को सत्य रूप मानता है, वही वास्तविक सत्याग्रही है । महात्मा गाँधी अहिंसा को परम धर्म मानते थे । गाँधीजी अहिसा को मनसा, वाचा, कर्मणा स्वीकार किए हुए थे । "गाँधीजी की अहिंसा केवल अनाघात का ही

पर्याय नहीं है, प्रत्युत, वह जीवो के प्रति आतरिक भक्ति और प्रेम को भी अभिव्यक्त करती है।"[1] गॉधीजी की अहिंसा शक्ति विहीन नहीं है, किन्तु अहिंसा मे जो शक्ति छिपी है उसे केवल गॉधीजी की दृष्टि देख सकती थी। गॉधी जी का मत था कि सच्ची अहिसा भय नहीं, प्रेम से जन्म लेती है, निस्सहायता नहीं, सामर्थ्य से उत्पन्न होती है। "इसलिए गॉधीजी का उपदेश था कि सत्याग्रहियो को इस भाव से सत्याग्रह नही करना चाहिए कि उन्हे प्रतिपक्षी को नीचा दिखाना है, वरन इस भाव से कि प्रतिपक्षी के हृदय की कटुता हटाकर उनके भीतर सद्भावना को जन्म देना है। अहिसा वह साधन है जिससे सघर्ष के दोनों पक्षों का कल्याण होता है, दोनों के भीतर ऊँची मानवता प्रस्फुटित होती है।"[2]

गॉधीजी प्राचीन वर्णव्यवस्था से असहमत नही थे, परन्तु आधुनिक जाति–प्रथा के तीव्र आलोचक थे और ऊँच–नीच के भेदभाव को गलत मानते थे। उन्होने वर्ण का अर्थ केवल इतना ही माना कि सभी अपने वश और परम्परागत काम को केवल जीविका के लिए करे, बशर्ते कि वह नैतिकता के मूल सिद्धान्तों के विरूद्ध न हो। वे सभी मानव में एक ही आत्मा को मानते थे, इस आधार पर उन्होंने अस्पृश्यता की आलोचना की और उसे दूर करने का प्रयत्न किया। उन्होंने अछूतों को हरिजन अर्थात ईश्वर का जन कहा। अस्पृश्यता को वे अनैतिक एवं वेद विरोधी मानते थे। गॉधीजी स्त्री शोषण के विरूद्ध थे। उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्रियो के महत्त्व को समझ कर उनके सक्रिय सहयोग का आह्वान किया। वे स्त्रियो को पुरूषो से किसी भी क्षेत्र में कम नही समझते थे। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र मे स्त्री–पुरूष समानता के समर्थक, गॉधी ने असहयोग

---

1. रामधारीसिह दिनकर · सस्कृति के चार अध्याय, पृष्ठ 624
2. वही वही, पृष्ठ 625

आदोलन तथा स्वदेशी आदोलन मे स्त्रियो को परम्परागत जीवन की चहारदीवारी से बाहर निकाल कर राष्ट्र की मुख्य धारा मे गतिशील किया, जो तत्कालीन समाज के लिए एक नई बात थी । गॉधी जी बाल विवाह, स्त्रियो की दासता, पर्दा—प्रथा के विरोधी और विधवा विवाह के समर्थक थे । स्त्री स्वावलम्बन के पक्षधर थे । आर्थिक क्षेत्र मे गॉधीजी स्वदेशी के समर्थक थे । आर्थिक क्षेत्र मे धन के वितरण के सम्बन्ध मे उनका ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त और सर्वोदय—सिद्धान्त महत्त्वपूर्ण है । इसका विस्तार से विवेचन इसी अध्याय मे आगे किया गया है ।

द्विवेदीयुगीन कवियों पर गॉधीजी के व्यक्तित्व का बहुत प्रभाव पडा है । दलितोद्धार के लिए गॉधीजी आजीवन प्रयासरत रहे । गुप्तजी की रचनाओ मे दलितों के उद्धार का समर्थन मिलता है । गुप्तजी ने 'समन्वय' कविता के माध्यम से दलितोद्धार के लिए समतामूलक समाज रचना का समर्थन करते हुए लिखा है—

पुर, पत्तन हो अथवा ग्राम,
हों सर्वत्र समन्वय धाम ।
जुडे जहॉ सब मत के लोग,
साधन करें एकता योग ।[1]

'साकेत' मे गॉधीवाद का प्रभाव सर्वत्र दृष्टिगत होता है । असहायो की सेवा, दलितों का उद्धार, शत्रु के साथ भी उदारता का व्यवहार, स्वावलम्बन आदि की भावना मे गॉधीजी का दृष्टिकोण परिलक्षित होता है । इस सम्बन्ध मे डॉ० प्रतिपाल सिंह का मत है कि "उनका कोल किरात, भिल्ल बालाओं को वर्धाश्रम की भॉति अवशेष समय मे कातने बुनने का सदुपदेश देना एव नारी को अपने सत्व को प्राप्त करने की इच्छा, शक्तों की भिक्षा कैसी ? आदि

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : 'हिन्दू' , पृष्ठ 243

आदि प्रश्न गॉधीवाद के द्योतक है ।"[1] सीता द्वारा जनजातीय लोगो को सूत कातने के लिए आमत्रित करना गॉधीवाद का प्रभाव ही है । सीता का कथन है—

तुम अर्द्ध नग्न क्यो रहो अशेष समय मे,
आओ, हम काते—बुनें गान की लय मे ।[2]

गुप्तजी की रचना 'पचवटी' मे प्रजातंत्र की उन्ही विशेषताओ का दर्शन होता है जिसकी कल्पना गॉधीजी ने 'रामराज्य' मे किया है । साकेत वासी राम की उदात्त वृत्तियो से अवगत हैं और उन्हे पूर्ण विश्वास है कि राजा के रूप मे उनका कार्य लोक हितार्थ होगा । उनकी इस भावना का वर्णन गुप्तजी ने इस प्रकार किया है—

और आर्य्य को ? राज्य भार तो
वे प्रजार्थ ही धारेगे,
व्यस्त रहेगे, हम सबको भी
मानो विवश बिसारेंगे ।[3]

जिस शासन व्यवस्था में शासक के प्रति जनता का इतना उत्कट विश्वास हो, निश्चित रूप से वहॉ चतुर्मुखी विकास होगा, सभी सुखी होगे, किसी प्रकार का भेदभाव नहीं होगा । राम के विपिन राज्य में यह उदात्त भावना शुरू से ही फलीभूत होती दिखाई पड़ती है ।[4] गॉधीजी की स्वराज्य की कल्पना रामनरेश त्रिपाठी की रचना 'पथिक' में साकार होती दिखाई पड़ती है । पथिक जनता को ऐसे समाज निर्माण की प्रेरणा देता है जहॉ सबको वस्त्र,

---

1. डॉ प्रतिपाल सिह · बीसवीं शताब्दी (पूर्वार्द्ध) के महाकाव्य, पृष्ठ 152
2. मैथिलीशरण गुप्त . साकेत, पृष्ठ 106
3. " पंचवटी, पृष्ठ 10
4 " " " 15

भोजन और आवास जैसी मूलभूत सुविधाएँ उपलब्ध हो । समस्त शक्तियॉ समाज के उत्थान एव हितार्थ लगें । सभी को सच्चा न्याय उपलब्ध हो, प्रत्येक व्यक्ति के लिए शारीरिक श्रम उपलब्ध हो । गॉधीजी सबसे पहले इसी बात पर बल देते हैं । यही शिक्षा पथिक के कथन मे दृष्टिगत् होता है । पथिक जनता से अपील करता है–

> निज उन्नति का जहॉ सभी जन को समान अवसर हो,
> शांति–दायिनी निशा और आनंद भरा वासर हो
> उसी सुखी स्वाधीन देश में मित्रो जीवन धारो
> अपने चारू चरित से जग में प्राप्त करो फल चारों। [1]

जिस प्रकार 'साकेत' मे गुप्तजी ने यह स्थापित किया है कि राजा, राज्य का मात्र रक्षक है और उसका दायित्व जनता की सुख–सुविधाओं को उपलब्ध कराना है, उसी तरह से कवि रामनरेश त्रिपाठी ने राज्य–शक्ति को प्रजाशक्ति और प्रजा को ही राज्य का वास्तविक धन स्वीकार किया है ।[2] गॉधीजी के अहिंसात्मक आंदोलन का सजीव चित्र 'पथिक' काव्य में मिलता है । 'पथिक' काव्य का नायक पथिक और कोई नहीं, बल्कि स्वयं गॉधीजी हैं । जिस तरह सरकार से असहयोग करने की प्रेरणा गॉधीजी ने दिया था, उसी तरह की प्रेरणा पथिक भी जनता को देता है । इस सम्बन्ध मे डॉ० विनयमोहन शर्मा का मत उल्लेखनीय है कि "'पथिक' खण्डकाव्य असहयोग अस्त्र के प्रभाव की घोषणा करता है और पथिक के रूप में महात्मा गॉधी का जयघोष ।"[3] पथिक स्वशासन की स्थापना के लिए जनता को जीवन संघर्ष से विमुख होने की

---

1. रामनरेश त्रिपाठी : पथिक, पृष्ठ 50
2 वही . वही, पृष्ठ 78
3. डॉ० विनयमोहन शर्मा सम्मेलन पत्रिका,हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग पृष्ठ 167

अपेक्षा अपने अन्दर पराक्रम, साहस, सत्य, न्याय, करूणा, उदारता, क्षमा आदि दैवीय गुणों को विकसित करके देश की बलिवेदी पर आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा देता है ।[1] असहयोग आदोलन के समय ब्रिटिश शासन की ऑख में गॉधीजी के अनुयायी किस प्रकार खटकते हैं और जेल मे बद आदोलनकर्ताओ के साथ किस तरह का व्यवहार किया जाता है, उसका वर्णन कवि नाथूराम शर्मा 'शकर' ने इस प्रकार किया है–

नौकरो की शाही सभ्यता का गला काटती है,
गॉधी के सगाती ॲखियो मे खटकते हैं ।
भारत की लूट कूटनीति की उजाड रही,
न्याय के भिखारी ठौर–ठौर भटकत है ।
जेलो में स्वदेश–भक्त हिंसाहीन सज्जनों को,
पेट–पाल पातकी पिशाच पटकत है ।
कौन पै पुकारै अब शकर बचा ले हमे,
गोरे और गोरों के गुलाम अटकत हैं ।[2]

उपर्युक्त विवेचन के अंत मे निष्कर्षत. यह कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुगीन कवियो पर गॉधी की विचारधारा का प्रभूत् प्रभाव रहा है । उनके काव्य रचनाओं में यह सर्वत्र झलकता है । गॉधीजी के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि चितन को द्विवेदी युगीन कवियो ने सशक्त एवं प्रभावशाली अभिव्यक्ति प्रदान की है ।

ख– राष्ट्रप्रेम और लोकहित

1. **ट्रस्टीशिप की भावना** :-गॉधीजी का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त 'अपरिग्रह' पर आधारित है । उन्होने किसी भी धनी व्यक्ति को आवश्यकता से अधिक जमीन

---

1. प० रामनरेश त्रिपाठी पथिक, पृष्ठ 48

2. नाथूराम शर्मा 'शकर' शकर सर्वस्व, पृष्ठ 318

एव सम्पत्ति का सरक्षक माना, उसका मालिक नही । उनका विचार था कि मालिको के पास जो सम्पत्ति है, उन्हे, उसका ट्रस्टी मानना चाहिए और इस सम्पत्ति का विनियोग जन–कल्याण के लिए होना चाहिए । उनका यह मानना था कि समाज मे विषमता का उन्मूलन तब तक सम्भव नही है, जब–तक समाज का प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह धनी हो या गरीब, अपने कर्त्तव्यो और अपने दोषो के प्रति नैतिक रूप से सचेत न हो जाये ।

"गॉधीजी ऐसी अर्थव्यवस्था के आकांक्षी थे, जिसमे समाज के सभी लोगो को जीवन की आवश्यक वस्तुएँ सुलभ हो । तात्पर्य यह है कि गाँधीजी कुछ व्यक्तियों के हाथ में संचित सपत्ति के समानीकरण पर बल देते थे, उनका लक्ष्य था कि करोड़ो भूखे, नगे व्यक्तियो का जीवन स्तर उठाया जाय । उनकी धारणा थी कि जब तक कुछ पूँजी–पतियो एवं करोडो भूखे व्यक्तियों के बीच की चौड़ी खाई पट नही जाती तब तक अहिसात्मक शासन व्यवस्था, राम–राज्य की स्थापना सर्वथा असम्भव है"[1] इसका यह अर्थ नही है कि गॉधीजी पूँजी–पतियों का विनाश चाहते थे, इसका स्पष्टीकरण इस कथन से सिद्ध किया जा सकता है– "लेकिन चूँकि मैं अहिसा पर ही आधारित ऐसे राज्य की कल्पना कर सकता हूँ, इसलिए मैं धनी लोगो को धन हीन नहीं बनाऊॅगा, बल्कि राज्य स्वामित्व की प्रक्रिया मे उनका सहयोग चाहूँगा ।"[2] गॉधी की यह मान्यता थी कि मज़दूर और पूँजीपति परस्पर मेल से, एक परिवार के रूप में पारस्परिक भलाई एवं विकास के लिए साथ–साथ कार्य कर सकते हैं। गॉधीजी यह मानते थे कि यदि अमीर वर्ग इस सिद्धान्त को स्वीकार कर ले तो आर्थिक असुरक्षा की भावना समाप्त हो जायेगी । इस तरह उनका अभिमत निजी सम्पत्ति को एक ट्रस्ट के रूप मे रखने का था,

---

1. मोहनदास करमचंद गॉधी रचनात्मक कार्य, पृष्ठ 30
2. वही : वही , पृष्ठ 30

जो समष्टि के हित मे हो । गॉधीजी ने पूँजीपतियो को त्यागपूर्ण भोग की शिक्षा देकर उनके अन्त करण मे समाजवादी भावना भरकर बतलाया कि उन्हे विपन्न, दुखी, और असहाय लोगो के लिए त्याग करना चाहिए । गॉधीजी ट्रस्टीशिप के द्वारा सम्पत्ति का न्यायोचित वितरण करना चाहते थे, इसके लिए उन्होने पूँजीपतियो को राजी करने की कोशिश किया की वे ट्रस्टी बन जाये।

आलोच्य युग के काव्य में ट्रस्टीशिप की भावना को अभिव्यक्ति मिली है। हम कह सकते हैं कि पड़ित रामनरेश त्रिपाठी का 'स्वप्न', मैथिलीशरण गुप्त का 'साकेत', 'प्रदक्षिणा', 'पचवटी', 'चन्द्रहास', 'अजित', 'अनघ' और हरिऔधजी का 'वैदेही–वनवास' आदि रचनाओ मे ट्रस्टीशिप की भावना को प्रत्यक्ष रूप मे अभिव्यक्ति मिली है। 'साकेत' मे शत्रुघ्न का यह कथन गॉधीजी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त का अनुमोदन करता है–

तात, राज्य नही किसी का वित्त, वह उन्ही के सौख्य–शाति–निमित्त
स्व बलि देते हैं उसे जो पात्र, नियत शासक लोक–सेवक मात्र ।[1]

ट्रस्टीशिप सिद्धान्त का मूल भाव है कि धनी वर्ग को अपनी सपत्ति को देश तथा देश का आर्थिक सतुलन बनाये रखने के लिए स्वेच्छया त्याग करना चाहिए । मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'प्रदक्षिणा' मे 'रक्षक मात्र रहे वे राजा'[2] का कथन शासक पक्ष मे सत्ता का ट्रस्टी मात्र होने के भाव का समर्थन करता है । इसी प्रकार थोडे बहुत अंतर के साथ गुप्तजी की अन्य कृतियो 'पंचवटी'[3],

---

1. मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 96
2. वही . प्रदक्षिणा, 76
3. वही पंचवटी, पृष्ठ 10,15

'चन्द्रहास',[1] 'सिद्धराज'[2], अनघ[3], 'हिन्दू' [4],आदि मे भी ट्रस्टीशिप की भावना की अभिव्यक्ति हुई है ।

'वैदेही वनवास' प्रबन्ध रचना मे हरिऔधजी का कहना है कि राजा राजकोष का स्वामी नही बल्कि उसका रक्षक मात्र है, उसे राजकोष को प्रजा की सम्पत्ति समझना चाहिए । उनके राम को जीवन के सर्वसुख एव सर्वभोग उपलब्ध है, वे राजा हैं, किन्तु राम होने के नाते उनका ध्येय लोक हित है । गॉधीजी के अनुसार भोग का यह त्याग ट्रस्टीशिप का ही द्योतक है । राजसत्ता राम के लिए सर्व–हिताय है । यह सुखद स्थिति प्रजा में तभी आ सकती है जब राजा भोक्ता और सामन्ती व्यवस्था का धन–लोलुप न हो ।

सब को सुख हो कभी नही कोई दु ख पाये

सबका होवे भला किसी पर बला न आवे ।[5]

सर्वसुख ईश्वर कृपा पर नही मानव–मानव के सम–दु ख भाग पर आधारित है । राम के समान त्यागी बनकर, दु खी जनो के होठो पर मुस्कान लाना कठिन नही है, साथ ही इसी भावना को लेकर समाज के विपन्न, दुखी, असहाय, व्यक्तियो के तन ढकने के लिए वस्त्र एवं पेट भरने के लिए रोटी का समुचित प्रबन्ध सम्भव है । विचार का विषय यह है कि धनी–वर्ग सीता के सदृश्य अपने समस्त सुख एवं कामनाओ का परित्याग कर अपने कर्म मात्र लोकाराधन मे करे ।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त चन्द्रहास, पृष्ठ 52
2. वही . सिद्धराज, पृष्ठ 21
3. वही अनघ, पृष्ठ 40
4 वही हिन्दू, पृष्ठ 156,223
5. अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' वैदेही वनवास, पृष्ठ 17

2 सर्वोदय :–

गॉधीजी ने रस्किन की पुस्तक 'Unto The Last' पढ़ा । जिसका उनके जीवन पर गहरा प्रभाव पडा । रस्किन का यह सिद्धान्त मानवतावादी था । इससे प्रभावित होकर महात्मा गॉधी ने इस सिद्धान्त को सर्वोदय नाम दिया । उनका मानना है कि जबतक प्रत्येक व्यक्ति की पर्याप्त उन्नति न हो जाय, मानव को इसके लिए सतत् प्रयत्न करना चाहिए । ऐसा मानव जिसका जीवन दु ख, दीनता एव अधकार से भरा हुआ है, उनकी सेवा करके उन्हें प्रकाश देने का प्रयत्न करना चाहिए । गॉधीजी का यह विचार वैदिक विचार धारा 'सर्वेभवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया ' से ओत प्रोत है । यह दृष्टिकोण केवल मानव तक ही सीमित न हो, बल्कि इसका विस्तार सभी जीवो तक होना चाहिए, तभी ससार कल्याणमय होगा । इस सम्बन्ध मे गॉधीजी ने लिखा है– "बन्धुत्व का अर्थ यह नही है कि जो आपके भाई बने, जो आपको चाहे, उसके आप भाई बने । यह तो सौदा हुआ, बदला हुआ । बन्धुत्व मे व्यापार नही होता । मेरा धर्म मुझे यह शिक्षा देता है कि बन्धुत्व मनुष्य के साथ नहीं, प्राणी मात्र के साथ होना चाहिए ।"[1] गॉधीजी का यह मानना था कि प्रत्येक मनुष्य यद्यपि समान है, परन्तु उनमे रूचियो, योग्यता, महत्वाकांक्षा, शारीरिक एवं मानसिक गुणो में वैभिन्य है । अत. सभी का सामाजिक तथा आर्थिक स्तर एक सा नही हो सकता, परन्तु सबको अपनी रूचि एव क्षमता के अनुरूप अपने गुणों का विकास करने के लिए समान अवसर अवश्य मिलना चाहिए । गॉधीजी का यह भी मानना था कि सबका आर्थिक स्तर एक सा नहीं हो सकता, परन्तु सबको अपनी मूलभूत आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए धन प्राप्त होना चाहिए । जब सभी व्यक्तियो के साथ ऐसा

---

1. मो०क० गॉधी . उद्धृत नीति, धर्म और दर्शन (सपादक रामनाथ सुमन), पृष्ठ 100

हो जायेगा और इसके साथ—साथ पर्याप्त नैतिक एव आध्यात्मिक विकास हो जायेगा तभी समाज का मगल हो सकेगा । गॉधीजी की सर्वोदयी विचारधारा का प्रतिफलन द्विवेदी युगीन काव्य में हुआ है । द्विवेदी युग के रचनाकारो ने समाज मे व्याप्त विसगतियों, विषमताओ के उन्मूलन पर बल दिया ।

हरिऔधजी ने समाज के उन कतिपय लोगो से प्रश्न किया है, जिन्हे सवर्ण होने का गौरव प्राप्त है, जो अपने को अन्य मानव से उच्च प्रतिष्ठित करने मे लगे रहते हैं—

जिन्हें हम छूते नही समझ अछूत ।
जो हैं माने गये सदा परम पतित ।।
पास उनके है होता क्या नही हृदय?
वेदनाओ से वे होते क्या नहीं व्यथित?[1]

रामचरित उपाध्याय की 'हमी हम' [2] कविता मे उँच—नीच के भेदभाव को छोड़कर एकता की भावना अपनाने से भारत का दु:ख दूर होने का कथन है । तो रामचद्र शुक्ल की 'अछूत की चाह'[3] कविता में उन कुलीनों पर आश्चर्य प्रकट किया गया है जिन्हें कुत्ते को तो स्पर्श करना स्वीकार्य है, परन्तु अपने भाइयो को नहीं ।

मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'साकेत' में राम द्वारा मनुष्य का सामाजिक पक्ष निरूपित हुआ है । उनका यहॉ अवतरण ही लोकहिताय हुआ है । पॉचवें सर्ग में वशिष्ठ मुनि द्वारा लोकमगल का उपदेश दिया गया है—

मुनि—रक्षक—सम करो विपिन मे वास तुम,

---

1 अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' : पद्यप्रसून, पृष्ठ 135

2 रामचरित उपाध्याय . 'हमी हम', सरस्वती, फरवरी, 1916, पृष्ठ 101

3. रामचद्र शुक्ल 'अछूत की चाह', सरस्वती, अक्टूबर, 1916 पृष्ठ 2:3

मेटो तप के विघ्न और सब त्रास तुम ।

हरो भूमि का भार भाग्य से लभ्य तुम,

करो आर्य–सम वन्यचरो को सभ्य तुम ।[1]

गुप्तजी ने 'साकेत' मे प्राय सभी प्रमुख पात्रों के जीवन चरित द्वारा समष्टि के लिए बलिदान की भावना का पूर्णतया समर्थन किया है, यही सर्वोदयी भावना का मूल प्रतिपाद्य है । उनकी फुटकल कविताओं में 'वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे'[2] तथा 'सम्बोधन' में इस विचारधारा को प्रस्तुत किया गया है ।

रामनरेश त्रिपाठी के 'पथिक' [3] मे परहित साधना तथा 'मिलन'[4] मे लोक–कल्याण' की भावना पर बल दिया गया है । 'साकेत' मे विभीषण रावण को विश्वजनीन स्तर पर विचार करने की प्रेरणा देते हैं। विभीषण का कथन है –

किसी एक सीमा मे बँधकर,

रह सकते हैं क्या ये प्राण?

एक देश क्या, अखिल विश्व का

तात, चाहता हूँ मैं त्राण?[5]

विरह की असह्य वेदना से पीड़ित उर्मिला अपने सुख–दु.ख को भूलकर विश्व–कल्याण की कामना करती है । वह बादलों से वृष्टि की याचना, इसलिए करती हैं ताकि जगत् की तपन, शीतलता में परिवर्तित हो

---

1 मैथिलीशरण गुप्त . साकेत, पृष्ठ 58

2 मैथिलीशरण गुप्त . 'सरस्वती', अक्टूबर, 1914 ई०, पृष्ठ 123

3. रामनरेश त्रिपाठी पथिक, पृष्ठ 58

4 वही . मिलन, पृष्ठ 74

5. मैथिलीशरण गुप्त · साकेत, पृष्ठ 212

जाय। जो नितान्त वैयक्तिक भाव है, उस विरह की तीव्रता मे भी कवि लोकोत्कर्ष की बात सोचना नहीं भूलता ।

प्यासे हैं प्रियतम, सब प्राणी,

उन पर दया करो हे दानी,

इन प्यासी ऑखो मे पानी, मानस, कभी न रीतो,

मन को यों मत जीतो ।[1]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुगीन कवियों ने व्यष्टि को नही, बल्कि समष्टि के हित को महत्त्व दिया है, जो सर्वोदयी भावना का मूल प्रतिपाद्य है।

3. दलितोद्धार :-

उन्नीसवीं शताब्दी का भारतीय समाज अनेक धार्मिक एव सामाजिक विसंगतियो कुरीतियों एव रूढ़ियो मे जकडा हुआ था । इसके फलस्वरूप समाज वर्ग, जाति, सम्प्रदाय आदि के आधार पर विभाजित एव खडित था । समाज का एक बहुत बडा हिस्सा वर्णव्यवस्था, जातिप्रथा, छुआछूत के आधार पर समाज की मुख्यधारा से बहिष्कृत कर दिया गया था । उनके आचार—विचार, रहन—सहन, पेशे, जीविकोपार्जन के साधन आदि को हेय दृष्टि से देखा जाता था । इन्ही बुराइयों, विसंगतियो, विषमताओ को समाप्त कर एक स्वस्थ समाज के निर्माण के लिए धार्मिक एव सामाजिक सुधार आंदोलन चलाया गया । ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसोफ़िकल सोसाइटी आदि ने समाज के इन कुष्ठ रोगों के शमन के लिए यथासंभव प्रयास किया । स्वामी विवेकानन्द ने दलितो के प्रति सहानुभूति और उनके उत्थान का संदेश देकर इस बात पर बल दिया कि दलितो के साथ ऐसा घृणित व्यवहार करना धर्म विरूद्ध है । उन्होंने

---

1. मैथिलीशरण गुप्त . साकेत, पृष्ठ 146

दलितो को ईश्वर की साकार मूर्ति घोषित करते हुए आह्वान किया कि "भारत वर्ष के इन गरीब, निम्न जाति के प्रति हमारे जो भाव हैं, उनका विचार करने से मेरे अन्त.करण मे कितनी पीडा होती है । .... लाखो स्त्री—पुरूष पवित्रता के जोश से उद्‌दीप्त होकर, ईश्वर के प्रति सहानुभूति से सिंह के समान साहसी बनकर इस सम्पूर्ण भारत देश मे सर्वत्र उद्धार के सदेश का, सहायता के सदेश का, सामाजिक उत्थान के संदेश का, समानता के सदेश का प्रचार करते हुए, विचरण करेंगे ।"[1] आर्य समाज ने वेदो का प्रमाण देकर यह प्रमाणित किया कि वैदिककाल मे छुआछूत, जाति—पॉति नही था, इसलिए उन्होंने इन्हें अमान्य कर दिया । इन मनीषियो द्वारा दिए गये आध्यात्मिक सदेश और उसके प्रभाव के सन्दर्भ मे डॉ० श्रीकृष्णलाल ने लिखा है कि "..... इस आध्यात्मिक प्रकाश ने लोगों मे विश्वप्रेम, और जनसेवा की भावना और मानवतावाद के आदर्शो की प्रतिष्ठा की ।"[2]

इस प्रकार दलितो के प्रति मनीषियो ने मानवीय दृष्टि अपनाने का संदेश दिया और कहा कि मानव की सेवा ही ईश्वर की सच्ची उपासना है । इन मानवीय मूल्यो के प्रचार—प्रसार के लिए उन्नीसवी—बीसवीं शताब्दी मे जाति—पॉति, छुआछूत आदि का विरोध करके दलितो को समाज की मुख्य धारा में लाने का प्रयास सर्वत्र दिखाई पडता है । बीसवीं शताब्दी के युगपुरूष महात्मा गॉधी ने अस्पृश्यता समाप्त करने के लिए अथक प्रयास किया और उसे पूर्णतया अमानवीय बताकर निन्दा की । भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस ने भी अपने प्रस्तावों मे छुआछूत, जाति—पॉति की निन्दा की और उसे यथाशीघ्र समाप्त करने का आह्वान किया । बीसवीं शताब्दी के राष्ट्रवादियों

---

1. स्वामी विवेकानद . अनुवादक पं० द्वारिका नाथ तिवारी, जाति, सस्कृति और समाजवाद, पृष्ठ, 84

2. डॉ० श्रीकृष्णलाल आधुनिक हिन्दी का विकास, पृष्ठ 22

का विचार था कि जब तक इस छिन्न समाज को विकास की मुख्य धारा से नहीं जोडा जाता तब तक स्वाधीनता प्राप्त करना सम्भव नहीं होगा । बीसवीं शताब्दी मे दलितो के उत्थान के लिए गॉधीजी, श्रीनारायण गुरू, टी०एम० नैकर, आचार्य विनोबा भावे, डॉ० बी०आर० अम्बेदकर आदि ने उल्लेखनीय प्रयास किया।

उन्नीसवीं—बीसवी शताब्दी मे दलितो की सामाजिक दशा में सुधार के लिए भारतीय मनीषियों ने मानवतावादी दृष्टिकोण को अपनाने का आह्वान किया, द्विवेदी युगीन काव्य उससे पूर्णतया सम्पृक्त है । द्विवेदीयुगीन कवियों ने अपनी रचनाओं मे दलितों एवं अछूतो के प्रति करूणा, प्रेम, सहानुभूति, समानता का भाव आदि की सवेदनात्मक अभिव्यक्ति की है। दलितो एवं शोषितो की विपन्नता एवं हीनता का चित्रण द्विवेदी युगीन कवियो का प्रमुख वर्ण्य विषय रहा है । कवियो ने दलितो की असहनीय दशा, उनकी पीड़ा तथा मन स्थिति का यथार्थ चित्रण कर समाज के तथाकथित अभिजात्य वर्ग से उनके प्रति अपनाये जाने वाले दृष्टिकोण मे परिवर्तन करने का आग्रह किया । कवि रूपनारायण पाण्डेय ने अछूतो के अपनाए बिना जाति के ह्रास होने तथा स्वराज्य प्राप्ति को दुष्कर बताते हुए लिखा है कि इन अछूतो के उद्धार के बिना स्वराज्य प्राप्त करना कठिन है—

अपना ही अग हैं ये अत्यन्त असंख्य, इन्हें
गले न लगाया तो अवश्य पछताओगे ।
ममता के मंत्र से विषमता का विष जो,
उतारा नहीं, जाति का तो जीवित न पाओगे ।
पक्षाघात—पीडित समाज जो रहेगा पगु,
उन्नति की दौड़ मे कहाँ से जीत पाओगे ।

साधना स्वराज्य की सफल कभी होगी नही,[1]

कवि ने देश को यह सदेश दिया है कि बिना दलितो के उद्धार के देश एव समाज की उन्नति सम्भव नहीं है और न स्वाधीनता ही प्राप्त हो सकेगी । अतः इस प्रकार की सामाजिक विषमता का उन्मूलन आवश्यक है । नाथूराम शर्मा 'शकर' ने 'कजली कलाप',[2] 'पंच पुकार',[3] 'जाति—पॉति तोडक मण्डल'[4] आदि कविताओं मे छुआछूत का विरोध किया है तथा इस बात पर बल दिया है कि सभी मनुष्य एक ही ईश्वर की संतान हैं, इसलिए परस्पर छूत—अछूत का ध्यान करना व्यर्थ है । कवि 'शकर' ने छुआछूत की भावना के कारण देश के छिन्न—भिन्न होने और ईर्ष्या—द्वेष उत्पन्न होने की ओर संकेत करते हुए लिखा है—

'खुल—खेलों रही न रोक, दुविधा दूर भई।

दुर—दुर छुआछूत के मारे ह्वै गये छिन्न—भिन्न हम सारे,

सत्यानाश भयौ भारत को ।।[5]

कवि ने अपनी एक अन्य कविता 'छूत—अछूत क्यों'[6] मे एकता की भावना को अपनाने तथा छूत—अछूत की भावना को त्यागने से ही देश का कल्याण होगा, का संदेश दिया है ।

कवि हरिऔधजी ने दलितों के कारूणिक दृश्य को अंकित करके तथा अपनी प्राचीन संस्कृति का स्मरण कराके, इनके उद्धार के लिए प्रयत्न

---

1. रूपनारायण पाण्डेय पराग, पृष्ठ 127
2. नाथूराम शर्मा 'शंकर' . सरस्वती, अगस्त, 1907 ई०, पृष्ठ 324
3. वही . सरस्वती, जून, 1908 ई०, पृष्ठ 277
4. वही शंकर—सर्वस्व, पृष्ठ 311
5. नाथूराम शर्मा 'शकर' · शकर सरोज पृष्ठ, 50
6. नाथूराम शर्मा 'शंकर' शकर सर्वस्व (संपा० हरिशकर शर्मा) पृष्ठ 363

किया । 'हरिऔधजी ने "पद्य–प्रसून" मे मानव–मानव मे समभाव जागृत करने के लिए मनुष्यो से निवेदन किया है कि हमें ऊँच–नीच का भेदभाव त्याग कर सबके साथ आत्मवत् व्यवहार करना चाहिए।'[1] आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से दलितोद्धार के लिए स्तुत्य प्रयास किया । उन्होंने उपेक्षित आदिवासी समाज की समस्याओ की ओर लोगो का ध्यान आकृष्ट करके, उनकी स्थिति पर विचार करने का आग्रह किया । इस सन्दर्भ मे डॉ० रामविलास शर्मा ने लिखा है– ". . .. अछूतो की तरह भारतीय समाज का एक अग वे गण समाज थे, जिन्हे आदिवासी कहा जाता है । भारत के इस उपेक्षित भाग की जानकारी कराने वाले अनेक लेख सरस्वती में प्रकाशित हुए।"[2] मैथिलीशरण गुप्त की रचनाओं मे भी दलितोद्धार का वर्णनहुआ है। उन्होने मानव–मानव मे विभेद का विरोध करते हुए मानव की एकता का समर्थन किया है । 'जयभारत' मे कवि ने वर्णव्यवस्था का आधार गुण तथा कर्म स्वीकार किया है । जब भीम राक्षसी होने के कारण हिडिम्बा का विवाह प्रस्ताव अस्वीकार कर देते हैं, तो इस पर वह कहती है–

> प्राणी मात्र सहज प्रवृत्तियों में एक से,
> राक्षस भी चलते हैं अपने विवेक से ।[3]

इसी तरह एकलव्य जाति के आधार पर अयोग्य घोषित होने पर गुरू द्रोण से पूछता है– क्या अराजन्यो मे ईश्वर का अंश नहीं है? क्या वे मूलवश 'मानव' से सम्बन्धित नहीं हैं ?[4] इस प्रश्न का समाधान प्रस्तुत करते हुए युधिष्ठिर

---

1. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' . पद्य–प्रसून, पृष्ठ 47

2. डॉ० रामविलास शर्मा . महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, पृष्ठ 177

3. मैथिलीशरण गुप्त जयभारत, पृष्ठ 73

4 वही वही, पृष्ठ 44

कहते हैं—

सुनो तात हम सभी एक है, भव सागर के तीर

*　　　*　　　*

परमात्मा के अश रूप हैं, आत्मा सभी समान

एकलव्य तो मनुज—मुझी सा, मुझमे सबका भाग ।[1]

द्विवेदीयुगीन कवियों ने नयी सामाजिक और राजनीतिक चेतना के अनुरूप मानव को मानव के रूप मे प्रतिष्ठित किया । उन्होने अपनी काव्य रचनाओ और पत्र—पत्रिकाओ मे प्रकाशित कविताओं मे दलितो की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति का मार्मिक एव यथार्थ वर्णन करके समाज को आदोलित किया । उन्होंने सामाजिक रूप से दलित वर्ग पर थोपी गई अपात्रता को अस्वीकार करके उसे मानव के रूप में स्थापित किया । द्विवेदी—युग के कवियो की करूणा एव सहानुभूति पूर्णतया दलितो के प्रति अभिव्यक्त हुई है। उनका मानना है कि इस तरह की विसगतियो और विषमताओ के होते समाज का कल्याण सम्भव नही होगा । युगो से चली आ रही अस्पृश्यता तथा जाति—पॉति की बुराइयो के विरूद्ध पहली बार आलोच्य युगीन काव्य मे सशक्त अभिव्यक्ति मिली है। इसका विस्तार से विवेचन आगे के अध्याय मे किया जाएगा ।

समता मूलक समाज :-

अँग्रेज़ों ने भारत विजय के फलस्वरूप देश की प्रशासनिक व्यवस्था मे परिवर्तन, क़ानून की समानता का सिद्धान्त लागू करना, यातायात एव संचार माध्यमो का विकास, आर्थिक व्यवस्था में व्यापक परिवर्तन आदि किए । इससे सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में क्रिया—प्रतिक्रिया के फलस्वरूप नयी चेतना का सचरण हुआ । उन्नीसवी शताब्दी के धार्मिक एव सामाजिक आंदोलन ने अपना ध्यान विशेष रूप से सामाजिक और धार्मिक

---

1. मैथिलीशरण गुप्त　　जयभारत, पृष्ठ 48

कुरीतियो के परिष्कार एव परिमार्जन पर ही केन्द्रित किया जिससे समाज मे समता स्थापित हो सके । भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस ने ब्रिटिश सरकार द्वारा राजनीतिक, आर्थिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक आदि क्षेत्रो मे किये जा रहे भेदभाव को समाप्त कर समानता के आधार पर नागरिक अधिकारो की मॉग की । मिलो, खानो, सरकारी उपक्रमो आदि मे काम करने वाले मजदूरो एव कर्मचारियो ने अपने–अपने संगठन द्वारा अपने हितो की रक्षा के लिए पूँजीपतियो और सरकार के विरूद्ध संघर्ष प्रारम्भ किया । किसानों ने भी सरकार द्वारा लगाये गये अधिक भूराजस्व एव अन्य करो मे रियायत करने की मॉग की । राष्ट्रवादी आंदोलन ने भी जनता में नयी जागरूकता एव चेतना का प्रसार किया । गॉधीजी का ट्रस्टीशिप सिद्धान्त और सर्वोदय के विचार ने भी समानता की भावना का पोषण किया । स्वामी विवेकानन्द द्वारा व्याख्यायित व्यावहारिक वेदान्त ने मानव–मानव के बीच फैले हुए वैषम्य का विरोध कर मानव समानता का जो प्रबल समर्थन किया,उसका यथेष्ट प्रभाव बुद्धिजीवी वर्ग पर पड़ा । इस प्रकार बीसवीं शताब्दी का चिन्तन समतामूलक समाज के पक्ष में मुखर था ।

आलोच्य युगीन कवियो ने अपनी रचनाओ मे आर्थिक एवं सामाजिक विषमताओं, किसानों और मज़दूरो की दयनीय स्थिति, स्त्रियो की स्थिति आदि का यथार्थपरक वर्णन करके मानवीय मूल्यों पर आधारित समतामूलक समाज की स्थापना का आह्वान किया । द्विवेदी युगीन काव्य में समाज मे व्याप्त पीड़ा, अन्याय, अत्याचार, विषमता आदि का विरोध करके लोगो को त्याग, सहानुभूति, दया, करूणा आदि की उस उच्च-मनोभूमि पर स्थापित करने का भाव विद्यमान है, जो जन-कल्याणकारी हो ।

मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' मे धन के विकेन्द्रीकरण पर बल दिया है, क्योकि धन के सकेन्द्रण से सामाजिक जीवन प्रभावित होता है। कवि ने लिखा है–

जो सग्रह करके त्याग नही करता है,

वह दस्यु लोक धन लूट लूट धरता है ।

यों तो फिर कह दो—कहीं न कुछ भी होता,

निर्द्वन्द्व भाव ही पडा शून्य मे सोता ।[1]

'साकेत' के 'अष्टम सर्ग' मे सीता अपनी पर्णकुटी को राजभवन के समान मानकर प्रत्येक स्थिति मे सतुष्ट रहती हैं । वे वन के कोल, भील, किरात बालाओ को सभ्य बनाने मे लगी हुई हैं—

ओ भोली कोल—किरात—भिल्ल—बालाओ,

मैं आप तुम्हारे यहॉ आ गई, आओ ।

मुझको कुछ करने योग्य काम बतलाओ,

दो अहो! नव्यता और भव्यता पाओ ।

लो, मेरा नागर भाव भेट जो लाया,

मेरी कुटिया मे राज—भवन मन भाया ।[2]

इसी तरह उनकी अर्धनग्नता को समाप्त करने के लिए उन्हें सूत कातना—बुनना सिखाती हैं । यही संवेदना और प्रेम—भाव समतामूलक समाज की नींव हैं । 'साकेत' के 'अष्टम सर्ग' में कवि ने लिखा है—

केवल उनके ही लिए नहीं यह धरणी,

है औरो की भी भार—धारिणी—भरणी ।

जनपद के बन्धन मुक्ति—हेतु हैं सबके,

यदि नियम न हो, उच्छिन्न सभी हो कब के ।[3]

वियोगी हरि ने सामाजिक वैषम्यता का बड़ा ही सटीक चित्रण किया है—

---

1. मैथिलीशरण गुप्त 'साकेत', पृष्ठ 110

2. वही वही, पृष्ठ 106

3. वही वही, पृष्ठ 109

उत भूखे क्रन्दन करत कलपि किसान मजूर ।

इत मसनद पै मद छके सुनत अलाप हुजूर ।।[1]

कवि 'त्रिशूल' ने आर्थिक विषमता का वर्णन करते हुए समाज के सुख—दुःख में सभी की सहभागिता पर बल दिया है—

कुछ भूखों मर रहे महातनुशीर्ण हुआ है ।

कुछ कितना खा गये की घोर अजीर्ण हुआ है ।

कैसा यह वैषम्य भाव अवतीर्ण हुआ है ।

जीर्ण हुआ मस्तिष्क हृदय संकीर्ण हुआ है ।

कुछ मधु पीकर मत्त हों, आँसू पी कर कुछ रहे ।

कुछ लूटें संसार सुख, मरते जी कर कुछ रहे ।[2]

आगे कवि उस सामाजिक व्यवस्था का वर्णन करता है जिसमें एक का सुख—दुःख दूसरे का सुख—दुःख हो—

सुख—दुःख सबके लिए हो इस नये समाज में

सबका हाथ समान हो लगा तख्त में ताज में ।[3]

द्विवेदी युगीन कवियों ने जाति—पाँति, छूत—अछूत, बहुविवाह, बाल विवाह, दहेज प्रथा, विधवा विवाह आदि सामाजिक बुराइयों की निंदा करके इन भेद—भावों को समाप्त कर मानव—मानव और स्त्री—पुरुष की समानता का आह्वान किया । रामनरेश त्रिपाठी ने सभी प्राणियों के साथ प्रेमवत् रहने के लिए कहा है—

---

1. वियोगी हरि : वीर सतसई, पृष्ठ 77

2. 'त्रिशूल' : राष्ट्रीय मंत्र, प्रकाशक, रमाशंकर अवस्थी प्रथम संस्करण, 1921, पृष्ठ 13

3. 'त्रिशूल' : राष्ट्रीय मंत्र, प्रकाशक, रमाशंकर अवस्थी प्रथम संस्करण, 1921, पृष्ठ 18

गौर, श्याम, उत्तर जघन्य कुत्सित कुरूप, सुन्दर का,
होता नहीं विचार प्रेम के शासन में निज पर का ।
घृणित, अछूत, अकिंचन जग मे जो जन है जितना ही,
तुमसे है वह प्रेम प्राप्ति का पात्र अधिक उतना ही ।[1]

यह सच है कि यदि मानव–मानव मे वैषम्य का भाव बना रहा तो मानवता का क्या होगा? समाज के सभी प्राणी समान हैं, फिर इस प्रकार का भेदभाव क्यो किया जाता है? रामनरेश त्रिपाठी ने देश सेवा और दलितो की सेवा में आत्मोत्सर्ग की आकाक्षा प्रकट की है–

कोई दलित न जग में हमको पडे दिखाई,
स्वाधीन हो सुखी हो सारे अछूत भाई ।
सबको गले लगा लें यह शुद्ध मन हमारा,
छूटे स्वदेश ही की सेवा मे तन हमारा ।[2]

किशोरी लाल गोस्वामी ने 'अपना–पराया' की भावना से ऊपर उठने का अनुरोध करते हुए लिखा है–

यह अपना है और पराया ..... यह,
है ऐसा ही नि.सार ।
सभी जगत् के लोगों के मन में,
है भरा महाकुविचार ।[3]

उत्तर वैदिक काल के बाद पुरूषो ने नारी को तिरस्कृत करना शुरू किया, उस पर अनेक अपात्रताएँ आरोपित करके उसे समाज की मुख्य धारा से ही बहिष्कृत कर दिया गया । कवि मैथिलीशरण गुप्त ने आर्य संस्कृति का स्मरण

---

1 रामनरेश त्रिपाठी पथिक, पृष्ठ 27

2 रामनरेश त्रिपाठी मानसी, पृष्ठ 109

3 किशोरीलाल गोस्वामी . सरस्वती, हीरक जयती, 1900 ई०, पृष्ठ 6

करते हुए लिखा है–

निज स्वामियो के कार्य्य मे समभाग जो लेती न वे,
अनुरागपूर्वक योग जो उसमें सदा देतीं न वे
तो फिर कहाती किस तरह 'अर्धांगिनी' सुकुमारियॉं,
तात्पर्य यह–अनुरूप ही थी नरवरो की नारियॉं ।[1]

इस तरह कवि ने अतीत के नारी गौरव का स्मरण कराके उन्हे पुन समाज की मुख्य धारा से जोडने का अनुरोध किया है। श्रीधर पाठक ने विधवाओ की दयनीय स्थिति पर दु.ख प्रकट किया है। बाल–विधवाओं का करूण चित्र प्रस्तुत करते हुए वे कहते हैं कि दुखी बाल–विधवाओ की जो दुर्गति है वह अवर्णनीय है, उनका जीवन–मरण समान है, जीते जी उन्हे समाज ने तिलाजलि दे दी।[2] मैथिलीशरण गुप्त ने दहेज प्रथा के विरोध मे लिखा हैं–

"बिकता कही वर है यहॉं, बिकती तथा कन्या कही ।[3]

सामतवादी व्यवस्था मे शारीरिक श्रम करने वालो को हेय समझा जाता है । शासक वर्ग, उन्ही किसानो, श्रमिको के श्रम पर सभी सुख–सुविधाओ का उपभोग करता है और उन्हीं के ऊपर अनेक अत्याचार करता है । 'साकेत' की उर्मिला किसानों की महत्ता को रेखांकित करती हुई कहती है–

सच्चा राज्य परन्तु हमारे कर्षक ही करते हैं ।
जिनके खेतों में है अन्न,
कौन अधिक उनसे सम्पन्न ?
पत्नी–सहित विचरते हैं वे, भव–वैभव भरते हैं,
हम राज्य लिए मरते हैं ।[4]

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : भारत–भारती, पृष्ठ 21
2 श्रीधर पाठक . मनोविनोद, पृष्ठ 76
3 मैथिलीशरण गुप्त · भारत–भारती, पृष्ठ 150
4. वही . साकेत, पृष्ठ 157

'पत्नी सहित विचरते है' से राजन्य वर्ग और उच्च–वर्ग की स्त्रियो का उपेक्षापूर्ण जीवन तथा उनकी परवशता से उत्पन्न क्षोभ का भाव ध्वनित होता है ।

'प्रियप्रवास' के कृष्ण राज–पुत्र हैं, परन्तु उन्हे अपने धन, वैभव, पद का गर्व नही है, वे अपने को जन–सामान्य से अलग नही समझते हैं । सदैव असहाय एव दीन की रक्षा के लिए तत्पर रहते हैं । कवि ने लिखा है–

थे राज–पुत्र उनमे मद था न तो भी ।
वे दीन के सदन थे अधिकांश जाते ।

* * *

रोगी दुखी विपद–आपद में पड़ों की ।
सेवा सदैव करते निज–हस्त से थे ।
ऐसा निकेत ब्रज मे न मुझे दिखाया ।
कोई जहाँ दुखित हो पर वे न होवें ।[1]

हरिऔधजी ने 'प्रियप्रवास' में नवधा–भक्ति का लक्षण इस प्रकार से बताया है–

कंगालो को विवश विधवा औ अनाथाश्रितों की ।
उद्विग्नों की सुरति करना औ उन्हें त्राण देना ।
सत्कार्य्यों का पर–हृदय की पीर का ध्यान आना ।
मानी जाती स्मरण–अभिधा भक्ति है भावुको मे ।।[2]

अत उनकी भक्ति का रूप जन-कल्याणकारी है । राधा की भक्ति तो मनुष्य को जन–कल्याण एव लोक–सेवा के विशाल कर्म क्षेत्र मे लाकर उपस्थित

---

1. अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृष्ठ 130
2. वही . पृष्ठ, पृष्ठ 200

करती है । जिस व्यक्ति ने विश्वात्मा का साक्षात्कार कर लिया हो वह लोक सेवा से कैसे विरत हो सकता है ? वह सामाजिक वैषम्य को किस प्रकार स्वीकार कर सकता है?

इस प्रकार द्विवेदी युगीन कवियो ने नवीन चेतना को आत्मसात् करते हुए समाज मे व्याप्त विसंगतियो एव वैषम्य का विरोध कर समतामूलक समाज के सृजन पर बल दिया । मानव—मानव के बीच फैली विषमता के समाप्त होने पर ही समतामूलक समाज की स्थापना सम्भव हो सकती है । द्विवेदी युगीन कवियों मे यह स्वर तीव्रता से मुखरित हुआ है ।

(ग) राष्ट्रप्रेम का नया स्वरूप :--

बीसवी शताब्दी का पूर्वाश एक साथ कई समानान्तर प्रवृत्तियों के रूप मे मुखरित हुआ । भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस के नरमपथी नेताओ ने जहॉ प्रारम्भ मे ब्रिटिश शासन मे आस्था प्रकट की, वही गरमपथी राष्ट्रवादियो ने उनसे आगे बढकर सीधे सघर्ष का मार्ग अपनाया । क्रातिकारी आदोलन ने आत्मोत्सर्ग एवं बलिदान द्वारा राष्ट्र को स्वतन्त्र कराने का प्रयास किया । गॉधीजी ने सत्य और अहिंसा के प्रयोग द्वारा राष्ट्रीय आंदोलन को नई दिशा दी । सन् 1905 ई० में बंग—भग, तिलक की प्रखर राष्ट्रीयता, मिन्टो—मार्ले सुधार, प्रथम विश्वयुद्ध, कुछ वर्ग को पृथक् निर्वाचनाधिकार देना, मुस्लिम लीग की स्थापना, रूस की क्राति, जलियॉवाला बाग की दु.खद घटना, खिलाफ़त आंदोलन, तिलक का यह उद्घोष कि 'स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है', स्वदेशी के प्रयोग और विदेशी के बहिष्कार की नीति आदि घटनाओ, कार्यक्रमो एवं मॉगों ने भारतीय जन-मानस में राष्ट्रीयता की चेतना को सचरित किया । इन घटनाओं के फलस्वरूप जहॉ देश में राष्ट्रीय भावना प्रबल हुई, वही साम्प्रदायिक उत्तेजनाओं का भी ज्वार उठा ।

द्विवेदीयुगीन काव्य मे राष्ट्रीयता का स्वर एक प्रमुख प्रवृत्ति बन गयी । बलिदान, संघर्ष, प्रतिशोध, क्षोभ, आत्म—सम्मान, अतीत का

गौरवगान, वीरता, साहस, त्याग, स्वदेशी प्रेम, विदेशी वस्तुओ का बहिष्कार आदि द्वारा जन–सामान्य मे जागृति लाना ही काव्य के विषय बने । डॉ० के०के० शर्मा ने 'हिन्दी साहित्य के राष्ट्रीय काव्य' में राष्ट्रीयता की भावनाओ का निम्नानुसार विभाजन किया है[1] –

1 जन्मभूमि के प्रति प्रेम 2 स्वर्णिम अतीत का चित्रण 3 प्रकृति प्रेम 4 विदेशी शासन की निन्दा 5. जातीयता के उद्‌गार 6. वर्तमान दशा पर क्षोभ 7 सामाजिक सुधार–भविष्य निर्माण 8 वीर पुरूषों या नेताओं की स्तुति 9 पीड़ित जनता और कृषको का चित्रण 10. भाषा–प्रेम । द्विवेदीयुगीन काव्य मे सांस्कृतिक और राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति प्रखर रूप में हुई है । आलोच्य युगीन कवियो ने अतीत का गान, वर्तमान दशा पर क्षोभ, राष्ट्रीय एकता, त्याग, बलिदान, स्वदेशी प्रेम, जागरण गीत आदि को अपना काव्य विषय बनाकर जनमानस मे राष्ट्रीय भाव धारा को संचरित किया । डॉ० रामसकलराय शर्मा ने द्विवेदी युगीन राष्ट्रीयता के सम्बन्ध मे लिखा है कि– "राष्ट्रीय काव्य–धारा की एक विशेषता उसका सास्कृतिक पक्ष है । साम्प्रदायिक सामजस्य सदिच्छा तथा मेल–मिलाप का पोषण इस युग में अनेक कवियों ने बड़े मनोयोग से किया । इस युग की कविता की एक विशेषता राजनीतिक चेतना भी रही जिसके फलस्वरूप स्वदेशी की लहर राष्ट्रीय एकता और सर्वतोमुखी जागरण का मत्र फूँकना ही इन कवियो का कार्य था ।"[2]

इस प्रकार द्विवेदी–युग के कवि देशवासियों को एकता के सूत्र मे बॉधने का प्रयत्न करते हैं । उनके काव्य के नायक–नायिकाये देश की स्वतन्त्रता के लिए हँसते–हँसते आत्मबलि देने को प्रस्तुत दिखाई देते हैं। प्राय. सभी कवियों ने मातृभूमि के प्रति ह्रदय का सच्चा स्नेह व्यक्त

---

1. डॉ० के०के० शर्मा : हिन्दी साहित्य के राष्ट्रीय काव्य, पृष्ठ 19

2 डॉ० रामसकलराय शर्मा . द्विवेदी युग का हिन्दी काव्य, पृष्ठ 356

किया ।

1. एकता की भावना :-

भारत मे ॲंग्रेजी सत्ता का लम्बी अवधि तक बना रहना भारत की पारस्परिक फूट का परिणाम था । ॲंग्रेजो ने बडी चतुराई से भारत को विभिन्न वर्गो, जातियो, सम्प्रदायो मे विभक्त करके साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र निर्मित किये, इस प्रकार देश के विभिन्न वर्गों मे, विशेष रूप से हिन्दू और मुसलमानो मे साम्प्रदायिक भावो को उत्तेजित करके उनमें परस्पर कटुता का भाव उत्पन्न किया । भारतीय समाज जो पहले से ही अनेक सामाजिक बुराइयों के फलस्वरूप विखण्डित था, ॲंग्रेज़ों ने उसमें साम्प्रदायिकता, वर्ग–भेद आदि के द्वारा उसे और विषाक्त बना दिया । भारतीय मनीषी एवं राष्ट्रवादी, ॲंग्रेज़ो की इस चाल को अच्छी तरह समझते थे, फिर भी साम्प्रदायिकता का यह जहर दिनोदिन फैलता ही गया । द्विवेदी युगीन कवि युगीन चेतना को पूरी तरह से आत्मसात किये हुए थे, अतः उन्होने अपनी रचनाओ मे सामाजिक, साम्प्रदायिक, भाषिक आदि की एकता को अपना काव्य–विषय बना कर देश की एकता का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास किया । पं० नाथूराम 'शर्मा' ने देश मे फैले हुए सम्प्रदायवाद, गुरूडम और धूर्तता पर व्यग्य करते हुए लिखा है–

> मत, पन्थ असख्य असार बने
> गुरू लोलुप लंठ लबार बने
> शठ सिद्ध–कुधी कविराज बने
> अनमेल अनेक समाज बने [1]

कवि 'शकर' ने दीनो और दरिद्रों की दशा का यथार्थ एवं प्रगतिशील चित्रण करके देशवासियों का ध्यान इनकी ओर खींचना चाहा है–

---

1. नाथूराम शर्मा 'शकर' : शकर–सर्वस्व(सपादक हरीशकर शर्मा), पृष्ठ 91

कस पेट अकिंचन सोय रहे, बिन भोजन बालक रोय रहे,

चिथडे तक भी न रहे तन पै, धिक धूल पडे इस जीवन पै ।[1]

प० रूपनारायण पाण्डेय ने यह कह कर कि— "राम, कृष्ण, अर्जुन विक्रम भी तुम सब मे ही हैं प्रच्छन्न"[2] द्वारा देशवासियो मे शौर्य, पराक्रम, नैतिकता आदि की भावना को उद्भूत करना चाहा है । कवि ने भारतमाता का भव्य चित्र प्रस्तुत करके एकता की भावना का मार्ग प्रशस्त हुए लिखा है—

जैन बौद्ध पारसी यहूदी मुसलमान सिख—ईसाई ।

कोटि कंठ से मिलकर कह दो "हम सब हैं भाई—भाई" ।।

पुण्यभूमि है, स्वर्णभूमि है, जन्मभूमि है देश यही ।

इससे बढ़कर या ऐसी ही दुनिया भर मे जगह नही ।।[3]

श्रीकात त्रिपाठी ने 'प्यारा हिन्दुस्तान हमारा' गीत मे पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष का त्याग करके एकता के सूत्र मे बँधने का संदेश दिया है—

इससे स्वदेश भक्तो, अब द्वेष, द्रोह छोडो,

तव एकता प्रिया है, नाता उसी से जोड़ो ।[4]

मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत—भारती' राष्ट्रीय जागरण का काव्य है। कवि राष्ट्रीय एकता के लिए आह्वान करता है—

है ज्ञात क्या तुमको नही, तुम लोग तीस करोड हो,

यदि ऐक्य हो तो फिर तुम्हारा कौन, जग मे जोड हो?

उत्साह—जल से सींचकर हित का अखाडा गोड दो,

गर्दन अमित्र अधःपतन की ताल ठोक मरोड़ दो ।[5]

---

1 नाथूराम शर्मा 'शकर' . शंकर सर्वस्व (संपादक हरीशंकर शर्मा), पृष्ठ 91

2 रूपनारायण पाण्डेय पराग, पृष्ठ 21

3 रूपनारायण पाण्डेय पराग, पृष्ठ 25

4 श्रीकात त्रिपाठी साप्ताहिक 'प्रताप', 11 अक्टूबर, 1920, पृष्ठ 13

5 मैथिलीशरण गुप्त भारत—भारती, पृष्ठ 166

आगे कवि ने एकता के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए देशवासियो को यह अमर सदेश दिया है—

है कार्य्य ऐसा कौन—सा साधे न जिसको एकता?
देती नहीं अद्भुत अलौकिक शक्ति किसको एकता?
दो एक एकादश हुए, किसने नहीं देखे सुने?
हॉ, शून्य के भी योग से हैं अक होते दस गुने ।[1]

कवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत' के 'प्रथम सर्ग' में देशवासियो को यह बताना चाहा है कि राष्ट्र की शक्ति पारस्परिक एकता मे ही सन्निहित होती है, राष्ट्र के विखण्डन से तो राष्ट्र की शक्ति का क्षरण होता है । जहॉ एक न होकर अनेक राज्य होते हैं वहॉ राष्ट्र का बल बिखर जाता है। तारो से अधकार नहीं मिटता, एकता के सूर्य से मिटता है ।[2] आगे कवि 'पचम सर्ग' में लिखता है—

सुनो, मिलन ही महातीर्थ ससार में,
पृथ्वी परिणत यहीं एक परिवार में ।
एक तीसरे हुए मिले जब दो जहॉ,
गगा—यमुना बनी त्रिवेणी ज्यों यहॉं ।
त्याग और अनुराग चाहिए बस, यही ।[3]

आलोच्य युग मे साम्प्रदायिकता का विष तेजी से फैला, जिसके कारण राष्ट्र की एकता काफी प्रभावित हुई । आलोच्य युगीन कवियों ने साम्प्रदायिक कटुता को दूर करने के लिए मानवता को हिन्दुत्व और इस्लाम से ऊँचा बताकर मानव एकीकरण के लिए अनेक ओजपूर्ण कविताओं का सृजन किया

---

1 मैथिलीशरण गुप्त . भारत—भारती , पृष्ठ 167
2. वही . साकेत, पृष्ठ 16
3. वही . वही, पृष्ठ 74

मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत—भारती' मे लिखा है—

आओ, मिलें सब देश—बान्धव हार बनकर देश के,
साधक बने सब प्रेम से सुख—शांतिमय उद्देश के।
क्या साम्प्रदायिक भेद से है ऐक्य मिट सकता अहो !
बनती नही क्या एक माला विविध सुमनो की कहो?[1]

मैथिलीशरण गुप्त का मानना है कि स्वदेश—प्रेम का सच्चा भाव उसके ही अन्तर्मन में है, जो दूसरो को अपना मानता है । उसके लिए जाति, धर्म, सम्प्रदाय सभी निरर्थक है । 'मगलघट' कृति मे मदिर, मस्जिद, गिरजा एव गुरूद्वारा को छोडकर भारतमाता की ऐसे पावन मदिर की कल्पना की गयी है, जहॉ प्रत्येक धर्म का अनुयायी समतापूर्वक रह सकता है ।[2] 'साकेत' के 'प्रथम सर्ग' मे कवि का यह कथन कि "एक तरू के विविध सुमनो—से खिले, पौरजन रहते परस्पर हैं मिले ।"[3] कवि ने यहॉ मात्र हिन्दुओ के सग्रथन की ओर ही सकेत नही किया है, बल्कि देश मे रहने वाले मुसलमानो तथा हिन्दुओ को परस्पर एक दूसरे से सग्रथित होने की प्रेरणा भी दी है।

हरिऔधजी ने देश के सभी धर्मावलम्बियों को समझाया है कि देश का कल्याण देश मे बसने वाली समस्त जातियो की एकता में है । अत हिन्दू—मुसलमान और अन्य जितने भी मतावलम्बी हैं, वे अपने—अपने धर्म को माने, किन्तु पारस्परिक स्नेह एवं भाईचारा को भी बनाये रखे, क्योकि हिन्दू, मुसलमान, जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि सभी एक गगन के विभिन्न तारों के समान हैं ।[4] आगे कवि ने इस बात का आग्रह किया है कि पारस्परिक

---

1 मैथिलीशरण गुप्त : भारत—भारती, पृष्ठ 167

2 वही . मगल घट, पृष्ठ 263

3. वही · साकेत, पृष्ठ 15

4. अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' . पद्य—प्रसून, पृष्ठ 158

झगडो को छोडकर सभी मतावलम्बियो को प्रेम–भाव से रहना चाहिए–

सारे मत के रगडो झगडो को छोडें ।

नाता अपना सब मत वालो से जोडें ।[1]

कवि मैथिलीशरण को भाषिक–एकता के द्वारा राष्ट्रीय एकता की सिद्धि सुलभ जान पडती है । कवि भाषा विषयक अपने चितन को इस प्रकार से व्यक्त किया है –

ज्यो–ज्यों यहाँ पर एक भाषा वृद्धि पाती जायगी ।

त्यो–त्यो अलौकिक एकता सब मे समाती जायगी ।

कट जायगी जड भिन्नता की विज्ञता बढ जायगी ।

श्री भारती–जन–जाति–उन्नति–शिखर पर चढ जायगी ।[2]

द्विवेदी–युग के कवियो ने हिन्दी भाषा के सशोधन तथा उसमे सत्साहित्य के निर्माण पर अत्यधिक बल दिया है । गिरिधर शर्मा की 'हिन्दी प्रेमियो की उत्तेजना'[3] कविता मे हिन्दी भाषा के सुधार पर बल दिया गया है । हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने के सम्बन्ध में लोचन प्रसाद पाण्डेय का तर्क दृष्ट्व्य है–

वर वचन बिना है कार्य होता न कोई ।

वर वचन बिना है आर्य होता न कोई ।।

वचन रहित पाता देश है क्लेश भारी ।

बन–बन अब हिन्दी राष्ट्र भाषा हमारी ।।[4]

उपर्युक्त विवेचन के अत में निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि द्विवेदी युगीन कवियो ने युगीन आवश्यकता के अनुरूप अपने काव्य मे एकता

---

1. अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध पद्य प्रसून, पृष्ठ 161

2 मैथिलीशरण गुप्त पद्य प्रबन्ध (प्र० भाग), पृष्ठ 64

3 गिरिधर शर्मा सरस्वती, अक्टूबर, 1910, पृष्ठ 476

4. प० लोचनप्रसाद पाण्डेय . अनुराग–रत्न, पृष्ठ 281

की भावना को अभिव्यक्ति दी । उस समय देश की एकता को छिन्न–भिन्न करने की साजिश की गयी और उसके फलस्वरूप साम्प्रदायिक, भाषिक आदि दगे हुए, कवियो ने उसे अच्छी तरह से समझा एवं उसके समाहार के लिए एकता का मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास किया । उन्होने यह बताया कि मानव–धर्म सबसे बडा धर्म है, इसलिए इन व्यर्थ के वाद–विवादो का कोई अर्थ नही है ।

(2) जन जागरण : नरम पंथी एवं गरमपंथी

द्विवेदी युगीन कवियो ने बीसवी शताब्दी के राजनीतिक घटनाक्रम को आत्मसात् करते हुए उसे काव्यात्मक अभिव्यक्ति दी। भारतेन्दु युगीन कवियो की भॉति द्विवेदी युगीन कवियो ने भी ब्रिटिश शासन की प्रशसा की है। इसका कारण नरमपथी राष्ट्रवादियो का ब्रिटिश शासन के प्रति आस्थावान होना था । कालचक्र के प्रवाह में नरमपथी राष्ट्रवादियो का ब्रिटिश सत्ता से मोह–भग होने लगा, जिसके फलस्वरूप उनकी आस्था, अनास्था मे बदलने लगी । गरमपंथी राष्ट्रवादियो ने ब्रिटिश सरकार से सीधे संघर्ष का मार्ग अपनाया । इन राजनीतिक घटनाओं के फलस्वरूप द्विवेदी युगीन कवियो का तेवर भी ब्रिटिश सरकार के प्रति असहयोगात्मक होने लगा । डॉ० उदयभानु सिंह ने द्विवेदीजी की राष्ट्रीय भावना के चार रूपों का निरूपण किया है[1]—(1) शासको के गुणगान (2) देश की वर्तमान औद्योगिक स्थिति के प्रति क्षोभ (3) भारत का गौरवगान (भारत के अतीत–गौरव का गान, और उसमे देवत्व की प्रतिष्ठा, रमणीय प्राकृतिक दृश्यो का रूपाकन, स्वदेश तथा स्वदेशी वस्तुओ के प्रति प्रेम (4) स्वतन्त्रता की आकाक्षा ।" द्विवेदी युगीन कवियो मे कमोवेश राष्ट्रीयता की यही प्रवृत्ति मिलती है ।

द्विवेदी युगीन कवियो ने ब्रिटिश शासन की प्रशसा में भी काव्य

---

1 डॉ० उदयभानु सिह महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग, पृष्ठ 112

रचनाएँ की हैं । मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत—भारती' मे ब्रिटिश राज्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है—

सचमुच ब्रिटिश साम्राज्य ने हमको बहुत कुछ है दिया,
विज्ञान का वैभव दिखाया, समय से परिचित किया ।
उससे हमारी कीर्ति का भी हो रहा उपकार है,
बहु पूर्व चिह्नो का हुआ वा हो रहा उद्धार है ।[1]

जिस दिन उत्तर प्रदेश मे सरकारी आदेश द्वारा न्यायालयों मे उर्दू के साथ हिन्दी को भी स्थान दिया गया, उस अवसर पर महावीरप्रसाद द्विवेदी ने अपार प्रसन्नता प्रकट करते हुए मैकडॉनल्ड के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करते हुए लिखा—

हे न्यायधाम ! गुण गौरव—धर्म—काम,
सत्शीलधाम ! म्यकडानल पूर्ण काम !
सारी प्रजा पुलक पूरित गात धारी,
उन्मत्तवत् कहहिं ,'जै जय जै' तिहारी ।[2]

परन्तु जहाँ इन अँग्रेज़ो ने भारत को नीचा दिखाया है, वहीं उन्होंने अँग्रेज़ों की निन्दा भी की है । स्वदेशी वस्त्र के प्रयोग पर बल देते हुए द्विवेदीजी ने लिखा है—

अजब हालत हमारी है विधाता
* * *
विदेशी वस्त्र क्यों हम ले रहे हैं ?
वृथा धन देश का क्यो दे रहे हैं ?
* * *
हजारों लोग भूखों मर रहे हैं ।

---

1. मैथिलीशरण गुप्त : भारती—भारती, पृष्ठ 91
2. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी : द्विवेदी काव्यमाला (संपा० देवीदत्त शुक्ल), पृष्ठ 271

इधर तू मजु मलमल ढूँढता है ।

*　　*　　*

स्वदेशी वस्त्र को स्वीकार कीजै । [1]

इस प्रकार उपर्युक्त पक्तियो मे रचनाकार ने विदेशी शासन से उत्पन्न समस्याओ पर प्रकाश डालकर देशवासियो के समक्ष ब्रिटिश सरकार के औपनिवेशिक चरित्र को उजागर किया है । राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' ने स्वदेशी वस्त्र के व्यवहार को राष्ट्रीय अस्मिता से जोड़कर देखा है । कवि ने लिखा है —

गाढा झीना जो मिलै, उसकी ही पोशाक,
की जै अंगीकार, तो रहै देश की नाक ।
रहै देश की नाक स्वदेशी कपड़े पहने,
है, ऐसे ही लोग, देश के सच्चे गहने ।[2]

'पूर्णजी' के सम्बन्ध मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "देश मे चलने वाले आदोलनो (जैसे स्वदेशी) को भी उनकी (पूर्ण) वाणी प्रतिध्वनित करती थी ।"[3] लोचनप्रसाद पाण्डेय की 'जागहु भारत', 'विदेशी चीनी का त्याग,' 'देशोद्धार सोपान' आदि कविताओं में स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर बल दिया गया है । कवि का यह मानना है कि विदेशी वस्तुओ के प्रयोग से जहाँ देश का धन नष्ट होता है, वही अपयश का पात्र भी बनना पडता है । मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत—भारती' सास्कृतिक अस्मिता की पहचान कराने वाली रचना है, कवि ने देशवासियो की स्वदेशी से घृणा करने की प्रवृत्ति पर दुःख प्रकट किया है ।[4] मैथिलीशरण गुप्त ने देश के व्यापार वाणिज्य की हीन—दशा और

---

1 आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी　द्विवेदी काव्यमाला, पृष्ठ 368-370

2. राय देवीप्रसाद 'पूर्ण'　पूर्णसग्रह, पृष्ठ 214

3. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल . हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 585

4 मैथिलीशरण गुप्त . भारत—भारती पृष्ठ 113

उसके परिणामस्वरूप देश की दुर्दशा का वर्णन करते हुए देशवास्यियो का ध्यान आकर्षित किया है —

आती विदशों से यहॉं सब वस्तुएँ व्यवहार की,
धन—धान्य जाता है यहॉं से, यह दशा व्यापार की ।
कैसे न फैले दीनता, कैसै न हम भूखो मरे,
ऐसी दशा मे देश की भगवान् ही रक्षा करे ।[1]

उपर्युक्त पक्तियॉं दादाभाई नौरोजी द्वारा प्रस्तुत किये गये 'धन निकासी का सिद्धान्त' की याद को ताजा कर देती है । इस प्रकार कवि मैथिलीशरण गुप्त ने ॲंग्रेजी शासन के औपनिवेशिक चरित्र को जनता के सामने उजागर कर के देश के बारे मे सोचने की प्रेरणा दी है ।

द्विवेदी युगीन काव्य मे उग्र राष्ट्रवादिता का यथेष्ट समावेश हुआ है । इन कवियो ने जन-मानस को देश की स्वतन्त्रता और समृद्धि के लिए आत्म—बलिदान करने की प्रेरणा दी है । इस सम्बन्ध मे डॉ० केसरीनारायण शुक्ल ने लिखा है— "एकता और आशापूर्ण उत्साह द्विवेदी--युग की देश—भक्ति की कविता की सबसे महत्त्वपूर्ण देन है । देशवासी अब स्वतन्त्रता के लिए हॅंसते—हॅंसते आत्म—बलिदान के लिए तैयार थे ।"2 कवि रामचरित उपाध्याय ने देश—प्रेम का उद्‌गार प्रकट करते हुए लिखा है—

कभी मत भूलें अपना देश,
कभी मत छूटे अपना देश ।3

राष्ट्रीय भावना का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है— मातृभूमि का दैवीकरण । प्राचीन काल में मनीषियों ने 'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' कहकर मातृभूमि

---

1. मैथिलीशरण गुप्त . भारत—भारती, पृष्ठ 114
2 डॉ० केसरीनारायण शुक्ल · आधुनिक काव्यधारा, पृष्ठ 114
3 रामचरति उपाध्याय राष्ट्रभारती, पृष्ठ 1

को गौरवान्वित किया है । द्विवेदीयुगीन कवियो ने भारत देश को पुण्य—भूमि, स्वर्ग से भी बढकर तथा तीनो लोको मे न्यारी मानकर उसके प्रति अपने—अपने उद्गार प्रकट किये है । लोचनप्रसाद पाण्डेय ने जन्मभूमि को स्वर्ग से भी प्यारा माना है—

जय जय मम् जन्मभूमि स्वरगहूँ ते प्यारी ।
शोभित सुन्दर सरूप अद्‌भुत अनूप ।
दमकत जिमि जातरूप तीन लोक न्यारी ।।[1]

ऐसी जन्म—भूमि के प्रति देश के प्रत्येक व्यक्ति का श्रद्धान्वित होना स्वाभाविक है । 'साकेत' मे अयोध्या से वन को विदा होते समय राम, जन्मभूमि के प्रति अनुराग प्रकट करते हुए, द्विवेदी युगीन देशभक्ति की भावना को इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

जन्मभूमि, ले प्रणति और प्रस्थान दे;
हमको गौरव, गर्व तथा निज मान दे ।
तेरे कीर्ति—स्तम्भ, सौध, मदिर यथा—
रहे हमारे शीर्ष समुन्नत सर्वथा ।[2]

इसके विपरीत जल—समीर, अन्न तथा नाना अन्य पदार्थो द्वारा पालन—पोषण करने वाली जन्मभूमि के प्रति उपेक्षा करने वालों को कवियो ने अधम, पापी, कपूत, कृतघ्न तथा मृतक—समान कहकर उनकी भर्त्सना की है । इस सन्दर्भ मे गोपालशरण सिंह की 'मातृभूमि'[3] एवं 'भारतमाता'[4], रामचरित उपाध्याय की 'स्वर्ग मे नरक'[5] तथा लोचनप्रसाद पाण्डेय की 'मातृभूमि'[6] कविताएँ उल्लेखनीय

---

1 प० लोचनप्रसाद पाण्डेय . पद्य—पुष्पाजलि, पृष्ठ 3

2 मैथिलीशरण गुप्त . साकेत, पृष्ठ 62-63

3 गोपालशरण सिह . सरस्वती, मई, 1913 ई०, पृष्ठ 283

4 वही वही फरवरी, 1916, पृष्ठ 283

5. रामचरित उपाध्याय सरस्वती, जून, 1916, पृष्ठ 401-402

6 लोचनप्रसाद पाण्डेय . सरस्वती, फरवरी, 1908 ई०, पृष्ठ 80

हैं। कवि सियारामशरण गुप्त की यह रचना दृष्ट्व्य है –

आशीर्वाद दीजिए हे माँ ! करने को स्वदेश का त्राण ।

विचलित होऊँ नहीं युद्ध से निकल जायँ चाहे ये प्राण ।।1

माखनलाल चतुर्वेदी की कविता में आत्मोत्सर्ग करने की कामना इस प्रकार व्यंजित हुई है–

चाह नही मै सुरबाला के गहनो मे गूँथा जाऊँ ।

चाह नहीं प्रेमी माला में विंध प्यारी को ललचाऊँ

चाह नही सम्राटो के शव पर हे हरि ! डाला जाऊँ

चाह नही देवो के सिर पर चढ़ूँ, भाग्य पर इठलाऊँ

मुझे तोड लेना वनमाली, उस पथ पर देना तुम फेक

मातृभूमि पर शीश चढ़ाने जिस पथ जाये वीर अनेक ।2

द्विवेदी युगीन काव्य की यह बलिदानी राष्ट्रीय काव्यधारा स्वतन्त्रता के लिए बेचैन जन–मानस की एक अनिवार्य और स्वनिर्मित स्थिति थी । द्विवेदी–युग के प्राय. सभी कवियो ने इस राष्ट्रीय ओज को मुखरित किया है । देश के लिए बलिदान होना, शहीद होना, फ़ाँसी पर झूल जाना, अन्यायी शासन का विरोध करना आदि उस समय की राष्ट्रीय आवश्यकता थी ।

द्विवेदी युगीन कवियों ने जन–मानस को ब्रिटिश सरकार के क्रूर एव अन्यायी शासन के विरूद्ध जागृत करने के लिए जागरण गीत लिखे – पं० नाथूराम शर्मा 'शकर' ने जन–मानस को स्वराज्य के लिए बलिदान करने का आह्वान किया है–

लो स्वराज्य स्वातत्र्य को दो जीवन बलिदान ।

*   *   *

---

1 सियारामशरण गुप्त   सरस्वती, जुलाई, 1913 ई०, पृष्ठ 383

2. माखनलाल चतुर्वेदी   साप्ताहिक प्रताप, 10 अप्रैल, 1922 ई०, पृष्ठ 8

देश—भक्त वीरो, मरने से नेक नही डरना होगा ।

प्राणो का बलिदान देश की बेदी पर करना होगा ।

*   *   *

कुटिला कूटनीति के आगे हेकड हो अडना होगा ।

शकर यों भारत माता का ह्रास—त्रास हरना होगा ।[1]

रूपनारायण पाण्डेय ने जेलो को "वह हमे तो तीर्थ काशी से बडा" कहा है और जेल जाने को तीर्थयात्रा की सज्ञा दी । कवि ने लिखा है—

देश सेवा मे हमारा ध्यान हो ।

*   *   *

एक बदेमातरम् का गान हो,

*   *   *

जेल जीवन आज जीवन मुक्ति है ।[2]

मैथिलीशरण गुप्त की 'भारती—भारती' तो राष्ट्रीय जागरण की मूल आधारशिला ही थी । "हम चाहते तो एक होकर क्या न कर सकते भला ?"[3] का मंत्र देने वाली इस कृति की राष्ट्रीय जागरण मे अहम् भूमिका थी । कवि देशवासियों को उद्‌बोधित करता हुआ कहता है—

क्या हम जडों से भी जगत् में हैं गये बीते नहीं ?

हे भाइयो ! इस भॉति तो तुम थे कभी जीते नही ।[4]

हरिऔधजी 'प्रियप्रवास' में लिखते हैं —

बढ़ो, करो वीर, स्व—जाति का भला ।

---

1. नाथूराम शर्मा   शकर—सर्वस्व (सपादक हरिशकर शर्मा), पृष्ठ 248

2 रूपनारायण पाण्डेय   पराग, पृष्ठ 61

3 मैथिलीशरण गुप्त   भारत—भारती, पृष्ठ 88

4. वही   वही,   पृष्ठ 169

अपार दोनो विध लाभ है हमे ।[1]

श्रीधर पाठक ने देशवासियो का उद्‌बोधन करते हुए लिखा है —

वदनीय वह देश जहॉ के देशी निज अभिमानी हो ।

बान्धवता मे बॅधे, परस्पर परता के अज्ञानी हो ।

निन्दनीय वह देश जहॉ के देशी निज अज्ञानी हो

सब प्रकार परतत्र परायी प्रभुता के अभिमानी हो ।[2]

सत्यनारायण पाण्डेय ने सत्याग्रह के सन्दर्भ मे जन—सामान्य की भावना को इस प्रकार अभिव्यक्ति दी है—

कोने—कोने मे सत्याग्रह का जय शख बजाने दो ।

विपदाओ के गिरि—श्रृंगो को ठोकर से ठुकराने दो ।

स्वतन्त्रता के युद्ध स्थल मे मरते है मर जाने दो

जन्म भूमि के श्री चरणो मे जीवन—पुष्प चढ़ाने दो [3]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि द्विवेदीयुगीन कवियो ने राष्ट्र की आवश्यकता के अनुरूप अपनी रचनाओ मे राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति कर तथा जन-मानस मे राष्ट्रीय चेतना का सचार करके उन्हें राष्ट्रीय आदोलन की मुख्य धारा में लाकर खडा कर दिया । इन कवियो ने राष्ट्रीय जागरण का जो कार्य किया, उसके फलस्वरूप भारतीय जनमानस से भय तिरोहित हो गया और उनमे राष्ट्र के प्रति सब कुछ न्यौछावर करने की उद्‌दाम लालसा जागृत हुई।

(3.) राष्ट्र और लोक मंगल :-

उन्नीसवी शताब्दी के धार्मिक एव सामाजिक आदोलनो के प्रयास से धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में व्याप्त विसगतियों, विषमताओ का

---

1. अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' : प्रियप्रवास 117

2. श्रीधर पाठक भारतगीत, पृष्ठ 25

3 सत्यनारायण पाण्डेय . साप्ताहिक प्रताप, 5 नवम्बर, 1923 ई०, पृष्ठ 8

परिष्कार एव परिमार्जन हुआ, जिसके फलस्वरूप सास्कृतिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ । इस सास्कृतिक राष्ट्रीयता की गति एवं दिशा के सम्बन्ध में डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है – "पुनर्जागरण ने अध्यात्म को लोक–सेवा से जोड़ा और फिर लोक सेवा को राष्ट्रीयता से ।"[1] बीसवीं शताब्दी के पूर्वांश तक अनेक राजनीतिक सगठनो के उद्भव के परिणामस्वरूप राजनीतिक राष्ट्रीयता का जन्म हुआ । "डॉ० सुधीन्द्र ने अपने प्रबन्ध 'हिन्दी कविता मे युगान्तर' में राष्ट्रीय कविता के अन्तर्गत भौगोलिक राजनीतिक और सांस्कृतिक इकाइयों के समुच्चय को स्वीकार किया है । उन्होंने इन इकाइयों के समुच्चय को राष्ट्र कहा है ।"[2] द्विवेदी युगीन काव्य में वर्णित राष्ट्रीयता में सांस्कृतिक एव राजनीतिक चेतना को अभिव्यक्ति मिली है । इसीलिए द्विवेदी युगीन कवियो ने अपनी रचनाओं मे आंतरिक तथा वाह्य; दोनों पक्षों के परिष्कार एवं परिमार्जन करने का आह्वान किया और स्वाधीनता सग्राम में आत्मोत्सर्ग करने की प्रेरणा दी। इस सम्बन्ध मे डॉ० नगेन्द्र ने लिखा है कि –"इस युग के राष्ट्रीय–सांस्कृतिक काव्य मे दो भावनाएँ पूरी शक्ति के साथ व्यक्त हुईं – एक ओर तो कवियों ने भारत की आन्तरिक विसंगतियों एवं विषमताओं को दूर करने के लिए देश का आह्वान किया और दूसरी ओर जनता को विदेशी शासन से मुक्ति पाने के लिए स्वाधीनता–संग्राम में कूद पड़ने की प्रेरणा दी ।"[3] इस प्रकार द्विवेदी युगीन कवियों ने राष्ट्र के अपकर्ष, उसकी हीन–दशा, क्षरित शौर्य, स्खलित कला–कौशल एवं आर्थिक विपन्नता आदि पर क्षोभ प्रकट किया है और राष्ट्र को पुनः अपने प्राचीन गौरव को प्राप्त करने के लिए स्वाधीनता–संग्राम में बलिदान के लिए आह्वान किया, क्योंकि उन्हें पूर्णविश्वास

1.डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी : हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास,पृष्ठ 103

2. डॉ० पूनमचंद तिवारी . द्विवेदी युगीन काव्य, पृष्ठ 158

3. सपादक डॉ० नगेन्द्र . हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 541

था कि स्वाधीन भारत मे ही एकता सम्भव है । यहॉ यह उल्लेखनीय है कि सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्रो मे हुए परिष्कार एवं परिमार्जन से उत्पन्न चेतना को उन्नीसवीं सदी का भारतीय जन–मानस एक सीमा तक स्वीकार कर लिया था, ऐसी स्थिति मे राष्ट्र की मुक्ति का प्रश्न अहम् मुद्दा बना । यहॉ यह विचारणीय है कि बीसवीं शताब्दी में सामाजिक भेद–भाव एव विसंगतियों को दूर करने का प्रयास भी राष्ट्रवादियों द्वारा जारी रहा, जिसकी अभिव्यक्ति कवियो ने अपनी रचनाओ मे की है।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 'जन्मभूमि' कविता मे लिखते है–

जन्मभूमि की बलिहारी है,
यह सुर पुर से भी प्यारी है।[1]

शम्भूदयाल श्रीवास्तव ने स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में अपना मत इस प्रकार व्यक्त किया है–

धन्य–धन्य हे । पावन जननी, धन्य–धन्य भारत माता ।
मरणासन्न समय भी जिसका पुत्र यही जपता जाता ।
जब तक प्रिये स्वतंत्रते ! तन मे लगती है तव सुखद समीर ।
तब तक रण से तिल भर भी न हटेंगे, हम हैं भारत वीर ।[2]

सियारामशरण गुप्त ने भारतीयता पर गर्व प्रकट करते हुए लिखा है–

इस बात का अभिमान हमको सर्वदा सविशेष है,
हैं भारतीय हम, भारत हमारा देश है ।[3]

देश की गुलामी, सामाजिक कुरीतियों एव रूढियों और प्रत्येक क्षेत्र मे व्यापत

---

1. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी : द्विवेदी काव्यमाला, पृष्ठ 368

2. शम्भूदयाल श्रीवास्तव : 'स्वतन्त्रता', साप्ताहिक प्रताप, 10 दिसम्बर, 1917, ई०, पृष्ठ 6

3. सियारामशरण गुप्त : हमारा देश, प्रभा, अक्टूबर, 1913 ई०, पृष्ठ 357

हीनता, गरीबी तथा अतिचारो के कारण जन-सामान्य का जीवन अस्त–व्यस्त था । द्विवेदी युगीन काव्य मे वर्तमान राष्ट्रीय जीवन के प्रति क्षोभ एव करूणा की अभिव्यक्ति हुई है । इस प्रकार लोक की पीडा, बाधा, अन्याय एव अत्याचार के प्रति आलोच्य युगीन कवियो की करूण अनुभूति व्यक्त हुई है, साथ ही उनकी छटपटाहट, क्रोध, व्यग्य आदि मे भी राष्ट्र के कल्याण की भावना की अभिव्यक्ति हुई है ।

मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत–भारती' का 'अतीत खण्ड' भारत के अतीत गौरव-गान का श्रेष्ठतम् अश है । कवि ने जहाँ अतीत का यशोगान करके देशवासियो मे आत्म–गौरव की भावना को जागृत किया, वहीं वर्तमान खण्ड' मे देश की वर्तमान विसगतियो, एव विषमताओ पर भी अपना क्षोभ प्रकट किया है । कवि ने विदेशी वस्तुओ के प्रति आकर्षण पर क्षोभ प्रकट करते हुए लिखा है–

> यदि हम विदेशी माल से मुँह मोड़ सकते हैं नही–
> तो हाय ! उसका मोह भी क्या छोड सकते हैं नही ?
> क्या बन्धुओ के हित तनिक भी त्याग कर सकते नही ?
> निज देश पर क्या अल्प भी अनुराग कर सकते नही ?[1]

'भारत दुर्भिक्ष' रचना मे द्विवेदीजी ने देश की दारूण दशा का चित्रण करते हुए लिखा है–

> भरत खड के धनिक धुरन्धर तुम्हे न कोउ जगावै,
> देखत दारूण दशा देश की निशि निद्रा किमि आवै ।[2]

प० नाथूराम शर्मा 'शकर' ने देश की विपन्नता और उसकी दारूण दशा का चित्रण किया है । उन्होने "दिया जले किस भॉति तेल को दाम नही

---

1 मैथिलीशरण गुप्त . भारत–भारती, पृष्ठ 120

2 आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी . द्विवेदी काव्यमाला, पृष्ठ 176

है",[1] "परदेशी माल आ रहे हैं"[2] "कगाली भी जला रही है, महँगी बरछी चला रही है।"[3] आदि रचनाओ मे उन्होने राष्ट्रीय जीवन की विसगतियां एव विषमताओ का कारूणिक चित्रण किया है । लोक मगल के सन्दर्भ मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि "धर्म और मगल की वह ज्योति अधर्म और अमगल की घटा को फाडती हुई फटती है । इससे कवि हमारे सामने असौन्दर्य, अमगल, अत्याचार, क्लेश इत्यादि भी रखता है, रोष हाहाकार और ध्वस का दृश्य भी लाता है । ..... यदि किसी ओर उन्मुख ज्वलन्त रोष है तो उसके और सब ओर करूण दृष्टि फैली दिखाई पडती है । यदि किसी ओर ध्वस और हाहाकार है तो और सब ओर उसका सहगामी रक्षा और कल्याण है ।"[4] इस तरह कवियो ने अपने काव्य मे लोक--मगल का विधान किया है ।

द्विवेदी युगीन कवियों ने जन-सामान्य को स्वतन्त्रता सग्राम मे आत्मोत्सर्ग करने की प्रेरणा दी । देश प्रेम की भावना राष्ट्र के मगल से सपृक्त है, क्योकि देश की वर्तमान दयनीय दशा मे सुधार स्वाधीन भारत मे ही सम्भव था । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लोक मंगल के सम्बन्ध मे लिखा है कि "भावो की छानबीन करने पर मगल का विधान करने वाले दो भाव ठहरते हैं— करूणा और प्रेम । करूणा की गति रक्षा की ओर होती है और प्रेम की रजन की ओर । लोक मे प्रथम साध्य रक्षा है । रजन का अवसर उसके पीछे आता है ।"[5] इस प्रकार द्विवेदी युगीन काव्य में वर्णित राष्ट्रप्रेम की

---

1 नाथूराम शर्मा : शंकर–सर्वस्व, (सपा० हरिशकर शर्मा), पृष्ठ 96

2. वही . वही , पृष्ठ 150

3 वही वही, पृष्ठ 152

4 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि भाग–एक, पृष्ठ 148

5 वही . वही

भावना के मूल मे लोक—मगल का ही भाव है । सियारामशरण गुप्त की रचना 'मौर्य विजय' में स्वदेश रक्षा की भावना सर्वत्र विद्यमान है । कवि ने लिखा है—

पुण्यभूमि यह हमें सर्वदा है सुखकारी ।
माता के सम मातृभूमि है यह प्यारी ।[1]

कवि ने आगे मातृभूमि की रक्षा के लिए बलिदान का आह्वान किया है—

आओ वीरो आज देश की कीर्ति बढ़ा दे ।
सबके सम्मुख मातृभूमि को शीश चढ़ा दे ।[2]

कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने राष्ट्र की स्वाधीनता के लिए सभी प्रकार के कष्टों एवं अत्याचारो को सहन करने का आह्वान किया है । कष्टो एवं अत्याचारो का सहन स्वाधीनता के लिए किया जा रहा है उसके उत्साह में जो सौन्दर्य है वह लोक—मंगल का विधान करती है । कवि ने लिखा है—

बलि होने की परवाह नहीं
मैं हूँ कष्टो का राज्य रहे,
मैं जीता, जीता जीता हूँ
माता के हाथ स्वराज्य रहे ।[3]

कवि ने आगे बलिदान के लिए आह्वान किया है—

मत व्यर्थ पुकारे शूल—शूल
कह फूल—फूल सह फूल—फूल
हरि को ही तल में बंद किये,
केहरि से कह नख हूल—हूल ।

---

1 सियारामशरण गुप्त . मौर्य विजय, पृष्ठ 19

2. वही : वही, पृष्ठ 27

3. माखनलाल चतुर्वेदी : हिमकिरीटिनी, पृष्ठ 80

भू—खण्ड बिछा, आकाश ओढ,

नयनोदक ले मोदक प्रहार

ब्रह्माण्ड हथेली पर उछाल

अपने जीवन धन को निहार [1]

कवि नाथूराम शर्मा 'शकर' ने 'बलिदान गान' रचना मे देशवासियो को देश हित मे प्राणो का बलिदान करने की प्रेरणा देते हुए लिखा है—

देश भक्त वीरो, मरने से नेक नहीं डरना होगा,

प्राणो का बलिदान देश की बेदी पर करना होगा ।

लोकमान्य, गुरू गॉधीजी का प्रेम मत्र पढ़ना होगा ,

* * *

पोल खोल; खोटे कुराज्य को दु.शासन कहना होगा,

पशु बल; ठेलेगा जेलों में, वर्षों तक रहना होगा ।

* * *

समता की प्यार पद्धति पै निर्विराम चलना होगा ।[2]

कवि रूपनारायण पाण्डेय ने देश—सेवा के लिए सभी प्रकार के कष्टो को सहन करने का आह्वान करते हुए लिखा है :—

मैं जेल मे पड़ा हूँ हाथो में हथकडी हो,

सादी सजा हो अथवा वह खूब कड़ी हो ।

कोड़ो की मार मुझ पर चाहे बहुत पड़ी हो,

मेरी प्रवृत्ति लेकिन इस बात पर अड़ी हो ।

मैं देश—भक्त नर हूँ मेरा यही है सेवा,

उड़ जायें बोटियॉ भी छोड़ूँ न देश—सेवा ।[3]

---

1. प० माखनलाल चतुर्वेदी : हिमकिरीटिनी, पृष्ठ 99

2. नाथूराम शंकर : शंकर—सर्वस्व (सपा० हरिशंकर शर्मा), पृष्ठ 248

3. प० रूपनारायण पाण्डेय : पराग, पृष्ठ 46

हरिऔधजी की रचना 'प्रियप्रवास' मे लोक–सग्रह की भावना को अभिव्यक्ति मिली है – कालीनाग के विष से यमुना का जल विषाक्त हो जाता था, अनेक प्राणी मृत्यु को प्राप्त हो चुके थे । ऐसी स्थिति मे 'प्रियप्रवास' के नायक स्व–जाति की दुर्दशा देखकर कहते हैं–

स्व–जाति की देख अतीव दुर्दशा ।
विगर्हणा देख मनुष्य–मात्र की ।
विचार के प्राणि–समूह–कष्ट को ।
हुए समुत्तेजित वीर–केसरी ।

हितैषणा से निज–जन्म–भूमि की ।
अपार–आवेश हुआ ब्रजेश को ।
बनी महा बक गँठी हुई भवे ।
नितान्त–विस्फारित नेत्र हो गये ।।[1]

आगे कृष्ण कालीनाग के दहन के लिए कटिबद्ध होते हुए गम्भीर घोषणा करते हैं–

स्व–जाति औ जन्म–धरा निमित्त मैं।
न भीत हूँगा विकराल–व्याल से ।।

* * *

कभी करूँगा अवहेलना न मैं ।
प्रधान–धर्मांग परोपकार की ।।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि हरिऔधजी ने 'प्रियप्रवास' मे कृष्ण को जाति और समाज हितैषी के रूप मे चित्रित किया है। यहाँ जाति का तात्पर्य जातीय अथवा राष्ट्रीय सस्कृति से है। जाति और समाज हितैषी प्रकारान्तर से देश हितैषी है । अत. कृष्ण देश हितैषी के रूप मे चित्रित किये गये हैं । जाति और

---

1 अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' . प्रियप्रवास, पृष्ठ 108-109

समाज की रक्षा के लिए कृष्ण की यह उत्तेजना लोक की पीडा से उद्भूत होकर लोक–मगल की भावना की पुष्टि करती है ।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि द्विवेदी युगीन काव्य मे राष्ट्रीय–जीवन मे व्याप्त विसगतियों विषमताओं, लोक की पीडा, अन्याय, तथा अत्याचार के प्रति कवियों की करूण अनुभूति और देश की स्वाधीनता प्राप्त करने की प्रेरणा एव सदेश सर्वत्र विद्यमान है । उनकी यह अभिव्यक्ति लोक-कल्याण के निमित्त हुई है।

चतुर्थ अध्याय

लोक-मंगलधारा का बहुमुखी विकास

लोक-मंगलधारा का बहुमुखी विकास :-

लोक-रूचि को अपनी ओर आकृष्ट करना और लोक समर्थन प्राप्त करना ही तो, कवि द्वारा समाज निमार्ण के दायित्व का निर्वाह करना है। द्विवेदी युगीन कवियो की काव्य–वस्तु में अपार वैविध्य पाया जाता है। वे लोक–कल्याण की भावना से परिचालित होकर काव्य रचना करते हैं। इसीलिए उनके काव्य में समाज–सुधार, राष्ट्रीय चेतना, नैतिकता का आग्रह, मानवीय दृष्टिकोण आदि का समावेश पर्याप्त मात्रा मे हुआ है। द्विवेदी युगीन काव्य में लोक–मगल की भावना का विकास चतुर्दिक हुआ है। यहाँ प्रेम–भाव, प्रकृति–चित्रण आदि लोक–कल्याण में ही रत दृष्टिगत होते हैं। आलोच्य युगीन काव्य में प्रकृति–चित्रण उद्दीपन रूप में चित्रित न होकर, अधिकाशत. आलम्बन रूप मे ही चित्रित है। यहाँ प्रकृति मानव के सुख–दुःख मे सहभागिनी है। वह मनुष्य के मनोभावों को परिष्कृत करने एव उसे उच्च–मनोभूमि पर स्थापित करने मे सहयोग करती है। द्विवेदी युगीन काव्य मे वर्णित लोक–मगल धारा के बहुमुखी विकास को निम्न शीर्षको मे विश्लेषित किया गया है:–

(क) प्रेम सम्बन्ध और लोक-मंगल :-

आधुनिक काव्यधारा की प्रमुख विशेषता रीतिकालीन स्थूल, शारीरिक एवं मांसल श्रृंगारिकता का त्याग और आदर्शमय समाज सापेक्ष प्रेम की अभिव्यक्ति है । रीतिकाल की संकुचित श्रृंगारिक प्रवृत्ति के परिणाम स्वरूप प्रेम जैसा पवित्र भाव विकृत होकर कहीं अश्लील तो कहीं मात्र कवियो की काल्पनिक विलासिता का साधन बना हुआ था । सामाजिक एव सास्कृतिक दृष्टि से "विघटन के इस काल में, तत्कालीन प्रभावों से मुक्त न होते हुए भी आत्मानुभूति, स्वच्छन्दता एवं स्वतन्त्रता की एक क्षीण लहर रीतिमुक्त कवियो– घनानन्द, ठाकुर, बोधा, आलम आदि में देखी जा सकती है।"[1]

---

1. डॉ० बच्चन सिह रीतिकालीन कवियो की प्रेम व्यजना, पृष्ठ 70

इसके होते हुए भी रीतिकालीन प्रेम, कायिक प्रेम का पर्याय बना रहा, वह समाजोन्मुख नही हो सका । यही कारण है कि आधुनिकता को आत्मसात् किए हुए भारतेन्दु युगीन कवियो की अधिकाश काव्य रचनाओ मे रीति कालीन श्रृगारिक प्रवृत्तियो को अभिव्यक्ति मिली । द्विवेदी–युगीन काव्य मे इस श्रृगारिक परम्परा के प्रेम का निषेध और नैतिकता का आग्रह मिलता है। आलोच्य युग मे प्रेम अपने एकान्तिक भाव से ऊपर उठकर जीवन के विविध क्षेत्रो मे अभिव्यक्त हुआ है । द्विवेदी–युग मे प्रेम की दशा एव दिशा पूर्व वर्णित स्वरूप से भिन्न है । यहाँ रीतिकाल के नायक कृष्ण कामी, चोर और रसिक न होकर, अब एक महापुरूष, लोक–सेवी और लोक–सग्रही व्यक्ति के रूप मे चित्रित किए गये हैं । नायिका राधा विरहाग्नि मे दग्ध होकर लम्बी–लम्बी साँसे नही लेती, बल्कि कर्म क्षेत्र मे पदार्पण कर लोक–सेवा मे ही अपने प्रियतम के रूप–सौन्दर्य की छाया देखती है । द्विवेदी–युग मे रीतिकालीन प्रेम का भोगवादी और पार्थिव–चित्रण, नैतिकता, आदर्श और मानवीय गुणो से समन्वित हो गया । आचार्य द्विवेदीजी ने नायक–नायिका–भेद विषय के सम्बन्ध में लिखा है कि "इस प्रकार की पुस्तको का होना हानिकारक है, समाज के सच्चरित्र की दुर्बलता का दिव्य चिह्न है । इन पुस्तको के बिना साहित्य को कोई हानि न पहुँचेगी, उल्टा लाभ होगा ।"[1] इस प्रकार द्विवेदी युगीन कवियो ने प्रेम को रीति–काव्य की रूढ़िवादिता की जकड़ से मुक्त करके उसे एक स्वस्थ सामाजिक धरातल प्रदान किया । ऐसा करना तत्कालीन राष्ट्रीय आवश्यकताओ के अनुरूप एव स्वाभाविक था । द्विवेदी युगीन काव्य मे वर्णित प्रेम की व्यापकता के सम्बन्ध मे डॉ० पूनमचद तिवारी ने लिखा है-- "भक्ति काल मे प्रेम ईश्वरोन्मुख था और रीतिकाल में विलास या भोग की परम्परा थी। विश्व–प्रेम, मानव–सेवा का प्रेम और निष्काम प्रेम इसी परिधि

---

1 आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी · रसज्ञ रजन, पृष्ठ 12

मे आते चले गये ।"[1] कवि रामनरेश त्रिपाठी ने प्रेम को स्वर्ग—अपवर्ग और साक्षात् ईश्वर का प्रतिबिम्ब माना है—

प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशक अशोक ।
ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है, प्रेम हृदय आलोक ।।[2]

कवि ने 'पथिक' मे प्रेम की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

कैसी मधुर मनोहर उज्ज्वल है यह प्रेम कहानी ।
जी मे है, अक्षर बन इसके, बॅनू विश्व की बानी ।
स्थिर, पवित्र, आनन्द—प्रवाहित सदा शान्त सुखकर है ।
अहा! प्रेम का राज्य परम सुन्दर, अतिशय सुन्दर है ।[3]

सच्चा प्रेम मात्र (नायक—नायिका के) मिलन मे ही नही है, बल्कि वह धैर्य और त्याग की अपेक्षा करता है । कवि ने प्रेम की मीमासा प्रस्तुत करते हुए लिखा है—

सच्चा प्रेम वही है, जिसकी तृप्ति आत्मबल पर हो निर्भर ।
त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है, करो प्रेम पर प्राण न्यौछावर ।।[4]

आचार्य शुक्ल ने 'बुद्धचरित' मे वैयक्तिक विरहजन्य वेदना की अपेक्षा 'जग—हित' की भावना को प्रश्रय दिया है—

परै दु.ख जो कछु धीर धरियो गुनि यह चित्त,
हाय! कदाचित् हम दोउन के दु.ख सो जग हित हो।[5]

कवि गोपालशरण सिंह ने 'नवीन—युग' को प्रेम और दया का सदेश

---

1 डॉ० पूनमचद तिवारी · द्विवेदी युगीन काव्य, पृष्ठ 256

2 रामनरेश त्रिपाठी मिलन, पृष्ठ 29

3 वही : पथिक, पृष्ठ 21

4 वही स्वप्न, पृष्ठ 87

5. आचार्य रामचद्र शुक्ल . बुद्ध चरित, पृष्ठ 85

देते हुए लिखा है–

क्षणिक विभव मे फूल न जाना,

प्रेम दया को भूल न जाना ।

है यह विश्व सदा मगलमय,

पर है यहॉ नाश का भी भय

यह कटु सत्य कभी जीवन मे,

जा सकता न भुलाया ।[1]

श्रीधर पाठक ने ससार को 'प्रेममय'[2] कहा और सत्यनारायण 'कविरत्न' ने 'हृदय तरग' रचना मे 'परमेसुर मय पेम, पेम मय नित परमेसुर' कहा है । मैथिलीशरण गुप्त ने 'सिद्धराज' मे प्रेम की अपेक्षा व्यक्ति–धर्म के महत्त्व को स्थापित करते हुए लिखा है–

चुप, चुप कामी, न लो प्रेम का नाम ।

अबला रहूँ मैं किन्तु धर्म बलवन्त है ।[3]

मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'विष्णुप्रिया' मे समष्टि के कल्याण के लिए व्यष्टि–प्रेम के बलिदान का आख्यान किया गया है ।

मैं सब बताऊँगा, छिपाऊँगा नही तुम्हे,

रोकना न रोकना तुम्ही पर रहा प्रिये ।

जाता नही भोग–हेतु त्याग कर मैं तुम्हे ।

जैसे एक सैनिक समर–हेतु जाता है,

भेजती सजाकर उसे है उसकी वधू ,

वैसे तुम्हीं एक भेज सकती हो मुझको ।

---

1 गोपालशरण सिह . सरस्वती, हीरक जयन्ती समारोह, 1912 ई०, पृष्ठ 58

2 श्रीधर पाठक भारतगीत, पृष्ठ 80

3 मैथिलीशरण गुप्त सिद्धराज, पृष्ठ 72

नर क्या करेगा त्याग करती है नारी ही ।
मैं कुछ करूँगा तो कराओगी तुम्ही उसे ।
जानती हो, मुख्य प्रेम धर्म ही तुम्हारा है,
उसका प्रसार हो, मुझे भी यही इष्ट है ।[1]

मैथिलीशरण गुप्त ने 'यशोधरा' मे लिखा है—

बेटा, घर छोड़ वें गये है अन्य दृष्टि से,
जोड लिया नाता है उन्होंने सब सृष्टि से ।
हृदय विशाल और उनका उदार है,
विश्व को बनाना चाहता जो परिवार है ।

* * *

अपनो को छोड के क्यो बैठ भला जायँगे ?
अपनो के जैसा ही सभी का प्रेम पायँगे ।

* * *

मॉ, क्या सब ओर होगा अपना ही अपना ?
तब तो उचित ही है तात का यो तपना ।[2]

इस तरह कवि ने अगली पीढी से भी प्रेम के लोक—सग्रह की भावना का समर्थन प्राप्त कर लिया । सिद्धार्थ प्राणी मात्र के कल्याण के लिए पत्नी और पुत्र का प्रेम ठुकरा कर सन्यास ग्रहण करते हैं । अपना—पराया में भेद नही करते प्रेम का यह उदात्त चित्रण निश्चित रूप से द्विवेदी युगीन आदर्श एव मान्यता के अनुरूप है । सिद्धार्थ का कथन है :—

सह सकता मैं नही किसी का जन्म—जन्म का क्लेश,
तुम अपने हो, जीव मात्र का हित मेरा उद्‌देश ।[3]

---

1. मैथिलीशरण गुप्त · विष्णुप्रिया, पृष्ठ 43
2 वही . यशोधरा, पृष्ठ 79
3. वही वही, पृष्ठ 29

आगे यशोधरा कहती है—

रह दु ख ! प्रेम परमार्थ दया मै लाऊँ।

कह मुक्ति, भला, किस लिए तुझे मैं पाऊँ ?[1]

पति—पत्नी के प्रेम—भावना का उत्कर्ष सीता के इस कथन मे व्यक्त हुआ है—

करे न मेरे पीछे स्वामी विषम कष्ट—साहस के काम,

यही दु.खिनी सीता का सुख—सुखी रहे उसके प्रिय—राम ।[2]

कवि ने 'साकेत' में पारिवारिक प्रेम सम्बन्ध का चित्रण माण्डवी के द्वारा इस प्रकार अभिव्यक्त किया है—

नाथ, देखती हूँ इस धर मे मैं तो इसमे ही सन्तोष

गुण अर्पण करके औरो को लेना अपने सिर सब दोष ।[3]

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि राज—परिवार की इस प्रेम—भावना का प्रवाह अयोध्या भर मे है । पौराणिक कथा की सीमा मे बँधा कवि यह सदेश पूरे राष्ट्र को देता है । प्रेम के लोक—कल्याणपरक स्वरूप का वर्णन 'साकेत' के नवमसर्ग मे हुआ है । उर्मिला के विरह—वर्णन मे कवि ने करूणा का सागर उडेल दिया है । उर्मिला की इस करूण अनुभूति का संचरण लोक मे होता है । कवि ने बडी कुशलता से व्यष्टि—प्रेम को समष्टि—कल्याण के रूप मे अभिव्यक्त किया है । उर्मिला विरह में विलाप ही नहीं करती है, बल्कि उसमें समाज हित तथा मानव—कल्याण की भावना तथा अपने व्यक्तिगत दु ख को समाज के दु.ख में परिवर्तित करके देखने की संवेदना है। उसकी यह सवेदना लोकमंगल का सृजन करती है— कवि ने उर्मिला की स्वप्नवत् अवस्था मे उसके जीवन का द्वन्द्व प्रस्तुत करते हुए लिखा है—

---

1 मैथिलीशरण गुप्त यशोधरा, पृष्ठ 81

2 वही . साकेत, पृष्ठ 211

3. वही . वही, पृष्ठ 203

भूल अवधि—सुध प्रिय से कहती जगती हुई कभी—आओ ।

किन्तु कभी सोती तो उठती वह चौक बोलकर—'जाओ' ।[1]

यहाँ 'आओ और जाओ' द्वारा कवि ने उर्मिला के हृदय मे अनवरत् चलने वाले व्यष्टि और समष्टि के द्वन्द्व का बडा मार्मिक चित्रण किया है ।

विरहिणी उर्मिला राजमहल मे अपनी वेदना का ही आख्यान नही करती बल्कि वह कृषि एव कृषको का हाल—चाल भी पूछती रहती है । उर्मिला के हृदय मे लोक—कल्याण की बलवती भावना है, जिसके कारण वह कृषि की उपज के बारे मे चिंतित है—

पूछी थी सुकाल—दशा मैने आज देवर से—

कैसी हुई उपज कपास, ईख धान की ?

बोले—इस वार देवि, देखने मे भूमि पर

दुगुनी दया—सी हुई इन्द्र भगवान की ।[2]

उर्मिला समाज के दु ख मे अपनी वेदना एव पीडा को सचरित करने की आकाक्षा करती है। वह किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश करती है, जिसके प्रति वह अपनी सहानुभूति व्यक्त कर सके —

सुख दे सकते हैं तो दु खी जन ही मुझे, उन्हे यदि भेटूॅ ,

कोई नही यहॉ क्या जिसका कोई अभाव मै भी मेटूॅ ?[3]

उर्मिला की यह सहानुभूति कीडे—मकोडो तक सचरित होती है। वह उनके प्रति सहानुभूति व्यक्त करती हुई कहती है—

सखि, न हटा मकडी को आई है वह सहानुभूति—वशा,

जालगता मैं भी तो, हम दोनो की यहॉ समान—दशा ।[4]

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 133

2 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 157

3 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 138

4 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 160

हरिऔधजी ने नायक—नायिका का भेद प्रस्तुत करके विलासपूर्ण चित्रण का बहिष्कार किया है । 'प्रियप्रवास' मे राधा का युगानुरूप चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है—

सद्वस्त्रा—सदलकृता गुणयुता—सर्वत्र सम्मानिता ।
रोगी वृद्ध जनोपकारनिरता सच्छास्त्र चिन्तापरा ।
सद्भावातिरता अनन्य—हृदया—सत्प्रेम—सपोषिका ।
राधा थी सुमना प्रसन्नवदना स्त्रीजाति—रत्नोपमा ।।[1]

हरिऔधजी ने 'प्रियप्रवास' मे राधा एव कृष्ण के पारस्परिक प्रेम को लोक—सेवा एव लोक—कल्याण मे पर्यवसित हुआ चित्रित किया है । कृष्ण के वियोग मे राधिका चिता युक्त जीवन व्यतीत करती थी, परन्तु उसका यह एकागी जीवन अधिक दिनो तक स्थायी नही रह सका । शीघ्र ही विरहिणी राधा का वैयक्तिक प्रेम, विश्व प्रेम मे परिवर्तित हो जाता है । 'प्रियप्रवास' मे एक प्रेमी किस प्रकार अपनी वृत्तियो का उन्नयन करके विश्व—प्रेमी हो सकता है इसका उदाहरण राधा का जीवन है । राधा ने विश्व—रूप परम प्रभु की जो झॉकी देखी उसका वर्णन करता हुआ कवि ने लिखा है—

जो आता है न जन—मन मे जो परे बुद्धि के है ।
जो भावो का विषय न बना नित्य अव्यक्त जो है ।
है ज्ञाता की न गति जिसमे इन्द्रियातीत जो है ।
सो क्या है, मैं अबुध अबला जान पाऊॅ उसे क्यो ।[2]

आगे कवि ने लिखा है—

मैंने की हैं कथन जितनी शास्त्र—विज्ञात बाते
वे बाते हैं प्रकट करती ब्रह्म है विश्व—रूपी ।

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृष्ठ 30

2 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृष्ठ 198

व्यापी है विश्व प्रियतम मे विश्व मे प्राणप्यारा ।

यो ही मैंने जगत–पति को श्याम मे है विलोका ।[1]

राधा इस तरह कृष्ण–प्रेमिका से प्रभु के विश्व–रूप की प्रेमिका हो गयी । हरिऔधजी ने जिस 'नवधा–भक्ति'[2] का आख्यान प्रस्तुत किया है वह जन–कल्याणकारी है । शास्त्रो में वर्णित–नवधा भक्ति के सहारे कोई लोक–सेवी और देश–सेवी नही हो सकता, परन्तु राधा की 'नवधा–भक्ति' मनुष्य को जन–कल्याण और लोक–सेवा के विशाल कर्म क्षेत्र मे ला उपस्थित करती है । जिस व्यक्ति ने विश्वात्मा का साक्षात्कार कर लिया हो वह लोक–सेवा से कैसे विरत रह सकता है ? जहाँ कृष्ण ने राधा को लोक–सेवा का सदेश दिया है, वही वे अपने हृदय के अनेक मधुर भावो का भी शमन कर जीवन के कर्म–क्षेत्र मे अग्रसर थे । उनका प्रेम भी लोक–कल्याण और जनहित मे समाविष्ट हो जाता है । उनके प्रेम का यह उदात्तीकरण, आत्मोत्सर्ग की कामना करता है–

है आत्मा का न सुख किसको विश्व के मध्य प्यारा ।

सारे प्राणी स–रूचि इसकी माधुरी मे बँधे हैं ।

जो होता है न वश इसके आत्म–उत्सर्ग–द्वारा ।

ऐ कान्ते है सफल अवनी–मध्य आना उसी का ।[3]

आगे श्रीकृष्ण लोक–सेवा के सन्दर्भ मे कहते हैं –

जो है भावी परम–प्रबला दैव–इच्छा प्रधाना ।

तो होवेगा उचित न, दुखी वाछितो हेतु होना ।

श्रेय कारी सतत दयिते सात्त्विकी–कार्य्य होगा ।

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृष्ठ 199

2 वही वही , पृष्ठ 200–201

3 वही वही , पृष्ठ 190

जो हो स्वार्थोपरत भव मे सर्व–भूतोपकारी ।[1]

इस सम्पूर्ण विवेचन के अन्त मे कहा जा सकता है कि द्विवेदी युगीन काव्य मे युगानुरूप प्रेम का चित्रण हुआ है । यहाँ व्यष्टि प्रेम पर समष्टि प्रेम की महत्ता स्थापित हुई है । द्विवेदी युगीन कवियो ने वैयक्तिक प्रेम की विभिन्न दशाओ एव अनुभूतियो का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है, परन्तु उनकी यह वैयक्तिक प्रेमजन्य पीडा एव वेदना अतत समष्टि के कल्याण की कामना मे सक्रमित होकर जगत मे लोक–मगल की भावना को सचरित तथा विकसित करने मे योग देती है ।

(ख) प्रकृति की नई प्रतीति और लोक-मगल -

रीतिकालीन काव्य मे प्रकृति का चित्रण अधिकाशत उद्दीपन रूप मे हुआ। वहाँ प्रकृति–चित्रण नायक–नायिका की वाह्य भाव–भगिमाओ के वर्णन तक सीमित रहा । उन्हे वन, नदी, पर्वत, वर्षा आदि के चित्रो द्वारा मनुष्य की कल्पना को परिष्कृत और परिमार्जित करने के लिए अवकाश ही नहीं था । यद्यपि भारतेन्दु युगीन कवियो ने आलम्बन रूप मे प्रकृति का चित्रण कर के मनोभावो को परिष्कृत करने का प्रयास किया, परन्तु वे उससे बहुत आगे नहीं जा सके । आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी अश्लील, विलासितापूर्ण, कामुक, वासनामय और जन–समाज को पतनोन्मुख करने वाले श्रृगार के तीव्र विरोधी थे । उन्होने श्रृगार की अमर्यादा से बचते हुए समाज से सम्बन्धित छोटे–बडे किसी भी ऐसे विषय पर काव्य लिखने की प्रेरणा दी, जिससे देश मे समकालीन समस्याओ और कष्टो का निराकरण हो । द्विवेदीजी ने युगीन कवियो को प्रकृति के विलासमय उद्दीपन रूप की अपेक्षा उन्मुक्त वैभव के प्रकृति चित्रो को प्रस्तुत करने की प्रेरणा दी । आलोच्य युग मे प्रकृति का चित्रण अधिकाशत आलम्बन रूप मे किया गया । द्विवेदी युगीन

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास , पृष्ठ 191

कवियों ने प्राकृतिक वस्तुओं और उनके क्रिया–व्यापारों की मर्मस्पर्शिनी शक्ति पर ध्यान देकर मानवीय चेतना को स्वच्छ एवं स्वस्थ करने का प्रयत्न किया । इस प्रकार द्विवेदी युगीन काव्य में चित्रित प्रकृति मानव के सुख–दुःख में सहभागिनी बनी हुई है । आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने कवि के मूल्यांकन के आधार के सम्बन्ध में लिखा है– "जिस कवि में प्राकृतिक दृष्य और प्रकृति के कौशल देखने और समझने का जितना ही अधिक ज्ञान होता है, वह उतना ही बड़ा कवि होता है ।"[1]

द्विवेदी युगीन कवियों ने विविध रूपों में प्रकृति का बड़ा ही मनोरम वर्णन किया है । मैथिलीशरण गुप्त, हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी, लोचनप्रसाद पाण्डेय, श्रीधर पाठक आदि प्रकृति चित्रण की दृष्टि से द्विवेदी–युग के महत्त्वपूर्ण कवि हैं । कवि रामनरेश त्रिपाठी ने 'स्वप्न' खण्डकाव्य में प्रकृति के माध्यम से मानवीय संवेदना का चित्रण करते हुए लिखा है–

पता नहीं किसके वियोग में, वन में; नदी तटों पर तरूवर ।
मेरी तरह रूदन करते हैं, फूल नाम के अश्रु गिराकर ।।[2]

श्री चन्द्रबली मिश्र ने उपदेशक के रूप में प्रकृति का चित्रण करते हुए लिखा है –

देखो सज्जन ! उषा सुन्दर मूर्ति मोहिनी दिखा रही है ।
'परोपकार नित करना', यह हम सबको सिखा रही है ।।[3]

कहीं–कहीं कवियों ने श्रृंगार प्रसंग में भी प्रकृति को रत देखा है । कवि

---

1. आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी : उद्धृत : महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नव जागरण (डॉ० राम विलास शर्मा), पृष्ठ 334
2. रामनरेश त्रिपाठी : स्वप्न, पृष्ठ 30
3. चन्द्रबली मिश्र : साप्ताहिक प्रताप, 9 अप्रैल, 1917 ई०, पृष्ठ 5

सत्यनारायण 'कविरत्न' प्रात कालीन समीर के प्रथम समागम से विकसित कली का चित्रण करते हैं—

वह देखो नव कली भली निज मुखहि निकारति ।
लगि—लगि वात—प्रभात गात अलसात सम्हारति ।।
प्रथम समागम—समर जीति मुख मुदित दिखावति ।
लहकि—लहकि जनु स्वाद लैन को भाव बतावति ।
मुखँहि मोरि जमुहाति भरी तन अतन उमँगन ।
जोम जुबानी जगे चहत रस—रग तरगन प्रकृति को।।[1]

कवि श्रीधर पाठक ने 'काश्मीर—सुषमा' मे झीलो सरोवरो, फूलो से लदे वृक्षो से युक्त पर्वत श्रृगो को स्वय मे लीन परम सुन्दर,श्रृगार रत देवी के रूप मे चित्रित किया है —

प्रकृति यहाँ एकात बैठि निज रूप सवाँरति,
पल पल पलटति भेष छनिक छबि छिन—छिन धारति ।

*　　　*　　　*

सजति, सजावति, सरसति, हरसति, दरसति प्यारी,
बहुरि सराहति भाग पाय सुठि चित्त रसारी ।
विहरति विविध—विलास—भरी जोवन के मदसनि,
ललकति, किलकति, पुलकति, निरखति, थिरकति बनि ठनि ।
मधुर मजु छवि पुज छटा छिरकति वन—कुँजन,
चितवति, रिझवति, हँसति, डसति, मुसकाति, हरति मन ।[2]

द्विवेदीयुगीन काव्य मे प्रकृति राष्ट्रीय और सामाजिक प्रवृत्तियो के उन्नयन मे सहायक दिखाई पडती है । वह मानव की निष्काम सेवा मे सलग्न हैं ।

---

1 सत्यनारायण 'कविरत्न' हृदय तरग (सपा० बनारसीदास चतुर्वेदी),पृष्ठ 74

2 श्रीधर पाठक काश्मीर सुषमा पृष्ठ, 5—6

प्रकृति का स्वतन्त्र अस्तित्व उतना महत्त्व नही रखता जितना की उसका मानवाश्रित होना । मैथिलीशरण गुप्त की प्रकृति देश–प्रेम का पोषण करने वाली है । सस्कृति, समाज, धर्म, शील और सदाचार के उन्नयन मे वह सहायक है । पचवटी मे कवि ने यह लिखा है –

है बिखेर देती वसुन्धरा मोती सबके सोने पर ।
रवि बटोर लेता है उनको सदा सबेरा होने पर ।
और विरामदायिनी अपनी सध्या को दे जाता है ।
शून्य श्याम तनु जिससे उसका नया रूप झलकाता है ।[1]

कवि ने 'साकेत' के 'प्रथम सर्ग' मे हेमन्त को असुर–शासन और वसन्त को राम–राज्य के रूप मे चित्रित किया है ।[2] कवि आगे नदी एव बादल के उपकारी रूप का चित्राकन करता हैं –

"पर नद को ही अवकाश कहाँ है इसका ?
सोचो जीवन है श्लाघ्य स्वार्थमय किसका ?
करते हैं जब उपकार किसी का हम कुछ,
होता है तब सन्तोष हमे क्या कम कुछ ?
ऐसा ही नद के लिए मानते हैं हम,
अपना जैसा ही उसे जानते हैं हम ।
जल निष्फल था यदि तृषा न हममे होती,
है वही उगाता अन्न, चुगाता मोती ।
निज हेतु बरसता नही व्योम से पानी,
हम हो समष्टि के लिए व्यष्टि–बलिदानी ।[3]

---

1 मैथिलीशरण गुप्त पचवटी पृष्ठ, 7
2 वही साकेत, पृष्ठ 12
3 वही वही, पृष्ठ 110

'साकेत' के 'नवम सर्ग' मे उर्मिला का विरह—वर्णन चित्रित हुआ है । प्रकृति के विभिन्न उपादानो के द्वारा कवि ने विरहिणी उर्मिला की मन स्थिति का बडा ही मार्मिक एव हृदयस्पर्शी चित्रण किया है । उर्मिला के हृदय मे लोक—कल्याण की भावना बलवती हैं । यद्यपि उसका पति उससे दूर है और वह विरहाग्नि से तापित है, फिर भी वह ससार को सुखी देखना चाहती है। सूर की गोपियॉ प्रियतम श्रीकृष्ण के वियोग मे प्रकृति को उलाहना देती हैं—'मधुवन तुम कत रहत हरे',परन्तु उर्मिला स्वय दु खी है, फिर भी वह प्रकृति के उपादानो के लोक कल्याणकारी रूप की प्रशसा करती है।उर्मिला बादलो के लोक-कल्याणकारी रूप पर प्रकाश डालती हुई कहती है—

बरस घटा बरसूँ मै सग,
सरसे अवनी के सब अग,
मिले मुझे भी कभी उमग, सबके साथ सयानी।
मेरी ही पृथिवीं का पानी ।[1]

* * *

वश वश को देते हैं जो वृद्धि, विभव, सन्तोष ।
नभ मे आप विचरते हैं जो,
हरा धरा को करते हैं जो,
जल मे मोती भरते हैं जो,अक्षय उनका कोष,
सफल है, उन्ही घनो का घोष ।[2]

'उर्मिला' अपने क्षणिक विनोद के लिए पुष्प तोडने के लिए उद्यत सखी को मना करती है, क्योकि इससे लतिका को कष्ट होगा और साथ ही वह सबके

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 148

2 वही वही पृष्ठ 149

उत्कर्ष की कामना करती है—

छोड, छोड फूल मत तोड, आली, देख मेरा
हाथ लगते ही यह कैसे कुम्हलाये हैं ?
कितना विनाश निज क्षणिक विनोद मे है,
दु खिनी लता के लाल ऑसुओ से छाये हैं ।
किन्तु नही, चुन ले सहर्ष खिले फूल सब
रूप, गुण, गन्ध से जो तेरे मनभाये हैं
जाये नही लाल लतिका ने झडने के लिए,
गौरव के सग चढने के लिए जाये हैं ।[1]

कवि अयोध्यासिह 'हरिऔध' की प्रकृति जन—कल्याणी है । आलम्बन, उद्दीपन तथा अलकरण रूप मे भी प्रकृति का उपयोग करते हुए, उन्होने उपदेश, सहानुभूति, सवेदना, अनुराग, साहचर्य आदि भावो को प्रकृति की पृष्ठभूमि प्रदान की है । 'प्रियप्रवास' मे प्रकृति—चित्रण सशक्त रूप मे हुआ है । प्रकृति पर मानवीय क्रिया—व्यापारो का आरोप करते हुए कवि ने लिखा है—

सब—नभ—तल—तारे जो उगे दीखते हैं ।
यह कुछ ठिठके से सोच मे क्यो पडे हैं ।
ब्रज—दुख अवलोके क्या हुए हैं दुखारी ।
कुछ व्यथित बने से या हमे देखते हैं ।[2]

माता यशोदा श्रीकृष्ण के मथुरा चले जाने से व्यथित हैं, उनकी व्याकुलता से रजनी भी व्याकुल है ।[3] कवि ने लिखा है—

फूलो पत्तो सकल पर हैं वारि बूँदे दिखाती ।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 165

2 अयोध्यासिह उपाध्याय हरिऔध प्रियप्रवास, पृष्ठ 34

3 वही प्रियप्रवास, पृष्ठ 28

रोते हैं या विटप सब यो ऑसुओ को दिखा के ।

रोई थी जो रजनी दुख से नद की कामिनी के ।

ये बूँदे हैं, निपतित हुई या उसी के दृगो से ।।[1]

'प्रियप्रवास मे राधा जूही से अपना आत्मीय सम्बन्ध स्थापित करती हुई कहती है—

पीडा नारी—हृदय—तल की नारि ही जानती है ।

जूही तू है विकच—वदना शान्ति तू ही मुझे दे ।।

*　　　*　　　*

क्या तेरी है महॅक बदली या हुई और ही तू ।

या तेरा भी सरबस गया साथ ऊधो—सखा के ।।[2]

इतना ही नही, वह क्रमश चमेली, बेला, सूर्यमुखी, कोयल आदि के पास जाकर अपनी विकलता का उनसे तादात्म्य स्थापित करती है। हरिऔधजी ने 'प्रियप्रवास' मे प्रकृति—चित्रण की उपदेशात्मक प्रणाली को भी अपनाया है । कवि ने लिखा है—

आलोक से लसित पादप—वृन्द नीचे ।

छाये हुए तिमिर को कर से दिखा के ।

थे यो मुकुन्द कहते मलिनान्तरो का

है वाह्य रूप बहु—उज्ज्वल दृष्टि आता ।।[3]

हरिऔधजी ने प्रकृति द्वारा राधा की समस्या का समाधान प्रस्तुत करके, उसके जीवन का उन्नयन चित्रित किया है। राधा का कथन है—

"कजो का या उदित—विधु का देख सौंदर्य्य ऑखो ।

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृष्ठ 36

2 वही वही, पृष्ठ 169

3 वही वही, पृष्ठ 165

या कानो से श्रवण कर के गान मीठा खगो का ।

मैं होती थी व्यथित, अब हूँ शान्ति सानन्द पाती ।

प्यारे के पॉव, मुख, मुरली–नाद जैसा उन्हे पा ।।

* * *

हो जाने से हृदय–तल का भाव ऐसा निराला ।

मैंने न्यारे परम गरिमावान दो लाभ पाये ।

मेरे जी मे हृदय विजयी विश्व का प्रेम जागा ।

मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय–प्राणेश ही मे ।"[1]

इस प्रकार राधा को प्रकृति के चित्रो मे अपने प्रियतम का रूप दिखाई देता है और जिसके फलस्वरूप उसके हृदय मे विश्व–प्रेम जागृत होता है । उन्हे परम प्रभु की झॉकी प्राप्त हो गयी ।[2]

इस प्रकार हम कह सकते है कि द्विवेदीयुगीन काव्य मे प्रकृति पूरी तरह से मानवीय सवेदना से सपृक्त और समाजोन्नमुख रूप मे चित्रित हुई है । कवियो ने यहॉ प्रकृति को जन–कल्याण के निमित्त चित्रित किया है । इस तरह द्विवेदीयुगीन काव्य मे वर्णित प्रकृति मानवीय चेतना को परिष्कृत एव परिमार्जित करके उसे एक स्वस्थ समाज के सृजन की प्रेरणा देती है, जहॉ सभी अपनी–अपनी सीमाओ का अतिक्रमण किए बिना परस्पर प्रेम और सौहार्दपूर्ण जीवन जी सकते हैं ।

(ग) शिक्षा और लोक-मगल (नारी शिक्षा का विशेष सन्दर्भ)

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य का चतुर्मुखी विकास करना है । शिक्षा से मनुष्य का हृदय और मस्तिष्क परिष्कृत होता है । यह मानव को चितन दृष्टि प्रदान करती है । शिक्षा व्यक्ति की अतर्निहित प्रतिभा

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' 'प्रियप्रवास', पृष्ठ 198

2 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' 'प्रियप्रवास' पृष्ठ 198

की अभिव्यक्ति का साधन तथा अपरिष्कृत उदार वृत्तियो को परिष्कृत एव अनुपम बनाने का माध्यम है । यह व्यक्ति की गरिमा की पोषक तथा आध्यात्मिक पक्ष की परिचायक है । शिक्षा व्यक्ति तथा समाज की उन्नति तथा अवनति का मानदण्ड है । जो राष्ट्र और समाज जितना अधिक शिक्षित होगा वह उतना ही प्रगतिशील होगा ।

उन्नीसवी शताब्दी के धार्मिक एव सामाजिक आदोलनो ने सामाजिक एव धार्मिक रूढियो पर कुठाराघात करने के साथ–साथ शिक्षा के प्रचार–प्रसार पर भी बल दिया । इस क्षेत्र मे ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का प्रयास प्रशसनीय रहा । उन्होने नारी शिक्षा पर अधिक बल दिया, उनकी धारणा थी कि जब तक नारी शिक्षित नही होगी तब तक उसमें प्रगतिशीलता सभव नहीं है । पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क के फलस्वरूप शिक्षा के क्षेत्र मे नई जागरूकता आयी, लोगो के दृष्टिकोण मे परिवर्तन हुआ । डॉ० श्रीकृष्णलाल का मत है कि "आधुनिक शिक्षा की दो प्रमुख विशेषताएँ है – यह आलोचनात्मक और वैज्ञानिक है । यह सदेह का पोषण करती है और गुरूडम की विरोधी है, प्रकृति की भौतिक सत्ताओ पर विश्वास करती है और अधिभौतिक सत्ताओ की अविश्वासी है, व्यक्तिगत स्वाधीनता की घोषणा करती है और रूढियो परम्पराओ तथा अधविश्वासो की शत्रु है । यह बुद्धिवाद, अध–भक्ति का ठीक उलटा है और इससे हमारे दृष्टिकोण मे एक अभूतपूर्व परिवर्तन आ गया ।"[1] यहाँ स्पष्ट है कि रूढियो, परम्पराओ और अधविश्वासो के कारण जो शोषण की प्रक्रिया चल रही थी उसको भारी झटका लगा । इस प्रकार ज्ञान के उदय से लोगो मे नई चेतना जागृत हुईं, जिससे परिवर्तन की भावना प्रबल होने लगी । प्रत्येक विचारवान व्यक्ति को अपनी वर्तमान दशा का अनुभव हुआ और वह जीवन तथा साहित्य के प्रत्येक

---

1 डॉ० श्रीकृष्णलाल आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृष्ठ 11

क्षेत्र मे परिवर्तन और विकास के लिए आकुल हो उठा । शिक्षित स्त्रियो को अपनी दुर्दशा का अनुभव हुआ और ऐसे अनेक सुधार सम्बन्धी आन्दोलनो का प्रादुर्भाव हुआ जिनका उद्देश्य बाल विवाह तथा पर्दा प्रथा का विरोध करना, विधवा विवाह का समर्थन करना और स्त्रियो को पुरूषो के बराबर अधिकार व स्थिति प्रदान करना था ।

द्विवेदी युगीन कवियो ने शिक्षा की समस्या, विशेषकर नारी शिक्षा की समस्या को अपने काव्य मे स्थान दिया है । कवि सत्यनारायण 'कविरत्न की 'भ्रमरदूत' रचना मे माता यशोदा के मन मे इस बात का आक्रोश है कि उनके माता–पिता ने उन्हे समुचित शिक्षा नहीं दी और वे कहती हैं– "माता पिता बैरी भये, सिच्छा दई न मोहि ।"[1] आगे शिक्षा की उपादेयता और प्रासगिकता पर प्रकाश डालती हुई माता यशोदा का कथन है–

नारी शिक्षा अनादरत जो लोग अनारी ।
ते स्वदेश अवनति प्रचण्ड पातक–अधिकारी ।
निरखि हाल मेरा प्रथम ले समझि सबकोई ।
विद्या बल लहि मति परम अबला सबला होई ।
लखौ अजमाइके ।।[2]

नारी शिक्षा के सन्दर्भ मे द्वापर की नदरानी यशोदा का यह कथन असामयिक और उनके वातावरण के अनुकूल नही है, परन्तु बीसवीं शताब्दी के पूर्वांश मे 'कवि रत्न' का यह कथन सन्दर्भवान है । शिक्षा के माध्यम से ही स्त्रियो मे आत्म–विश्वास और आत्मशक्ति का प्रादुर्भाव सभव है और वे शक्तिमान भी हुई हैं । यहॉ कवि का मतव्य है कि यदि स्त्री

---

1 सत्यनारायण 'कविरत्न' भ्रमरदूत, पृष्ठ 18

2 वही वही, पृष्ठ 18

शिक्षा पर समुचित ध्यान दिया जाय तो, स्त्री पुरूष की बराबरी कर सकती है। हरिऔधजी की धारणा है कि शिक्षा व्यक्ति के मोह माया का अतिक्रमण करने का मार्ग प्रशस्त करता है । 'प्रियप्रवास' मे श्रीकृष्ण ने राधा को सदेश भेजा है— लोक सेवा के साथ ही, उन्होने दुखी ब्रज बालाओ को शिक्षा देने के लिए भी आग्रह किया है—

जो सतप्ता—सलिल—नयना—बालिकाये कई हैं ।
ऐ प्राचीना—तरल—हृदया—गोपियो स्नेह—द्वारा ।
शिक्षा देना समुचित इन्हे कार्य्य होगा तुमारा ।
होने पावे न वह जिससे मोह—माया—निमग्ना ।।[1]

शिक्षा द्वारा ही व्यक्ति की उदार वृत्तियो का परिष्कार सम्भव है, इन्ही वृत्तियो के परिष्कार से व्यक्ति के मन पर चढा माया का आच्छद तिरोहित होता है और तभी व्यक्ति को वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होती है । जिससे उसकी द्वैतता का भाव समाप्त हो जाता है और वह सम्पूर्ण जगत् मे उसी परब्रह्म का साक्षात्कार करता है । इसीलिए श्रीकृष्ण ने दुखी ब्रजबालाओ की शिक्षा देने का सदेश भेजा है । शिक्षा आत्मशक्ति के विकास का साधन है, इसी आत्मशक्ति द्वारा मनुष्य का अभ्युदय सम्भव है ।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'कान्यकुब्ज अबला—विलाप'[2] कविता मे एक ओर स्त्रियो को अशिक्षित रखने वालो को लज्जा के मारे डूब मरने को कहा है, तो दूसरी ओर वे उन स्वच्छ बुद्धि वालो पर बलिहारी जाते हैं, जो पुरूषो के लिए शिक्षा को अमृत के समान मगलकारी, परन्तु स्त्रियो के

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय प्रियप्रवास, पृष्ठ 153

2 "पर हम जो घर मे ही रहती, जिनसे सब सुख पाते हो
उन्हे मूर्ख रखने मे क्यो तुम, जरा नही शरमाते हो ?"
आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी सरस्वती, सितम्बर, 1906 ई०, पृष्ठ 354

लिए विष—तुल्य मानते हैं । पार्वती देवी ने 'काव्यकुसुमाजलि'[1] कविता मे स्त्री—शिक्षा के विस्तार के बिना देशोद्धार असभव माना है । उन्होने तत्कालीन पत्रिका 'आर्यसेवक' मे लिखा कि "स्त्री—शिक्षा के बिना भारत को गारत होने से बचाना एक बडा कठिन मामला है ।"[2] स्पष्ट है कि शिक्षा व्यक्ति के उत्त्थान मे सहायता करती है, जबकि अशिक्षा उसके विपरीत अध पतन की ओर अग्रसर करती है ।

कवि गोपालशरण सिह स्त्री—शिक्षा के प्रबल समर्थक हैं, तथा स्त्रियो की निरक्षता से उन्हे कष्ट होता है । 'भारतीय विद्यार्थियो के कर्त्तव्य' कविता मे उन्होने लिखा है कि यदि विद्या विहीन महिलाओ को शिक्षित नही किया गया, तो इस देश का अध पतन निश्चित है। उनके लिए समुचित शिक्षा व्यवस्था के प्रबन्ध का शुभ परामर्श कवि ने इस प्रकार दिया है—

हैं विद्या वचिता यहाँ महिलाये सारी,
होती है नित हानि देश की जिससे भारी ।
क्या अचरज सतान निकम्मी जो वे जनती,
या जो सहज शिकार दुर्गुणो की हैं बनती ।
समुचित प्रबन्ध उनके लिए शिक्षा का सत्त्वर करो,
मित्रो ! समूल गृह—देवियो की सब दु ख—चिन्ता हरो ।[3]

इसी तरह का विचार राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत—भारती' के 'वर्तमान खण्ड' मे प्रस्तुत किया है । कवि का कहना है कि यदि आज पुरुष समाज पतितावस्था को प्राप्त हुआ है, तो इसका कारण

---

1 पार्वती देवी सरस्वती, अप्रैल, 1906 ई०, पृष्ठ 132

2 वही आर्यसेवक जून, 1914 ई०, पृष्ठ 9

3 ठाकुर गोपालशरण सिह सरस्वती, फरवरी, 1914 ई०, पृष्ठ 106

है– स्त्रियो को शिक्षा से वचित रखना, क्योकि जहॉ जैसी स्त्रियॉ होगी उसी के अनुरूप वहॉ का पुरूष समाज भी होगा ।[1]

गुप्तजी ने 'हिन्दू रचना मे 'गॉवो का सुधार'[2] शीर्षक के अन्तर्गत शिक्षित जनो से आग्रह किया है कि वे अपनी शिक्षा द्वारा गॉवो का समग्र विकास करे, ताकि लोगो को कष्टो से छुटकारा मिल सके । गुप्तजी ने 'सहायता'[3] शीर्षक कविता मे असहाय एव अकिचन की सहायता, शिक्षा के माध्यम से करने का आह्वान किया है । गुप्तजी ने 'भारत–भारती' के 'भविष्यत् खण्ड मे, शिक्षा के प्रसार को परम आवश्यक माना है –

सबसे प्रथम कर्त्तव्य है शिक्षा बढाना देश मे,
शिक्षा बिना ही पड रहे हैं आज हम सब क्लेश मे ।
शिक्षा बिना कोई कभी बनता नही सत्पात्र है,
शिक्षा बिना कल्याण की आशा दुराशा मात्र है ।।[4]

आगे कवि ने शिक्षा से प्राप्त होने वाली उपलब्धियो पर विस्तार से प्रकाश डाला है । विद्या के अभाव मे व्यक्ति की वृत्तियॉ पशुत्व का अतिक्रमण नही कर पाती हैं, इसी लिए विद्या हीन व्यक्ति दनुजता से युक्त रहता है । उनमे अविचार, अन्धाचार, व्यभिचार, अत्याचार जैसी प्रवृत्तियॉ प्रभावी हो जाती है,

---

1 निज नारियो के साथ यदि कर्त्तव्य अपना पालते,
अज्ञान के गहरे गढे मे जो न उनको डालते,
तो आज नर यो मूर्ख होकर पतित क्यो होते यहॉ ?
होतीं जहॉ जैसी स्त्रियॉ वैसे पुरूष होते वहॉ ।।

मैथिलीशरण गुप्त भारत–भारती पृष्ठ 148

2 मैथिलीशरण गुप्त भारत–भारती, पृष्ठ 185

3 वही हिन्दू, पृष्ठ 159

4 वही भारत–भारती, पृष्ठ 184

जिससे समाज मे अधर्म अन्याय एव अत्याचार को प्रश्रय मिलता है । इससे अमगल की भावना प्रबल हो जाती है । इस तरह शिक्षा लोक मे मगल का विधान करने का साधन है । कवि ने लिखा है—

विद्या बिना अब देख लो, हम दुर्गुणो के दास हैं,
हैं तो मनुज हम, किन्तु रहते दनुजता के पास हैं ।
दाये तथा बाये सदा सहचर हमारे चार हैं—
अविचार, अन्धाचार हैं, व्यभिचार, अत्याचार हैं ।[1]

अत स्पष्ट है कि शिक्षा मनुष्य की उदार वृत्तियो का परिष्कार करके उसे अभ्युदय की ओर ले जाती है । जिससे व्यक्ति लौकिक एव पारलौकिक सुखो की सिद्धि प्राप्त करता है । शिक्षा व्यक्ति को प्रकाशित करती है, उसके अधकार को दूर कर उसे अज्ञानता से ज्ञान की ओर अग्रसर करती है । उसी ज्ञान के सहारे व्यक्ति अपनी पशुता का दमन करके देवत्व की ओर अग्रसर होता है । अन्तत यही देवत्व लोक—कल्याण का कारण बनता है ।

(घ) साहित्यिक आलोचना में मगल दृष्टि —

रचना युगीन—जीवन की अभिव्यक्ति होती है । उसमे समाज प्रतिबिम्बित होता है । आलोचना का भी जीवनानुभव से उतना ही गहरा सम्बन्ध होता है जितना रचना का होता है । इसीलिए प्रत्येक युग की रचना और आलोचना मे साम्य दिखाई देता है । आलोचक अपने अनुभव एव सचित ज्ञान द्वारा रचना का मूल्याकन करता है । उसकी यात्रा रचनाकार के समानान्तर ही होती है । रचनाकार जिस रचना—प्रक्रिया से गुजरता है, आलोचक भी उसी रास्ते का सूक्ष्म निरीक्षण करता हुआ रचना को नई अभिव्यक्ति देता है। द्विवेदी युगीन काव्य अपनी युगीन परिस्थितियो की सशक्त उपज है । द्विवेदी युगीन कवियो ने जातीय जीवन की मार्मिक

---

1 मैथिलीशरण गुप्त भारत—भारती, पृष्ठ 126

अभिव्यक्ति की है । उन्होन सामाजिक राष्ट्रीय वैषम्य को उजागर करके उपयोगी तत्त्वो का समर्थन और पोषण किया है । इस युग मे सामान्य मानव के गौरव की प्रतिष्ठा हुई क्षुद्र एव तुच्छ भी काव्य का विषय बना है । इस तरह द्विवेदीयुगीन काव्य समाजपरक दृष्टि का पोषण करने वाला काव्य है । इस सम्बन्ध मे डॉ० सुधीन्द्र लिखते है कि "सम्पूर्ण हिन्दी कविता की परम्परा मे यदि किसी काल की कविता पूर्ण समाजदर्शी होने का धर्म पालन करती है तो यह द्विवेदी काल की कविता ।"[1] साहित्य के सम्बन्ध मे अपना विचार प्रकट करते हुए डॉ० प्रेमस्वरूप गुप्त ने लिखा है कि – प्रचार प्रोपेगण्डा साहित्य का धर्म नही पर लोकमगल, लोकानुभूति, विश्व मानव की सवेदनाओ का व्यापार यह तो साहित्य का प्रकृत क्षेत्र होना ही चाहिए ।"[2] द्विवेदीयुगीन कवियो ने साहित्य के इसी स्वरूप का सृजन किया है । उन्होने अपने काव्य मे लोक–मगल की भावना लोकानुभूति, आदि को अभिव्यक्ति दी है । प्रियप्रवास की राधा कृष्ण–प्रेमिका से लोक–प्रेमिका और प्रकारान्तर से विश्व–प्रेमिका के रूप मे अपनी करूणा, दया, सहानुभूति को ससार के सभी प्राणियो मे सचरित करती हुई चित्रित की गयी है। 'साकेत की विरहिणी उर्मिला कीट पतगो तक से सहानुभूति रखती है ।

भारतेन्दु–युग मे पाश्चात्य सम्पर्क से समीक्षा के क्षेत्र मे भी नयी चेतना आई, लेकिन इस युग तक किसी विशेष शास्त्रीय नियम का अनुवर्तन नही हुआ था । उनकी समीक्षा केवल रचना के गुण–दोष विवेचन तक ही सीमित थी । भारतेन्दु युगीन समीक्षा के सम्बन्ध मे आचार्य नददुलारे वाजपेयी लिखते है – "भिन्न–भिन्न समीक्षक अपनी रचनाओ के गुण–दोष

---

1 डॉ० सुधीन्द्र हिन्दी कविता मे युगान्तर, पृष्ठ 144

2 डॉ० प्रेमस्वरूप गुप्त उद्धृत आधुनिक साहित्यिक निबन्ध, (डॉ० त्रिभुवन सिह) पृष्ठ 498

उदघाटित कर रहे थे । यह हिन्दी की नवीन प्रयोग कालीन समीक्षा का स्वरूप था।"[1] भारतेन्दु युग मे नवीन विचारो के साथ–साथ हिन्दी समीक्षा का सूत्रपात तो हुआ परन्तु उसमे समुचित परिपक्वता विशेषकर शुक्लजी की समीक्षा मे दिखाई पडती है । द्विवेदी युगीन समीक्षा मे स्वदेशी–विदेशी प्राचीन–नवीन पश्चिम–पूर्व का समुचित समन्वय दिखाई पडता है । आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने रीतिकालीन काव्य का घोर विरोध किया । उन्होने कवियो को निर्देशित किया कि वे नायिका भेद, नख–शिख वर्णन आदि पर साहित्य रचना करना बद कर दे। द्विवेदीजी मर्यादा और आदर्श के पोषक थे अत वे किसी प्रकार की अश्लीलता और नग्नता के प्रदर्शन के विरूद्ध थे। उन्होने लिखा है कि– "कवि लोग नख–शिख, नायिका भेद, अलकार–शास्त्र पर पुस्तको पर पुस्तके लिखते चले जाते हैं । अपनी व्यर्थ बनावटी बातो से देवी–देवताओ तक को बदनाम करने से नही सकुचाते । फलस्वरूप यह हुआ कि कविता की असलियत काफूर हो गयी ।"[2] आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ऐसे साहित्य सृजन के पक्ष मे थे, जो जन-सामान्य के लिए कल्याणकारी हो । उन्होने समाज के लिए कला को प्रोत्साहन दिया । इस प्रकार उनका मानना था कि लोग युगानुरूप सामाजिक नैतिक और आदर्श-मूलक विषयो पर साहित्य रचना करे । कविता मे जन-सामान्य की अवस्था एव विचारो का वर्णन हो । कविता ऐसी हो कि वह लोगो मे साहस, प्रेम, दया, धैर्य करूणा आदि उदात्त भावो को उत्पन्न करने मे समर्थ हो । आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की काव्य–विषयक आलोचना दृष्टि के सम्बन्ध मे आचार्य नददुलारे वाजपेयी ने लिखा है कि– "उन्होने नवीन युग की सामाजिक आवश्यकताओ के अनुरूप साहित्य निर्माण की प्रेरणा दी और अपनी समीक्षा मे उन्ही कृतियो

---

1 आचार्य नददुलारे वाजपेयी नया साहित्य नये प्रश्न पृष्ट 24

2 आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी रसज्ञ रजन, 'कवि और कविता' पृष्ठ 44

को महत्त्व दिया जो सामाजिक उत्थान और राष्ट्रीय विकास की भावनाओ से ओत-प्रोत थी ।"[1] आचार्य द्विवेदी की प्रतिबद्धता लोक एव काव्य के प्रति किस प्रकार की थी इसका स्पष्टीकरण 'भारत—भारती का प्रकाशन शीर्षक मे भारत—भारती की समीक्षा करते हुए उसकी प्रशसा मे उन्होने जो लिखा था उससे व्यक्त होता है— "यह काव्य वर्तमान हिन्दी साहित्य मे युगान्तर उत्पन्न करने वाला है । वर्तमान और भावी कवियो के लिए यह आदर्श का काम देगा

यह सोते हुए को जगाने वाला है भूले हुओ को ठीक तरह राह पर लाने वाला है निरूद्योगियो को उद्योगशील बनाने वाला है, निरूत्साहितो को उत्साहित करने वाला है, उदासीनो को उत्साहित करने वाला है । यह स्वदेश पर प्रेम उत्पन्न कर सकता है।"[2]

द्विवेदी—युग के सशक्त आलोचक आचार्य राम चन्द्र शुक्ल थे । साहित्य के सम्बन्ध मे उनकी धारणा थी कि वह भावनाओ का उद्वेलन करने मे समर्थ हो । उनकी समीक्षा का झुकाव नैतिकता और मर्यादावादी दृष्टिकोण की ओर अधिक था । आचार्य शुक्ल 'कविता क्या है ?' निबन्ध मे लिखते हैं कि "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है । हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं । इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग का समकक्ष मानते हैं ।"[3] स्पष्ट है कि आचाय शुक्ल ने काव्य को मानव हृदय की वृत्तियो के उन्नयन मे सहायक माना है।

---

1 आचार्य नददुलारे बाजपेयी नया साहित्य नये प्रश्न, पृष्ठ 22

2 आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी 'भारत—भारती का प्रकाशन' सरस्वती, अगस्त, 1914 ई० पृष्ठ 195

३ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि (भाग—एक), पृष्ठ 97

उनकी धारणा है कि 'कविता' मानव—हृदय को सकुचित घेराबदी से मुक्त करके उसे उच्च भाव—भूमि की ओर ले जाती है, जहॉ उसका हृदय व्यापक से व्यापकतर की ओर गतिमान होता है । इस सम्बन्ध मे आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि "कविता ही हृदय को प्रकृत दशा मे लाती है और जगत् के बीच क्रमश उसका अधिकाधिक प्रसार करती हुई उसे मनुष्यत्व की उच्च भूमि पर ले जाती है। भावयोग की सबसे उच्च—कक्षा पर पहुँचे हुए मनुष्य का जगत् के साथ पूर्ण तादात्म्य हो जाता है, उसकी अलग भावसत्ता नही रह जाती, उसका हृदय विश्व—हृदय हो जाता है । उसकी अश्रुधारा मे जगत् की अश्रुधारा का, उसके हास—विलास मे जगत् के आनन्द—नृत्य का, उसके गर्जन—तर्जन मे जगत के गर्जन—तर्जन का आभास मिलता है ।"[1] मानव— हृदय के विश्व—हृदय मे परिणत होने का अर्थ केवल भाव प्रसार या भावोच्चता ही नही है, बल्कि जगत् मे घटित व्यापारो (भाव तथा घटना व्यापारो) का बिम्ब—धर्मा बन जाना है। बिम्ब धारण किये बिना उसका उपचार या उसे मगल अवस्था तक पहुँचना सभव नहीं है । आचार्य शुक्ल काव्य मे नैतिक सास्कृतिक मूल्यो के पक्षधर हैं, उन्होने काव्य मे उच्छृखलता एव विलासिता का निषेध किया । डॉ० सकटाप्रसाद मिश्र ने लिखा है कि "रामचन्द्र शुक्ल ब्रेडले, क्रोचे आदि का विरोध करते हुए कलागत नैतिकता का आग्रह करते हैं । काव्य मे उच्चतर नैतिक, सास्कृतिक मूल्यो की अभिव्यक्ति उन्हे अभीष्ट है ।

वे काव्य की प्रकृति का विवेचन न करके काव्य के प्रयोजन का विवेचन करते है।"[2] उन्होने प्रयत्न—पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य को आनन्द की साधनावस्था और उपभोग—पक्ष को लेकर चलने वाले काव्य को आनन्द की सिद्धावस्था की श्रेणी मे विभाजित किया । प्रथम के अन्तर्गत 'रामचरित

---

1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि (भाग—एक), पृष्ठ 110

2 डॉ० सकटाप्रसाद मिश्र द्विवेदी युगीन साहित्य—समीक्षा, पृष्ठ 198

मानस और द्वितीय के अन्तर्गत 'सूरसागर' को रखते हुए उन्होने 'रामचरित मानस' को हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ महाकाव्य घोषित किया क्योकि उसकी गति व्यष्टि से समष्टि की ओर है जो मानव—हृदय को उत्कर्ष की ओर ले जाने मे सक्षम है ।[1] डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने शुक्लजी की आलोचना दृष्टि के सन्दर्भ मे लिखा है कि " कवि समाज (श्रोता या पाठक) और कृति की अतर—प्रक्रिया मे वे कृति या रचना को आलोचना के केन्द्र मे रखना चाहते हैं। इस प्रकार आचार्य शुक्ल के काव्य—विवेचन मे रचना की स्वायत्त सत्ता है न वह अध्यात्म से बाधित है और न उपयोगितावाद से । पर दूसरी ओर वह अपने रचनाकार और समाज से स्वतत्र नही है ।"[2] इस तरह चतुर्वेदीजी इस तथ्य की ओर सकेत करते है कि शुक्लजी की आलोचना दृष्टि मे समाज की सत्ता सदैव विद्यमान रहती है वे उससे हट कर नही सोचते है । समाज के बारे मे सोचना समकालीन यथार्थदृष्टि से भी हो सकता है पर वह लोकमगल का जनक हो ही— यह नही कहा जा सकता। अतएव अलग से 'लोकमगल को आलोचना दृष्टि के लिए मूल्य मानना शुक्लजी की विशेषता है ।

द्विवेदी युगीन अन्य आलोचको मे डॉ० श्यामसुन्दर दास और बाबू गुलाबराय की आलोचना दृष्टि का विवेचन करना प्रासगिक होगा । डॉ० श्यामसुन्दर दास की धारणा है कि साहित्य का उद्देश्य केवल मनुष्य के मस्तिष्क को सतुष्ट करना नही है, बल्कि उसके जीवन को सुखी और सुन्दर बनाने की चेष्टा करना है । इस सम्बन्ध में डॉ० दास लिखते हैं कि "हम यह बात कई स्थानो पर लिख चुके है कि सब प्रकार के काव्यो की विशेषता यही

---

1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि (भाग—एक) पृष्ठ 147 से 150

2 डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास, पृष्ठ 208—209

होती है कि वह पढने वालो मे भिन्न–भिन्न मनोवेगो को उत्तेजित करके उनमे अलौकिक आनन्द का उद्रेक करे । यही मनोवेग या भाव साहित्य–शास्त्र के मूल मे कहे जा सकते है ।"[1] डॉ० दास ने काव्यानन्द को लोकहित के रूप मे स्वीकार किया है । उन्होने काव्यानन्द को प्राकृतिक आनन्द से भिन्न माना है । आलोचक के आवश्यक गुणो की ओर निर्देश करते हुए उन्होने लिखा है कि– "सबसे पहले समालोचक को विद्वान बुद्धिमान, गुणग्राही और निष्पक्ष होना चाहिए और जिसमे ये सब गुण न हो उसको समालोचना के कार्य से दूर ही रहना चाहिए। किसी बुरे भाव अथवा पक्षपात से प्रेरित होकर वह जो कुछ कहेगा उसकी–गणना निदा अथवा स्तुति मे ही होगी । उसके कथन को आलोचना मे स्थान नही मिलेगा।"[2] द्विवेदीयुगीन आलोचक बाबू गुलाबराय की दृष्टि समन्वयवादी है । इनकी समीक्षा मे नैतिक मूल्यो का समावेश है । आप काव्य को शुद्ध कला तक सीमित नही रखना चाहते । सौन्दर्य बोध पर बल देते हुए भी उन्होंने काव्य को 'लोकहिताय' माना और उसकी व्याख्या भी कल्याण अभिनिवेशी किया है । अपने ग्रथ 'सिद्धान्त और अध्ययन' मे उन्होने तुलसी के स्वान्त सुखाय पर जो विचार प्रकट किया है, उसका कुछ अश उल्लेखनीय है– "स्वान्त सुखाय से केवल उनका यही अभिमत है कि उनके, राम गुणगान मे सत्काव्य स्वान्त सुखाय ही लिखा जाता है किन्तु इसका यह अर्थ नही कि वह श्रोताओ के लिए नही होता । काव्य के कहने और सुनने मे सुख मिलता है, लेकिन आत्माभिव्यक्ति का सुख अभिव्यक्त कर देने मात्र से समाप्त नही हो जाता । गोस्वामी तुलसीदास जी यद्यपि स्वान्त सुखाय लिखते हैं फिर भी उनको बुधजनो के आदर की चिन्ता रहती है । काव्य के प्रयोजन मे यदि सामाजिकता को भी

---

1 डॉ० श्यामसुन्दर दास साहित्यालोचन, पृष्ठ 161

2 वही वही, पृष्ठ 260

स्थान दिया जाय तो अनुचित न होगा ।"[1] इस प्रकार बाबू गुलाबराय की आलोचना दृष्टि काव्य मे समाज के दु ख–सुख के वर्णन को महत्त्व देती है। सुख–दु ख का वर्णन केवल यथार्थ चित्रण के लिए नही है, बल्कि इनके द्वारा किसी लोकोत्तर भाव भूमि की अनुभूति की तैयारी की भी है ।

इस सम्पूर्ण विवेचन के अत मे कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुगीन आलोचना दृष्टि की दिशा एव गति युगीन सामाजिक– सास्कृतिक भावना की ही अभिव्यक्ति है । कवियो की ही भॉति यहॉ आलोचको ने देश–काल–सापेक्ष, मानवीय गुणो एव शाश्वत तत्त्वो का उद्घाटन किया है। उनकी आलोचना सामाजिकता, नैतिकता तथा सास्कृतिक मूल्यो का आग्रह करती है । काव्य को उन्होने मनोरजन का साधन नही, बल्कि मस्तिष्क एव हृदय के परिष्कार एव परिमार्जन का साधन माना है । इसी परिष्कार एव परिमार्जन द्वारा ही व्यक्ति की वृत्तियॉ लोक मे सचरित होकर उच्च–मनोभूमि को प्राप्त होती है ।

---

1 बाबू गुलाबराय सिद्धान्त और अध्ययन, पृष्ठ 49

पंचम अध्याय

समाज सुधार और लोक-मगल

समाज सुधार और लोक-मगल -

आलोच्य युग की सामाजिक दशा सोचनीय थीं। समाज मे नारी, शूद्रो एव अत्यजो, किसानो, मजदूरो आदि की दशा अच्छी नही थी। द्विवेदी युगीन नारी अनेक सामाजिक कुरीतियो एव कुप्रथाओ जैसे– सती प्रथा, विधवा विवाह, बाल विवाह, अनमेल विवाह आदि के घेरे में बुरी तरह निगडबद्ध थी। अस्पृश्यो एव अन्त्यजो के साथ भेद–भाव किया जाता था और उन्हे समाज की मुख्य धारा से बहिष्कृत कर दिया गया था। सामाजिक स्तर पर नारी, अस्पृश्यो एव अत्यजो को हेय दृष्टि से देखा जाता था। किसानो, मजदूरो, श्रमिको की दशा अत्यन्त दयनीय थी। जमींदार, उद्योगपति, मिल–मालिक अनेक तरह से उनका शोषण कर रहे थे। द्विवेदीयुगीन कवियो ने सामाजिक स्तर पर बहिष्कृत एव शोषितो के पक्ष मे अपनी आवाज उठाई, जिसकी अनुगूँज द्विवेदी–युग के काव्य मे सर्वत्र सुनाई पडती है। उनकी करूणा, दया, सहानुभूति प्रेम, आदि का सतत् प्रवाह इन असहायो एव शोषितो की ओर हुआ है। कवियो ने इस बात पर बल दिया कि जब तक समाज मे शोषण की यह प्रक्रिया चलती रहेगी, राष्ट्र का समग्र विकास, बाधित रहेगा। कवियो ने जन-मानस का ध्यान इस तथ्य की ओर आकृष्ट किया कि सामाजिक–एकता और समत्व की भावना के बिना राजनीतिक एकता सम्भव नहीं है। अत उन्होने आग्रह किया कि पारस्परिक मतभेदो एव भेदभावो का परित्याग करके सभी के साथ समानता का व्यवहार करे। उनका यह दृष्टिकोण युगीन आवश्यकता के अनुरूप था, क्योकि बिना सामाजिक एकता से देश को पराधीनता से मुक्त कराना सम्भव नही था, महात्मा गाँधी ने सामाजिक भेद–भावो को दूर करने के लिए काफी प्रयास किया। अनेक सामाजिक एव राजनीतिक सगठनो ने भी उनकी दशा मे सुधार कर के उन्हें राष्ट्र की मुख्य धारा मे लाने का अथक् प्रयास किए।

द्विवेदीयुगीन कवियो एव उनकी काव्य रचनाओ मे वर्णित

सामाजिक दृष्टिकोण के सन्दर्भ मे आचार्य नददुलारे वाजपेयी का यह कथन सारगर्भित है–" द्विवेदीजी और उनके अनुयायियो का आदर्श यदि सक्षेप मे कहा जाय तो एक सात्त्विक ज्योति जगाना था। दीनता और दरिद्रता के प्रति सहानुभूति समय की सामाजिक और राजनीतिक प्रगति का साथ देना श्रृगार के विलास–वैभव का निषेध। ये सब द्विवेदी–युग के आदर्श हैं।
इन्ही आदर्शो के अनुरूप उस साहित्य का निर्माण हुआ जो अपनी कलात्मक पूर्णता का अवलम्ब लेकर चाहे चिरकाल तक स्थिर न रहे, परन्तु अपनी सत्वृत्ति के कारण चिर–स्मरणीय अवश्य होगा।"[1] स्पष्टतया वाजपेयी जी ने यहॉ द्विवेदीयुगीन कवियो की सामाजिक प्रतिबद्धता एव दायित्व के महत्त्व को स्वीकार किया है। द्विवेदीयुगीन काव्य–रचनाओ मे वर्णित सामाजिक दृष्टिकोण का विवेचन निम्न शीर्षको के अन्तर्गत किया गया है–

(क) छुआछूत और व्यक्ति की गरिमा -

देश मे जाति–प्रथा एव छुआछूत की नीव प्राचीन काल मे ही पड चुकी थी और तभी से यह हिन्दू समाज की एक अनिवार्य बुराई के रूप मे विद्यमान है । छठी शताब्दी ईसा पूर्व मे इस अमानवीय सामाजिक वैषम्य को दूर करने के लिए गौतम बुद्ध की करूणा का प्रवाह इन अस्पृश्य एव अत्यजो की ओर हुआ और उन्होने इसका जोरदार विरोध किया। प्रकारान्तर से इसका विरोध महावीर स्वामी, रामानद कबीर, नानक, तुकाराम, एकनाथ नामदेव जैसे मनीषियो एव सतो द्वारा किया गया । उन्नीसवी एव बीसवी शताब्दी मे भी इस सामाजिक बुराई का विरोध अनेक मनीषियो, सतो एव राष्ट्रवादियो द्वारा किया गया। इस सम्बन्ध मे रामधारीसिह दिनकर ने लिखा है कि "जाति प्रथा को चुनौती देकर बुद्ध ने इस देश मे एक महान आदोलन का आरम्भ किया जो प्राय, गॉधी तक चलता आया और आज भी चल रहा

---

1 आचार्य नददुलारे वाजपेयी हिन्दी साहित्य–बीसवी शताब्दी, पृष्ठ 11

है । उन्होने मनुष्य की मर्यादा को यह कहकर ऊपर उठाया कि कोई मनुष्य केवल ब्राह्मण कुल मे जन्म लेने से पूज्य नही हो जाता न कोई शूद्र होने से पतित हो जाता है । उच्चता और नीचता जन्म पर नही कर्म पर आधारित है।"[1] पाश्चात्य जीवन दर्शन की निकटता और वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने भारतीय समाज की इस अनिवार्य बुराई को झकझोर दिया । जिसके परिणाम-स्वरूप उन्नीसवी शताब्दी में राजा राममोहन राय, दयानद सरस्वती, विवेकानद आदि मनीषियो ने अस्पृश्यता का विरोध करते हुए उसे अमान्य घोषित किया और अत्यजों तथा शूद्रो को मानव–गरिमा प्रदान की । बीसवी शताब्दी के राष्ट्रवादियो ने भी समाज को छिन्न–भिन्न करने वाली इस बुराई का विरोध किया । यद्यपि गॉधीजी वर्ण व्यवस्था के समर्थक थे, फिर भी उन्होने इस अमानवीय एव अलोकतान्त्रिक बुराई का विरोध किया । "उन्होने अछूतो को 'हरिजन' अर्थात भगवान का आदमी कहा। उन्होने उनकी भलाई के लिए 'हरिजन नामक एक साप्ताहिक पत्र निकाला और 'हरिजन सेवक सघ' की स्थापना की। गॉधी दलितो एव अछूतो के उद्धार के कार्य मे आजीवन लगे रहे।"[2] इस प्रकार अस्पृश्यो एव अत्यजो की गरिमा को स्थापित करने का प्रयास प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक चलता रहा, परन्तु उसमे यथेष्ट सफलता न मिल सकी ।

द्विवेदीयुगीन कवियो ने इस अमानवीय व्यवस्था के विरूद्ध आवाज उठाई और अस्पृश्यो की गरिमा को अपने काव्य मे स्थापित किया । द्विवेदीयुगीन काव्य मे अस्पृश्यो को मनुष्यत्व प्रदान करने का स्वर सर्वत्र सुनाई पडता है ।

समाज मे अस्पृश्यो एव अत्यजो की स्थिति से हरिऔधजी

---

1 रामधारीसिह 'दिनकर सस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ 198

2 सपादक, प्रो० आर० एल० शुक्ल आधुनिक भारत का इतिहास, पृष्ठ 260

बडे दुखी थे। उन्होने 'तिलक और टीका[1] कविता मे लोभी पुरोहितो पण्डो को छूत–छात न करने तथा घर देखो भालो[2] कविता मे अभी तक छुआछूत का त्याग क्यो नही हुआ है का तीक्ष्ण शब्दो मे वर्णन किया है। वे वक्तव्य[3] कविता मे छूत–छात से छुटकारा न मिलने की ओर सकेत करते हैं तथा परिवर्तन[4] कविता मे छूत–छात से छुटकारा न मिलने पर दु ख प्रकट किया है। 'भगवती भागीरथी कविता मे उन्होने गगा माता से अन्त्यजो को पवित्र करने की याचना की है । हरिऔधजी का मानना है कि अस्पृश्य हरिजन दलित समाज के चाहे कितने ही निम्न अग क्यो न हो, उनका तिरस्कार नही किया जा सकता, जैसे दु खते हुये पॉवो की पीडा हाथ से मलकर ही हटाई जा सकती है –

नीच से नीच क्यो न हो कोई ।
है न ऊँचे टहल–समय टलते ।।
पॉव जब दुख रहे हमारे हो ।
हाथ तब क्या उन्हे नही मलते ।।[5]

कवि लोचनप्रसाद पाण्डेय ने "अन्तत हीन से हीन नर अस्पर्श्य अपने मित्र हो"[6] कहकर छुआछूत की भावना को समाप्त करने का सदेश दिया है ।

कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अछूतो की गरिमा को स्थापित करने के लिए प्राय अपनी सभी रचनाओ मे सहानुभूतिपूर्वक लिखा है ।

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' सरस्वती, फरवरी, 1918 ई०, पृष्ठ 97
2 वही पद्य प्रसून, पृष्ठ 158
3 वही वही , पृष्ठ 134
4 वही वही , वही
5 वही चोखे–चौपदे, पृष्ठ 67
6 लोचनप्रसाद पाण्डेय पद्य–पुष्पाजलि, पृष्ठ 18

साकेत मे क्षत्रिय कुल–भूषण राम निम्न–वर्गीय निषादराज को गले लगाकर अछूतोद्धार का सदेश देते हैं।[1] कवि ने आगे सभी मनुष्यो को एक ही मूल का कहकर सामाजिक वैषम्य को समाप्त करने की प्रेरणा दी है । कवि ने लिखा है–

एक शाल मे बहु विभिन्न दल और विविध वर्धित फल–फूल,
यथा विचित्र विश्व–विटपी मे अगणित विटप, एक ही मूल ।[2]

उल्लेखनीय है कि कवि ने यहाँ, 'एक पथ दो काज की कहावत को चरितार्थ किया है । प्रथम वह देश मे व्याप्त छुआछूत को समाप्त करने की प्रेरणा देता है और दूसरा, ब्रिटिश सरकार द्वारा विभिन्न क्षेत्रो मे किए जा रहे भेदभाव को समाप्त करने की माँग भी किया है । जहाँ उच्च–वर्ग के लोगो ने अपने ही समाज के एक बडे अग को विकास की मुख्यधारा से अलग–थलग कर दिया था, वहाँ अँग्रेज भी गोरा–काला, सभ्य–असभ्य का राग अलापते हुये, राष्ट्र का अपमान कर रहे थे ।

मैथिलीशरण गुप्त ने 'भारत–भारती' के 'वर्तमान खण्ड' मे देश मे शूद्रत्व एव पशुता के आज भी वर्तमान होने पर दु ख प्रकट किया है । उनका मानना है कि जब उच्च–वर्ग स्वय अपने धर्म एव कर्त्तव्य से च्युत हो चुके हैं, तो शूद्रो के साथ ऐसा भेदभावपूर्ण व्यवहार क्यो किया जा रहा है?[3]

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत पृष्ठ 72

2 वही वही, पृष्ठ 201

3 भारत ! तुम्हारा आज यह कैसा भयकर वेष है ?
है और सब नि शेष केवल नाम ही अब शेष है ।
ब्रह्मत्व राजन्यत्व युत वैश्यत्व भी सब नष्ट है,
शूद्रत्व और पशुत्व ही अवशिष्ट है हा ! कष्ट है ।।

मैथिलीशरण गुप्त भारत–भारती, पृष्ठ 162

गुप्तजी का मन इस बात से द्रवीभूत होता है कि अनादि काल से ही अस्पृश्यो को समाज से बहिष्कृत कर दिया गया है और उनका अमानवीय शोषण हो रहा है । कवि का यह मानना है कि इस दशा का असली कारण है समाज मे व्याप्त रूढि एव परम्परा । यह रूढि भारतीय समाज के स्वस्थ जीवन रस को खत्म कर चुकी है—

रूढि बिना जड की यह खेल,
चूस रही जीवन—रस खेल ।[1]

कवि ने आगे उनकी दयनीय दशा और विवशता का बडा ही मार्मिक चित्रण किया है—

दयनीय फिर भी आज भी—यह दीन है,
जीता किसी विध, विवश, मरणाधीन है ।
यह तो नही सर्वथा गति—हीन है,
पर बद्ध पक्षी—सा क्षणिक उड्डान है ।[2]

वास्तव मे अस्पृश्य भी उसी समाज का एक अग है, जिसमे हिन्दू रहता है । लेकिन वही सवर्ण हिन्दू अस्पृश्यो का शोषण करता है । वह उनकी मानसिक पीडा एव वेदना की अनुभूति करने मे सर्वथा असफल है । आलोच्य युग के सर्वश्रेष्ठ कवि मैथिलीशरण गुप्त सोये हुए हिन्दू समाज को जागने का आह्वान करते हुए 'जाति बहिष्कार' कविता मे लिखते हैं—

हे हिन्दू समाज, उठ जाग
लगी हुई है घर मे आग ।
मची हुई है कुल की लूट,
गई हिये की भी क्या फूट ?[3]

---

1 मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू , पृष्ठ 145
2 वही कुणाल गीत, पृष्ठ 106
3 वही हिन्दू पृष्ठ 132

कवि मैथिलीशरण गुप्त ने सकीर्ण विचारधारा का परित्याग कर जाति—पॉति को न मानने की कामना की और उसे अनुचित घोषित किया है।[1] कवि ने गॉवो का सुधार'[2] शीर्षक कविता मे वर्तमान समाज मे व्याप्त जाति—व्यवस्था एव अस्पृश्यता का विरोध करते हुए उस पर आघात किया है। इसी प्रकार उनकी अछूतो की उद्धार[3] कविता मे भी अस्पृश्यो की उपेक्षा का हृदय स्पर्शी चित्र अकित किया गया है । वे हिन्दुओ का आह्वान करते हैं कि इन अस्पृश्यो को समाज की मुख्यधारा मे लाना उनका कर्त्तव्य है । आगे कवि ने उनकी दशा का वर्णन इस प्रकार किया है—

कुत्ते—बिल्ली से भी दूर,
रक्खे अपनो को जो क्रूर ।
क्या अचरज यदि उनको अन्य,
समझे घृण्य, असभ्य, जघन्य ।[4]

---

1 व्यापकता से होकर भ्रष्ट
न हो सकुचितता मे नष्ट ।
वर्ण भेद का अनुचित भाव,
करे न हिन्दूपन पर घाव ।

मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू , पृष्ठ 123

2 मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू , पृष्ठ 111

3 रहो न हे हिन्दू , सकीर्ण,
न हो स्वय ही जर्जर—जीर्ण ।
बढो, बढाओ अपनी बॉह
करो अछूत जनो पर छॉह ।

मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू , पृष्ठ 138

4 मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृष्ठ 140

समाज को शुद्ध रखने वाले 'मेहतर' को समाज अस्पृश्य मानता है, उसकी उपेक्षा करता है एव उससे घृणा करता है। कवि मैथिलीशरण गुप्त अछूतो का उद्धार कविता मे उसे धन्य एव पवित्र घोषित करते है—

सबके हित विज्ञानादर्श
पर न घृणा—मय हो अस्पर्श।
धन्य 'महत्तर' पावन धन्य,
जिनसे निर्मल हैं सब अन्य ।[1]

मैथिलीशरण गुप्त ने दीन—हीन स्थिति मे जीवन —यापन करने वाले शूद्रो, अस्पृश्यो एव हरिजनो की अवहेलना का भी चित्रण किया है । अछूतो का उद्धार'[2] कविता मे उन्होने हिन्दुओ को सम्बोधित करते हुए यह बताया है क्योकि वे नीच इस लिए है कि उच्च वर्ग की सभी धृष्टता को सहन करते है।

गुप्तजी ने शूद्रों की गरिमा का आख्यान जयभारत रचना मे भी किया है । कर्ण से जब जाति एव वर्ण का परिचय पूछा जाता है तो वह नि शक होकर उत्तर देता है कि "मैं मनुष्य हूँ साथ ही यह भी कहता है कि मेरे कर्म से स्वत वर्ण का परिचय प्राप्त हो जायेगा ।"[3] इस प्रकार कवि ने धर्म एव कर्त्तव्य से च्युत (जिसका आख्यान 'भारत—भारती मे विस्तार से 'वर्तमान खण्ड मे हुआ है) उच्च—वर्ग को यह बताना चाहा है कि

---

1 मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृष्ठ 145

2 श्वपच नही गोपच से हीन,
पर हॉ हिन्दू है वे दीन ।
इसीलिए हैं वे अस्पृष्ट
क्यौंकि दलित है हिन्दू धृष्ट ।

मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू, पृष्ठ 147

3 मैथिलीशरण गुप्त जयभारत, पृष्ठ, 53—54

वास्तव मे जिन्हें तुम लोग अस्पृश्य कहते हो वे वास्तव मे अस्पृश्य नही है । कवि यहॉ इस तथ्य की स्थापना करता है कि उच्च–वर्ण मे जन्म होने से कोई श्रेष्ठ नही होता बल्कि उसकी श्रेष्ठता का मानदड मानवीय मूल्य और स्वय का आदर्शमय जीवन होता है ।

इस प्रकार यह प्रश्न उठता है कि अपने स्वार्थ सिद्धि के लिए अस्पृश्य वर्ग के साथ ऐसा अमानवीय व्यवहार करना क्या उचित है? जब सभी मानव जन्म के पूर्व समान हैं तो जन्म लेते ही ऐसा घृणा का व्यवहार उनके साथ करना क्या न्यायसगत है? प्रकृति मानव को पृथक् नही करती तो मानव को मानव से अलग करने का क्या अधिकार है की वह अपने को श्रेष्ठ एव अन्य को गर्हित एव उपेक्षणीय माने ? जिसे उच्च वर्ग उपेक्षणीय एव गर्हित समझता है क्या वे शारीरिक एव मानसिक सरचना मे उनसे अलग हैं? अच्छे –बुरे न्यायी अन्यायी, सभी वर्गो मे है ,फिर एक वर्ग समूह को अस्पृश्य घोषित करना क्या उचित एव तर्कसगत होगा ? वास्तविकता तो यह है कि जिन्हे हम नीच और हेय समझते हैं उनमे मानवीयता एव सहनशीलता हमसे अधिक है, जिसके कारण वह सब कुछ मौन होकर सहन कर लेता है । इन प्रश्नो का बडा ह्रदय स्पर्शी एव मार्मिक वर्णन मैथिलीशरण गुप्त की 'किसान' एव सियारामशरण गुप्त की अनाथ रचनाओ मे हुआ है । 'किसान' मे किसान एव उसकी पत्नी को सबल के अत्याचार के कारण स्वदेश का त्याग करके कुली का काम करना पडता है । 'अनाथ' मे मोहन पुलिस तथा जमीदार के अत्याचार को मूक होकर सहन करता है।

इस सम्पूर्ण विवेचन के अत मे कहा जा सकता है कि द्विवेदी युगीन कवियो ने प्राचीन काल से चली आ रही छुआछूत जैसी अमानवीय कुरीति के विभिन्न मानवीय आयामो का विस्तार से वर्णन अपने काव्य मे किया है । आलोच्य युग के कवियो ने अस्पृश्यो एव दलितो की गरिमा को अपने काव्य मे स्थापित किया । रचनाकार युगद्रष्टा होता है, वह

इस सामाजिक बुराई के दुष्परिणाम को अच्छी तरह देख रहा था उसके सामने अतीत वर्तमान और भविष्य तीनो एक साथ खडे थे । वह जानता है कि युगीन परिस्थितियो मे इस प्रकार के सामाजिक वैषम्य से जनकेद्रित आधुनिक सभ्यता की पूर्ति होना असम्भव है। आधुनिक युग स्वतत्रता समानता और भातृत्व की मॉग करता है । वह इस तथ्य को अच्छी तरह समझता है कि अस्पृश्यता जैसी सामाजिक बुराई का अस्तित्व इसलिए है कि इससे समाज के एक स्वार्थी वर्ग का हित उससे जुडा हुआ है । साथ ही वह अपने राष्ट्रीय दायित्व को भी समझता है इस अलोकतात्रिक और अमानवीय बुराई के चलते देश मे एकता सम्भव ही नही हो सकती । इसीलिए द्विवेदीयुगीन कवियो ने छुआछूत को समाप्त कर अस्पृश्य एव दलित वर्ग को समाज मे आत्मसम्मान दिलाने का आह्वान अपने काव्य मे किया है और मानव रूप मे उनकी पहचान की गई है । उनको पशु समझे जाने की भर्त्सना अनेक स्थलो पर की गई है उच्चवर्ग के दम्भ को धिक्कारा गया है । इस प्रकार नकारात्मक एव सकारात्मक दोनो शैलियो से हिदू समाज के दलित वर्ग की काव्य मे प्रतिष्ठा की गई है। यद्यपि उनमे कबीर जैसी तल्ख उक्तियाँ नहीं है, पर उन्होने अथाह सवेदनशीलता और मर्मभेदी दृष्टि का परिचय दिया है ।

(ख) नारी का उत्थान मध्ययुगीन सामती रूढ़ियों का खडन

प्राचीन काल मे नारी–विषयक यह धारणा यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' की अनुगूँज स्मृतियो मे सुना जा सकता है, किन्तु उन्ही स्मृतियो ने नारी का 'स्वत्व' भी छीन लिया और ऐसा विधान किया गया कि हर स्थिति मे उसे पुरूष के अधीन करके उसके मूल स्वरूप को आच्छादित कर दिया । भारतीय जीवन दर्शन मे निवृत्ति मार्ग के प्रभाव से सन्यास की प्रतिष्ठा हुई । मोक्ष को जीवन का अतिम लक्ष्य घोषित किया गया और उसे प्राप्त करने का साधन सन्यास, तपस्या आदि को माना गया । स्त्री को इसमे बाधक माना गया और उसकी निदा की जाने लगी । यही से नारी

के वैदिक कालीन चरित्र का हरण हुआ और उसके विकास के मार्ग मे अनेक अपात्रता रूपी रोडे खडे किए गये—— जिसका परिणाम हुआ स्त्री जाति का विभिन्न सामाजिक बुराइयो जैसे बालविवाह विधवा विवाह निषेध बहु विवाह अनमेल विवाह स्त्री—पुरूष अधिकारो मे असमानता के चक्रव्यूह मे फॅसना। इस तरह धीरे—धीरे स्त्री की स्थिति असहाय हो गई । परम्परागत दृष्टि से स्त्री के मॉ पत्नी आदि सामाजिक सबधो की प्रशसा किया गया लेकिन व्यक्ति के रूप मे उनका स्थान अत्यन्त नीचे था । उसे वैयक्तिक स्वतत्रता नही थी । जन्म से मृत्युपर्यत उसे पुरूष के (क्रमश पिता, पति, पुत्र आदि) अधीन कर दिया गया । बाल विवाह की प्रथा के फलस्वरूप स्त्री को शिक्षा से वचित होना पडा जिससे उसके विकास का मार्ग अवरूद्ध हो गया । यहॉ यह उल्लेखनीय है कि निम्न वर्ग की स्त्रियो की स्थिति उच्च वर्ग की स्त्रियो से अच्छी थी क्योकि वे उत्पादन कार्य मे भाग लेती थी, जबकि उच्चवर्ग की स्त्रियॉ आर्थिक रूप से पुरूष पर आश्रित थी । इस आश्रय की कीमत उन्हे, अपनी वैयक्तिक स्वतन्त्रता का हरण और हर प्रकार के शोषण की शिकार होकर चुकाना पडा।

उन्नीसवी शताब्दी के पुनरूत्थानवादी आदोलन के फलस्वरूप नारी—विषयक दृष्टिकोण मे परिवर्तन हुआ । उत्तर वैदिक काल से लेकर मध्यकाल तक नारी को दबाकर रखा गया था परन्तु पाश्चात्य जीवन दर्शन के प्रगतिशील तत्त्वो बुद्धिवाद, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, समानता, स्वतन्त्रता एव बधुत्व आदि की भावना ने इस बात को अमान्य कर दिया कि नैतिकता जीवन—दर्शन आदि पुरूष और स्त्री के लिए अलग—अलग हो । भारतीय विचारक, पाश्चात्य चितन को आत्मसात् करके इस तरह के भेदभाव को दूर करने के लिए अग्रसर हुए । स्वामी विवेकानद एव लोकमान्य तिलक के प्रवृत्तिमार्गी चितन ने गृहस्थ्य जीवन के महत्त्व को प्रतिष्ठित किया जिससे स्त्री सम्मान मे वृद्धि हुई । इस सम्बन्ध मे रामधारीसिह दिनकर लिखते है—

"निवृत्ति के साथ सन्यास और प्रवृत्ति के साथ गार्हस्थ्य की महिमा बढती है । और जब–जब गार्हस्थ्य के गौरव मे वृद्धि होती है नारियो की पद–मर्यादा आप से आप बढ जाती है । पुनरूत्थान ने प्रवृत्ति की जो महिमा जगायी उससे गार्हस्थ्य गौरवपूर्ण हो उठा और उसके स्वाभाविक परिणाम के रूप मे नारियॉ आदरणीया हो उठी।" [1] राष्ट्रवादी नेताओ ने भी स्त्री–पुरूष समानता पर बल दिया । गॉधीजी के आह्वान पर वे स्वतत्रता–सग्राम मे सहभागिता के लिए आगे आई । नारी के प्रति हुए इस वैचारिक परिवर्तन का प्रभाव द्विवेदीयुगीन कवियो पर भी पडा । अत उन्होने प्राचीन काल से चली आ रही सामाजिक रूढियो एव बुराइयो का खण्डन करके स्त्री–गौरव का मण्डन किया है ।

बाल विवाह की प्रथा ने अनेक सामाजिक कुरीतियो को जन्म दिया । द्विवेदी युगीन काव्य मे इसका विरोध किया गया । मैथिलीशरण गुप्त ने भारत–भारती' मे उन माता–पिता को आडे हाथो लिया है जो गार्हस्थ्य–सुख को शीघ्र पाने के लिए अपनी सतान का विवाह अल्पायु मे कर देते है । कवि ने उनके इस वात्सल्य को वैर की सज्ञा देते हुए लिखा है–

अल्पायु में हैं हम सुतो का ब्याह करते किस लिए ?
गार्हस्थ्य का सुख शीघ्र ही पाने लगे वे, इसलिए ?
वात्सल्य है या वैर है यह, हाय ! कैसा कष्ट है ?
परिपुष्टता के पूर्व ही बल–वीर्य्य होता नष्ट है ।[2]

द्विवेदीयुगीन कवियो ने विधवा–समस्या पर भी अपने विचार प्रकट कर इस कुरीति से मुक्त होने का संदेश दिया है । श्रीधर पाठक ने विधवाओ की कारूणिक अवस्था का हृदयद्रावक चित्रण किया है । उन्होने अबलाओ को तोते की भॉति कैद रखने का विरोध किया है । कवि उनके उद्धार की कामना

---

1 रामधारीसिह दिनकर पत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त, पृष्ठ 19

2 मैथिलीशरण गुप्त भारत–भारती, पृष्ठ 149

करता है कि "बेगि उबरि निबल अबला गन सुजान सुधा रस पीजै।" [1] कवि श्रीधर पाठक हेमत कविता मे ऋतु की शोभा का वर्णन करते–करते विधवाओ की स्थिति का चित्रण करने लगते है । पाठकजी भगवान से बाल विधवाओ पर दयालु होने की विनय करते हैं ।[2] कवि नाथूराम शर्मा की कविताओ मे विधवा–विवाह का समर्थन मिलता है । इस दृष्टिकोण से निषिद्ध जीवन [3] हमारा अध पतन [4] आदि कवितायें प्रमुख हैं । इनमे कवि ने विधवाओ को धैर्य धारण करके पुनर्विवाह करने के लिए प्रेरित किया है । कवि मैथिलीशरण गुप्त बेजोड विवाह को विधवाओ की सख्या मे वृद्धि का कारण मानते हुए लिखते हैं–

प्रति वर्ष विधवा–वृन्द की सख्या निरन्तर बढ रही,
रोता कभी आकाश है, फटती कभी हिलकर मही ।
हा ! देख सकता कौन ऐसे दग्धकारी दाह को ?
फिर भी नही हम छोडते हैं बाल्य–वृद्ध विवाह को ।।[5]

दहेज प्रथा भारतीय समाज की एक अनिवार्य बुराई बन चुकी थी । श्रीगोपालशरण सिह ने दहेज प्रथा का डटकर विरोध किया है । कवि का मानना है कि इस कुप्रथा ने न जाने कितने परिवारो और उनकी कन्याओ का जीवन नष्ट कर दिया है । इस कुरीति को दूर किये बिना हिन्दू जाति की

---

1 श्रीधर पाठक सरस्वती, नवम्बर, 1900 ई० पृष्ठ 396

2 प्रार्थना अब ईश की सब करहु कर जुग जोर ।
दीनबधु सुदृष्टि कीजै बाल–विधवा–भोर ।
श्रीधर पाठक मनोविनोद, पृष्ठ 76

3 नाथूराम शर्मा 'शकर' अनुराग–रत्न, पृष्ठ 113

4 वही वही, पृष्ठ 206

5 मैथिलीशरण गुप्त भारती–भारती, पृष्ठ 150

उन्नति असम्भव है ।[1] मैथिलीशरण गुप्त 'भारत—भारती मे 'वर—कन्या—विक्रय'[2] मे कहते हैं कि इस दहेज के चलते लोग धन के आगे आत्मा तक को बेच दते हैं । प० लोचनप्रसाद पाण्डेय ने उन युवतियो की व्यथा को चित्रित किया है जो न अधी हैं और न कानी परन्तु इस दहेजरूपी दानव के भय से व्याकुल हैं । कवि इस कुप्रथा की बुराई करते हुए समाज पर व्यग्य करता है—

या तो करके कृपा कुलीनो मे कन्याये ।
दया सिन्धु दु ख दलन यहाँ पर मत जन्माये ।।
जन्मे तो दो—चार वर्ष ही मे मर जाये ।
सहने को यो व्यथा जवान न होने पाये ।।
या युवको के चित्त मध्य यह बात बिठा दे ।
वे दहेज की महा घृणित दुष्प्रथा उठा दे ।[3]

इस प्रकार द्विवेदीयुगीन कवियो ने सामाजिक कुप्रथाओ एव कुरीतियो का

---

1 भगवान ! हो उत्थान हिन्दू जाति का कैसे भला ?
नित यह कुरीति दहेज वाली घोटती उसका गला ।
अगणित कुटुम्बो का किया इस राक्षसी ने नाश है ।
तो भी मुझे अभी अहो इसकी रूधिर की प्यास है ।

ठा० गोपालशरण सिह सरस्वती, जून, 1919 ई०, पृष्ठ 329

2 बिकता कही वर है यहॉ, बिकती तथा कन्या कही,
क्या अर्थ के आगे हमे अब इष्ट आत्मा भी नही !
हा ! अर्थ तेरे अर्थ हम करते अनेक अनर्थ हैं
धिक्कार फिर भी तो नही सम्पन्न और समर्थ है ?

मैथिलीशरण गुप्त भारत—भारती पृष्ठ 150

3 प० लोचनप्रसाद पाण्डेय सरस्वती, अगस्त, 1914 ई०, पृष्ठ 46

यथार्थ चित्रण करके जन-मानस को नारी की पीडा एव वेदना के प्रति सवदनशील बनाया और उन्हे इन रूढियो एव कुरीतियो के दुष्परिणाम से अवगत कराया । साथ ही कवि सामाजिक परिष्कार एव परिमार्जन की प्रेरणा देता है। जहाँ कवियो ने रूढियो एव बुराइयो को दूर करने का प्रयास किया है वही उन्होने अपनी रचनाओ मे नारी गौरव को स्थापित किया है। साकेत के प्रथम सर्ग मे कवि मैथिलीशरण गुप्त ने स्त्री--पुरूष साम्य का वर्णन करते हुए लिखा है--

धन्य है प्यारी तुम्हारी योग्यता
मोहनी--सी मूर्ति मजु--मनोज्ञता ।
धन्य जो इस योग्यता के पास हूँ,
किन्तु मै भी तो तुम्हारा दास हूँ ।
"दास बनने का बहाना किस लिए ?
क्या मुझे दासी कहाना इसलिए ?
देव होकर तुम सदा मेरे रहो
और देवी मुझे रक्खो अहो !
उर्मिला यह कह तनिक चुप हो रही
तब कहा सौमित्र ने कि यही सही ।
तुम रहो मेरी हृदय--देवी सदा,
मै तुम्हारा हूँ प्रणय--सेवी सदा ।"[1]

कवि मैथिलीशरण गुप्त नारी स्वावलम्बन के पक्षधर है । सीताजी, जो राज परिवार से सम्बन्धित है स्वावलम्बन का सदेश देती हुई कहती है--

औरो के हाथो यहाँ नही पलती हूँ
अपने पैरो पर खडी आप चलती हूँ ।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत पृष्ठ 20

श्रमवारि विन्दुफल स्वास्थ्यशुक्ति फलती हूँ
अपने अचल से व्यजन आप झलती हूँ ।
तनु—लता—सफलता—स्वादु आज ही आया
मेरी कुटिया मे राज—भवन मन भाया ।[1]

द्विवेदी युगीन कवियो ने आधुनिक नारी मे राष्ट्रीय भावना को सचरित करके उसे गौरवान्वित किया है । गॉधीजी के नेतृत्व मे चल रहे राष्ट्रीय आदोलन मे महिलाएँ भी भाग ले रही थी अत कवियो ने नारी की वीरागना आत्मोत्सर्ग की भावना तथा गरिमामयी रूप का चित्रण करके उसे गौरवान्वित किया है । साकेत के द्वादश सर्ग मे उर्मिला जब राम—रावण के बीच चल रहे युद्ध का समाचार सुनती है तो वह पूरे उत्साह से युद्धभूमि मे जाने की बात करती है ।[2] शत्रुघ्न के यह कहने पर कि "क्या हम सब मर गये हाय! जो तुम जाती हो "[3] वह युद्ध मे घायलो की सेवा करने का आग्रह करती है। कवि ने उर्मिला की करूणा का बडा ही उदात्त चित्रण किया है—

वीरो पर यह योग भला क्यो खोऊँगी मैं
अपने हाथो घाव तुम्हारे धोऊँगी मैं ।
पानी दूँगी तुम्हे, न पल भर सोऊँगी मै ।
गा अपनो की विजय परो पर रोऊँगी मैं ।[4]

आत्मोत्सर्ग करने वाली वीरागना का दर्शन हमे रामनरेश त्रिपाठी की रचना पथिक और 'स्वप्न' मे भी होता है 'पथिक खण्डकाव्य मे पथिक की पत्नी उसके लिए लाये गये विष का पान, इस लिए

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत पृष्ठ 104
2 वही वही पृष्ठ 235
3 वही वही पृष्ठ 235
4 वही वही पृष्ठ 236

करती है कि उसका पति देश को स्वतत्र कराने का अवसर प्राप्त कर सके

स्वप्न खण्ड काव्य मे सुमना अपने पति को युद्ध मे भेजने का आग्रह करती हुई कहती है—

कहती है यह प्रकृति सदा तुम
प्रेम करो केवल अपने पर
गृह शिक्षा कहती है अपने
कुल पर रक्खो प्रीति शक्ति भर
जनता कहती है—स्वदेश पर
कर दो निज सर्वस्व निछावर
और कर्म कहता है रक्खो
जीव मात्र पर प्रेम निरन्तर ।[1]

जब सुमना यह देखती है कि उसका पति देश के लिए आत्मोत्सर्ग करने मे असमर्थ है तो वह पुरूष वेश मे स्वय युद्ध स्थल मे पहुँचती है । पत्नी का वीरागना रूप देखकर वसन्त मे उत्साह का सचरण होता है और अन्तत वह शत्रु पर विजय प्राप्त करता है ।

मैथिलीशरण गुप्त ने भारत—भारती मे इस तथ्य पर प्रकाश डाला है कि यदि स्त्रियो को शिक्षा का समुचित अवसर दिया जाय, तो वे पुरूष से किसी भी स्थिति मे पीछे नही रहती । अपनी इस धारणा की पुष्टि मे कवि ने लिखा है—

क्या कर नही सकती भला यदि शिक्षिता हो नारियॉ ?
रण—रग, राज्य सुरू धर्म्म—रक्षा कर चुकी सुकुमारियॉ ।
लक्ष्मी अहल्या, बायजाबाई, भवानी, पद्मिनी
ऐसी अनेको देवियॉ है आज जा सकती गिनी

---

1 रामनरेश त्रिपाठी स्वप्न, पृष्ठ 41

*   *   *

सोचा नरो से नारियॉ किस बात मे है कम हुई
मध्यस्थ वे शास्तार्थ मे हैं भारती के सम हुई ?[1]

कवि ने यशोधरा कृति मे स्त्री—पुरूष समानता की घोषणा करते हुए स्त्री को दया की साक्षात मूर्ति बताया है ।[2] कवि आगे यशोधरा के विरह का उदात्त चित्रण करता हुआ लिखता है –

आओ प्रिय ! भव मे भाव—विभाव भरे हम
डूबेगे नही कदापि तरे न तरे हम ।
कैवल्य—काम भी काम- स्वधर्म धरे हम ।
ससार—हेतु शत बार सहर्ष मरे हम ।[3]

द्विवेदी युगीन काव्य मे प्रेम का स्वरूप सामती परिवेश के प्रेम से भिन्न है हरिऔध के काव्य मे नारी के महान् स्वरूप का उद्घाटन हुआ है । उन्होने नारी के प्रति उच्च भावना को सम्मुख रखकर देश—प्रेमिका लोक—सेविका धर्म—प्रेमिका इत्यादि नायिकाओ के नवीन रूप की उद्भावना की है ।'प्रियप्रवास' का सप्तदश सर्ग तो नारी गौरव का सर्ग है । जिसमे प्राय इन सभी नायिकाओ का चित्रण किया गया है । कवि की धारणानुसार समाज की कल्याण-शक्ति नारी है । उनकी आर्यबाला शीर्षक कविता आदर्श नारी की प्रशस्ति मे लिखी गई है ।[4] उसमे नारी के त्याग तपस्या, आत्मोत्सर्ग आदि

---

1 मैथिलीशरण गुप्त भारत—भारती पृष्ठ 147

2 दीन न हो गोपे हीन नही नारी कभी
भूत दया—मूर्ति वह मन से शरीर से ।
मैथिलीशरण गुप्त यशोधरा, पृष्ठ 110

3 मैथिलीशरण गुप्त यशोधरा, पृष्ठ 81

4 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध सरस्वती फरवरी, 1919 ई०,पृष्ठ 73

गुणो का यशोगान किया गया है । हरिऔधजी ने प्रियप्रवास मे राधा के व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए लिखा है—

सलग्ना हो विविध कितने सान्त्वना—कार्य्य मे भी ।
वे सेवा थी सतत् करतीं वृद्ध—रोगी जनो की ।
दीनो हीनो निबल विधवा आदि को मानती थीं
पूजी जाती ब्रज—अवनि मे देवियो सी अत थी ।।[1]

गुप्तजी ने 'साकेत के 'नवम सर्ग' मे उर्मिला के उदात्त प्रेम का चित्रण किया है । उर्मिला वैयक्तिक दु ख से दुखी है, परन्तु वह जन—सामान्य के कल्याण की कामना करती है ।

इस सम्पूर्ण विश्लेषण के अन्त मे निष्कर्षत कहा जा सकता है कि द्विवेदी युगीन कवियो ने नारी को युग के वातायन से देखा है। द्विवेदी—युग मे चित्रित नारी वासना की वस्तु नही बल्कि समाज एव राष्ट्र की गति है । कवियो ने नारी की सहनशीलता, धैर्य, दया, करूणा, आत्मोत्सर्ग की भावना आदि को पूर्ण सहानुभूति के साथ चित्रित कर के उसे समाज एव राष्ट्र की मुख्य धारा से जोडा है ।

(ग) शोषण की खिलाफत - नवीन दृष्टि का उन्मेष

वैदिक कालीन सामाजिक, धार्मिक और आर्थिक दशा मे जो समत्व दृष्टि थी, वह उत्तर वैदिक काल से क्षीण पडने लगी । सबसे पहले पुरोहितो ने धार्मिक—भेदभाव द्वारा सामाजिक वैषम्य को जन्म दिया । साथ ही अश्वमेध यज्ञ, सोम यज्ञ, वाजपेय यज्ञ, राजसूय यज्ञ आदि द्वारा राजन्य वर्ग का महिमा मण्डन करके उसे ईश्वर का प्रतीक बताया । इसके बदले उन्होने दान—दक्षिणा के नाम पर अधिक धन का सग्रह करना प्रारम्भ किया। धन की महत्ता बढ गयी । पहला, जिसे रक्षा का भार था वह अहकार,

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृष्ठ 208

दम्भ आदि से युक्त हुआ और दूसरा जिसके ऊपर व्यवस्था का दायित्व था वह धन के आगे नत मस्तक हुआ । यद्यपि प्राचीन काल मे हमे जनतात्रिक शासन प्रणाली का साक्ष्य मिलता है लेकिन राजतत्रात्मक प्रणाली की उन पर विजय से वह,वही समाप्त हो गयी । अनेकानेक कर प्रणाली द्वारा राज्य ने अथाह धन जनता से उगाहा और उसका उपयोग अधिकाशत अनुत्पादक वर्ग के हित मे किया गया । धन का सकेन्द्रीकरण हुआ आर्थिक वैषम्य प्रकारान्तर से बढता ही गया । बौद्ध एव जैन धर्म का उद्भव यद्यपि वैदिक धर्म मे व्याप्त इसी वैषम्य के प्रतिक्रिया स्वरूप हुआ और उसने सभी वर्गो की समानता पर बल दिया । सन्यास की महत्ता की स्थापना से नारी की दशा बुरी तरह प्रभावित हुई । नारी को आध्यात्मिक मार्ग मे बाधा स्वरूप प्रस्तुत किया गया। प्रवृत्ति की जगह निवृत्ति का बोल–बाला हुआ । रीतिकालीन सामतवादी व्यवस्था मे नारी और शारीरिक श्रम करने वाला वर्ग, अनुत्पादक वर्ग के लिए क्रमश भोग की वस्तु एव भोग का साधन जुटाने वाला मात्र बन गये । उनकी दशा बडी दयनीय हो गयी । यहॉ उल्लेखनीय है कि स्मृतियो, धर्म ग्रथो पुराणो आदि मे वर्णित विधानो ने उन्हे धार्मिक आध्यात्मिक स्वरूप प्रदान करके शोषण की प्रक्रिया को पूरी तरह व्यवस्थित और मान्यता प्रदान की । अलग–अलग वर्गो (अस्पृश्य, अत्यज शूद्र, नारी आदि) के लिए अलग–अलग धार्मिक सामाजिक तथा आर्थिक निर्देश दिए गये । मानव का सचालन विधानो के अधीन हो गया मानवीय मूल्य तिरोहित हो गये । स्वर्ग–सुख के नाम पर पुरोहित वर्ग ने बडी बुद्धिमत्ता से विरोध की सभी सम्भावनाओ को नियत्रित कर लिया । शोषित वर्ग ने भाग्यवादिता, पुनर्जन्म, स्वर्ग की कामना आदि की अभीप्सा मे सभी प्रकार के शोषण को मूक होकर सहन किया । पाश्चात्य सम्पर्क नवजागरण आदि के फलस्वरूप, समानता, स्वतत्रता मानवतावाद जैसे उदारवादी एव प्रगतिशील चितन का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके परिणामस्वरूप प्राचीनता और नवीनता का द्वन्द्व उभर कर सामने आया ।

द्विवेदी युगीन काव्य मे इसी सामाजिक आर्थिक एव धामिक वैषम्य से उदभूत द्वन्द्व के स्वर को चित्रित किया गया है । कवियो ने सत्ता (धार्मिक सामाजिक आर्थिक ब्रिटिश सत्ता आदि) और जनता के इस द्वन्द्व को चित्रित किया और अपनी सहानुभूति को शोषित वर्ग के पक्ष मे व्यक्त किया । "करूणा विश्व–वन्धुत्व समभाव सत्य–अहिसा सहनशीलता क्षमा प्रेम सहानुभूति सभी धर्मो की समानता ऊँच–नीच के अभेद अछूतोद्धार और धर्म के क्षेत्र मे समान अधिकार जो कि अलग–अलग या सामूहिक रूप से मानवता के पोषक अग है– द्विवेदी युगीन साहित्य मे जीवन सापेक्ष बन गय ।"[1] यहाँ पर ध्यातव्य है कि द्विवेदी युगीन काव्य मे वर्णित मानवीयता का आधार भारतीय सस्कृति एव आधुनिकता बोध से उपजे चितन का परिणाम है। ब्रिटिश शासन की स्वार्थपरक नीति ने भारतीय किसानो मजदूरो का जीवन असहाय एव हीन दशा मे पहुँचा दिया। सर्वप्रथम 1917 ई० मे गॉधीजी ने बगाल बिहार के निलहे किसानो पर नील–बाग़ान–मालिको द्वारा किये जा रहे अत्याचारो का विरोध करने के लिए सत्याग्रह का मार्ग अपनाया । सन् 1918 ई० मे गॉधीजी ने खेडा और अहमदाबाद के अकालग्रस्त किसानो को कष्ट–मुक्त करने के लिए सत्याग्रह का अवलम्ब लिया और सफलता प्राप्त की। सन् 1918 ई० मे अहमदाबाद के मिल मजदूरो की हडताल मे मध्यस्थता करके गॉधीजी ने उनकी दशा मे सुधार का प्रयत्न किया । साथ ही 1917 ई० की रूसी क्राति ने भी मजदूरो किसानो मे नयी चेतना को जागृत करने मे योग दिया । उनके मन मे अपने उद्धार की भावना का बीजारोपण हुआ । इन क्रातिकारी परिवर्तनो से युग के कवि अपने को अलग नही रख सके । अत कवियो ने श्रमिको किसानो दलितवर्ग नारी पराधीन देश की दुर्दशा देश मे व्याप्त भुखमरी कुरीतियो रूढियो आदि को काव्य का विषय बनाया और

---

1 डॉ० पूनम चद तिवारी द्विवेदी युगीन काव्य पृष्ठ 234

उनके प्रति सहानुभूति प्रकट की । मैथिलीशरण गुप्त ने भारत—भारती की भूमिका म लिखा है कि इस पुस्तक मे कही कही मुझे कडी बाते लिखनी पडी है अपनी सामाजिक दुरवस्था ने वैसा लिखने के लिए मुझे विवश किया है । मेरा विश्वास है कि जब तक हमारी बुराइयो की तीव्र आलोचना न होगी तब तक हमारा ध्यान उनको दूर करने की ओर समुचित रीति से आकृष्ट न होगा ।"[1] हिन्दू समाज मे व्याप्त कुरीतियो, अध विश्वासो पर गुप्त जी ने दुख प्रकट करते हुए उसकी दयनीय दशा के सम्बन्ध मे लिखा है—

हिन्दू समाज कुरीतियो का केन्द्र जा सकता कहा,
ध्रुव धर्म्म—पथ मे कु—प्रथा का जाल—सा है बिछ रहा ।
सु—विचार के साम्राज्य मे कु—विचार की अब क्राति है
सर्वत्र पद पद पर हमारी प्रकट होती भ्रान्ति है ।[2]

खेतो मे मेहनत करने वाले कृषि—श्रमिक के पसीने मे भगवान का दर्शन होने लगा ।[3] किसानो की असहाय दशा का चित्रण करते हुए सियाराम शरण गुप्त ने लिखा है—

वे जो दूर खेतो मे
मिटटी घास—फूस ही है जिनके निकेतो मे,

---

1 मैथिलीशरण गुप्त भारत—भारती पृष्ठ 10

2 वही वही पृष्ठ 150

3 जहॉ रोग से ग्रसित अपाहित दुखी द्ररिद्र भिखारी ।
बैठे थे असहाय दशा मे निपट अशक्त दुखारी ।
जहॉं गरीब किसान खेत मे खडे काम करते थे ।
श्रम मे चूर मजूर धाम मे जहॉ आह भरते थे ।।
रामनरेश त्रिपाठी पथिक पृष्ठ 78

गिन सकते है खुली जिनकी पसलियॉ

और वे जो पुतली घरो मे घिरे

यत्र के ही अग निरे

हो गये है काठ की पुतलियॉ ।[1]

समाज मे व्याप्त जमीदारी प्रथा से उपजी विसगतियो को देखकर द्विवेदी युगीन कवि क्षुब्ध हो उठता है । उनकी धारणा है कि धरती पर धरती–पुत्र किसान का ही अधिकार है न कि जमीदार एव सामत आदि का बल्कि यहॉ कि मिटटी पर सभी का समान अधिकार है।[2] द्विवेदी युगीन कवियो ने कृषि–श्रमिको की दयनीय दशा पर भी कविताएँ लिखी है । आर्थिक अभावो से उत्पन्न दयनीय दशा से सघर्ष करते हुए कृषि–श्रमिको की सहायता के लिए इस युग की कविता आगे आती है । कवियो ने उनकी स्थिति का यथार्थ चित्रण किया है । मनमाने ढग से लगान बढाकर किसानो का शोषण करने वाले जमीदारो का चित्रण मैथिलीशरण गुप्त ने इस प्रकार किया है–

आई जमींदार की बारी जमादार के बाद ।

हुक्म हुआ इस बार खेत मे तुम डालना खाद ।

उसी जगह के मिलते हैं अब पन्द्रह के पच्चीस ।

तुम्ही जोतना चाहो तो फिर देने होगे तीस ।[3]

कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने जमीदारो की शोषण नीति का चित्रण करते हुए लिखा है–

तुम्ही ने मलार गाया था, बादल घहर–घहर घिर आये

तुम हॅस उठे जब कि धान के खेतो पर वैभव लहराये

---

1 सियारामशरण गुप्त जयहिन्द पृष्ठ 11

2 मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृष्ठ 163

3 वही वही पृष्ठ 170

तुम जहाज ले लेकर दौडे

चावल लूटा घर ले आये

पर किसान की क्या भूखे

बच्चो वाली घरवाली देखी ?[1]

मैथिलीशरण गुप्त ने महाजनो द्वारा किये जाने वाले शोषण का वर्णन भारत–भारती मे किया है ।[2]

किसानो की ही तरह इस युग के मजदूरो की दशा भी दयनीय और चिंताजनक थी । जिसके ऊपर उनके परिवार के पोषण का भार था वही भक्षक बनकर उनके श्रम का शोषण कर रहे थे । उनका जीवन अभावो एव आर्थिक विपन्नता से भरपूर था । गुप्त जी ने लिखा है—

कराकर सौ सौ से उद्योग एक ही करता है सब भोग ।

यत्र जीते है मरते लोग फैलते है नित नूतन रोग ।।[3]

कवि रामनरेश त्रिपाठी ने ब्रिटिश शासन की शोषक नीति के खिलाफ अपना उदगार इस प्रकार व्यक्त किया है—

किया जिन्होने स्वर्ण भूमि को

कौडी का मुहताज ।

किया पद दलित हाय हमारा

---

1 माखनलाल चतुर्वेदी समर्पण पृष्ठ 17

2 हो जाय अच्छी भी फसल पर लाभ कृषको को कहॉ?

खाते खवाई बीज–ऋण से है रॅगे रक्खे यहॉ ।

आता महाजन के यहॉ वह अन्न सारा अन्त मे

अध–पेट रहकर फिर उन्हे कॉपना हेमन्त मे ।

मैथिलीशरण गुप्त भारती–भारती, पृष्ठ 103

3 मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृष्ठ 115

दव समर्पित ताज ।[1]

इसी श्रृखला मे कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने असहाय एव हीन दशा मे जीवन यापन करने वाले शोषितो को क्राति करने का सदेश देते हुए लिखा है—

तोड अमीरो के मनसूबे

गिन न दिनो की घडियॉ

बुला रही है तुझे देश की

कोटि—कोटि झोपडियॉ [2]

द्विवेदीयुगीन कवि मानव को अन्न वस्त्र एव आवास जैसी प्राथमिक आवश्यकताओ की पूर्ति के लिए चितित देखकर दुखी है तथा इन चिताओ से उसे मुक्त करना चाहता है।[3] कवि मैथिलीशरण ने भारत भारती मे देश को वर्तमान और अतीत के सन्दर्भ मे देखते हुए भविष्य की कामना की है। उन्होने देश मे व्याप्त दारिद्रता पर दु ख एव चिता प्रकट करते हुए लिखा है—

रहता प्रयोजन से प्रचुर पूरित जहॉ धन—धान्य था,

जो स्वर्ण—भारत नाम से ससार मे सम्मान्य था,

दारिद्रय्य दुर्धर अब वहॉ करता निरन्तर नृत्य है

आजीविका—अवलम्ब बहुधा भृत्य का ही कृत्य है ।।[4]

---

1 रामनरेश त्रिपाठी 'मिलन पृष्ठ 12

2 माखन लाल चतुर्वेदी युगचरण पृष्ठ 49

3 अन्न—वस्त्र से ही निजग्राम

हो निश्चिन्त न ले विश्राम ।

आवश्यक साधन अब मान्य

स्वय सिद्ध करके हो धन्य ।

मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू, पृष्ठ 112

4 मैथिलीशरण गुप्त भारत—भारती, पृष्ठ 97

दुर्भिक्ष का वणन करता हुआ कवि लिखता हे—

दुर्भिक्ष मानो देह धर के घूमता सब ओर हे
हा । अन्न । हा । हा । अन्न का रव गूँजता घनघोर है ।
अब विश्व मे सौ वर्ष मे रण मे मर जितन हरे
जन चौगुने उनसे यहॉ दस वर्ष मे भूखो मरे ॥[1]

युगो से शोषित नारी के प्रति भी युगीन कवियो ने सहानुभूति प्रकट की है। कवि मैथिलीशरण गुप्त ने यशोधरा कृति मे यशोधरा के रूदन का बडा ही मार्मिक चित्रण किया है ।[2] नारी के असहाय एव विवशतापूर्ण जीवन को यशोधरा के माध्यम से अकित करने मे गुप्तजी को बडी सफलता मिली है। कवि ने नारी को उत्पीडन एव अत्याचार से मुक्ति दिलाने के लिए नारी मे शक्ति का समावेश कर उसे अत्याचारियो के ख़िलाफ लडने के लिए कटिबद्ध किया है—

अरे नराधम तुझे नही लज्जा आती है ?
निश्चय तेरी मृत्यु मुण्ड पर मडॅराती है ।
मै अबला हूँ किन्तु न अत्याचार सहूँगी ।
तुझ दानव के लिए चण्डिका बनी रहूँगी ।[3]

आर्थिक विषमता की चक्की मे पिसते हुए युगीन मानव की मुक्ति की कामना का स्वर इस युग मे सुनाई पडता है । हरिऔध जी ने भिखारी का हृदय स्पर्शी चित्रण किया है—

---

1 मैथिलीशरण गुप्त भारत—भारती पृष्ठ 97

2 रोना गाना बस यही जीवन के दो अग
एक सग मे ले रही दोनो का रस रग
मैथिलीशरण गुप्त यशोधरा पृष्ठ 115

३ मैथिलीशरण गुप्त जयभारत पृष्ठ 266

क्यो कहे कगालपन को भी कभी

है खुली ऑख हमारी जॉचती ।

सामने जो वे न नाचे ऑख के

भूख से है ऑख जिनकी नाचती ।।[1]

द्विवेदी युगीन कवियो ने शोषित वर्ग के प्रति गहरी सहानुभूति व्यक्त किया है । कवियो के मन मे बहुजन हिताय बहुजन सुखाय की भावना विद्यमान है।[2] इसी भावना से परिचालित होता हुआ वह विश्व प्रेम का सदेश देता है ।[3] वह विश्व–मानवता का हितैषी तथा विश्व– बन्धुत्व का आकाक्षी है । कवि ने लिखा है--

रूचि मूलक मानस के मन्य

भिन्न–भिन्न अपने मत–पथ

रहे अनेक अपार्थिक ग्रथ ।

मिले एक के लाख प्रमाण

विश्व बन्धुता मे ही त्राण ।[4]

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय हरिऔध चोखे–चौपदे पृष्ठ 15

2 अर्पित हो मेरा मनुज–काय

बहुजन हिताय बहुजन सुखाय ।

मैथिलीशरण गुप्त कुणाल गीत पृष्ठ 136

3 उठ बढ ऊँचा चढा सग लिए सबको

सब के लिए तू और तेरे लिए सब है ।

मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृष्ठ 64

4 मैथिलीशरण गुप्त कुणाल गीत, पृष्ठ 113

कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने भी सभी जीवो के कल्याण की कामना किया है।[1] इसी तरह सियाराम शरण गुप्त ने शोषित मानव के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए लिखा है--

प्रार्थना है आज जन-जन की
जन की न हो के यह जनता की जय हो
निखिल भुवन की
पीडित मनुष्यता जहॉ भी हो अभय हो।[2]

उपर्युक्त विवेचन के अन्त मे निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि द्विवेदी युगीन कवियो ने शोषितो की यथार्थ दशा का मार्मिक चित्रण करके लोगो से उनके उद्धार की अपेक्षा की है । साथ ही कवियो ने उनको स्थिति से उबरने के लिए खिलाफत करने का भी आह्वान किया है । इसके पीछे उनका मानवतावादी दृष्टिकोण और भारतीय आध्यात्मिकता का आत्मवत् सर्वभूतेषु एक साथ सश्लिष्ट रूप से क्रियाशील दिखाई देता है । आगे चलकर शोषण के खिलाफ बेधक आवाज महाकवि निराला की सुनाई पडती है । पत ने भी ग्राम्या तथा युगवाणी मे युग के शोषण की मार्मिक अभिव्यक्ति की है । किन्तु इन छायावादी कवियो की पृष्ठभूमि मे द्विवेदीयुगीन कवियो की सहज सवेदना अवश्य ही प्रस्तावना स्वरूप उपस्थित थी । यह प्रस्तावना सरल और सीधी-सादी भाषा मे अवश्य है किन्तु उत्कट है, इसलिए उत्प्रेरित करती है

---

1 विनती कर इन सब जीवो का
मानवता पर प्रेम बढे
चक्रपाणि तेरे चरणो का
इन पर प्यारा रग चढे ।
माखनलाल चतुर्वेदी युगचरण पृष्ठ 13

2 सियाराशरण गुप्त जयहिन्द पृष्ठ 16

षष्ठ अध्याय

भारतीय धर्म और सस्कृति लोक-मगल के सदर्भ

भारतीय धर्म और सस्कृति लोकमगल के सन्दर्भ

भारतीय सस्कृति का मूल मत्र धर्म है। परमार्थ को व्यवहार मे आचरित करना ही धर्म है। भारतीय धर्म मनुष्य के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त जीवन की सभी समस्याओ को समाविष्ट रखता है। धर्म–ग्रथो मे मनुष्य को समाज के अनुरूप बनाने के लिए अनेक विधान हैं, जो मनुष्य को आत्मोत्कर्ष की ओर ले जाने के साथ–साथ समाज को भी व्यवस्थित करने और कल्याण के मार्ग का अनुगमन करने का मार्गदर्शन किया है। प्रकृत मनुष्य को सस्कारित करने की प्रक्रिया ही सस्कृति है। सस्कृति मनुष्य के मन मस्तिष्क, हृदय तथा उनकी वृत्तियो को सस्कारित करके उसे उदात्त बनाती है। भारतीय धर्म और सस्कृति लोक को पीडा, अन्याय, अत्याचार आदि से मुक्त करके लोक–मगल की कामना करती है। भारतीय सस्कृति आध्यात्मिकता एव भौतिकता मे समन्वय, सहिष्णुता, तपोमय जीवन आदि पर बल देती है। वह करूणा, दया सहानुभूति, प्रेम आदि उदात्त भावो के महत्त्व को अगीकार करते हुए, सभी प्राणियो को 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' देखने की प्रेरणा देती है और सर्वे भवन्तु सुखिन' की कामना करती है। सभी के उत्कर्ष की यह कामना, लोक मे मगल का विधान करना है। वह मनुष्य के सर्वागीण विकास की पक्षधर है। भारतीय धर्म और सस्कृति व्यष्टि एव समष्टि दोनो को उत्कर्ष की ओर ले जाने का मार्ग प्रशस्त करती है। भारतीय सस्कृति की यह अपनी विशिष्टता है। वह आध्यात्मिकता और भौतिकता मे समन्वय की आकाक्षा करती है, क्योकि इन दोनो मे समन्वय हुए बिना, व्यक्ति एव समाज का उत्कर्ष सभव नही है।

इस तरह कहा जा सकता है कि भारतीय धर्म और सस्कृति वैयक्तिक उत्कर्ष के साथ–साथ लोक के उत्कर्ष की भी कामना करती है। 'लोक' के अपकर्ष से सत्यनिष्ठ एव धर्मनिष्ठ को पीडा होती है। इसी अपकर्ष को रोकने के लिए एव धर्म की रक्षा हेतु, परमसत्ता को इस पृथ्वी

पर अवतार लेना पडता है। वह लोक मे व्याप्त अन्याय अत्याचार पीडा आदि को दूर कर क पुन धर्म की स्थापना करता है जिससे लोक उत्कर्ष की ओर गतिमान हो सके है। इसका विस्तार से विवेचन आगे निम्न शीषको के अन्तर्गत किया गया है–

(क) धर्म और सस्कृति का समन्वय (धर्म की परिभाषा और उसकी व्यापकता)

भारत धर्म और सस्कृति प्रधान देश है । धार्मिक एव नैतिक शिक्षा का महत्त्व हमारे यहॉ अतीत काल से रहा है । धर्म और सस्कृति का घनिष्ठ सम्बन्ध है । धर्म तथा सस्कृति की मुख्य चिता लोक मे कल्याण का विधान करना है यह मनुष्य के लौकिक कल्याण तक ही सीमित न होकर उसको लौकिकता मे अलौकिकता का साक्षात्कार कराता है। साथ ही मनुष्य को उसके अतिम लक्ष्य मोक्ष तक पहुँचाने का मार्ग–दर्शन भी करता है । भारतीय सस्कृति की मुख्य सचेतना उसकी आध्यात्मिकता है, जो जीवन के हर क्षेत्र मे विद्यमान है। इस सदर्भ मे श्री अरविद का यह कथन सारगर्भित है कि "परतु यह भी बिल्कुल सच है कि भारतीय सस्कृति ने मानव के भीतर उसको सबसे अधिक मूल्य प्रदान किया है जो पार्थिव ससक्तियो के ऊपर उठता है उसने मानव–प्रयास के शिखर पर एक परम दुष्कर आत्म अतिक्रमण का लक्ष्य निश्चित किया है । वाह्य शक्ति और भोग के जीवन की अपेक्षा इसकी दृष्टि मे आध्यात्मिक जीवन श्रेष्ठतर रहा है कर्मी से अधिक महान् मनीषी और मनीषी से महत्तर आध्यात्मिक व्यक्ति।"[1] स्पष्ट है कि यहॉ मानव जीवन की वृत्तियो का क्रमश लौकिक से अलौकित्व के क्रमिक विकास की

---

1 डॉ० मीरा श्रीवास्तव भारतीय सस्कृति उसका महत् अतीत और भविष्य के लिए सकेत पृष्ठ 15(अनुवाद श्री अरविद भारतीय सस्कृति के आधार स सकलन)

ओर सकंत है । भारतीय धर्म और सस्कृति का मूल स्वर 'जीवो जीवस्‍ जीवनम' धर्मो रक्षति रक्षत आदि है। यह भावना स्पष्टतया लोक मे मगल का विधान करती है । भारतीय ग्रथो मे अवतारवाद की परिकल्पना की गयं है जो लोक मे व्याप्त अनाचार अन्याय अत्याचार आदि का विनाश करक पुन 'आचार परमोधर्म को सस्थापित करता है। श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद गीता मे स्पष्ट घोषणा की है–

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत् ।
अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मानम् सृजाभ्याम् ।।
परित्राणाय साधूनाम विनाशाय च दुष्कृतम् ।
धर्म सस्थाप्नाथार्य सम्भवामि युगे युगे ।।[1]

उपर्युक्त श्लोक मे समष्टि की चिता ध्वनित हुई है, जो लोकमगल का मूल तत्व है। यही भाव भारतीय धर्म और सस्कृति का भी मूल स्वर है।

वैदिक साहित्य मे यह विचार उपलब्ध है कि इस सृष्टि का सचालन कुछ निश्चित नियम के अधीन है । वेदो की इस नियम– बद्धता को 'ऋत कहा गया है । " 'ऋत' की व्याख्या 'सृष्टि की नियमितता 'भौतिक एव नैतिक व्यवस्था अतरिक्षीय एव नैतिक व्यवस्था' आदि के रूप मे की गयी है । ऋग्वेद मे मत्र द्रष्टाओ ने ऋत के ह्रास पर ऑसू बहाये हैं और उसके पुनरूत्थान की कामनाएँ व्यक्त की है । ऋग्वेद मे 24 श्लोक हैं जिसमे यह कहा गया है कि ऋत के द्वारा लोगो को गाये, जल, उनका भोजन, उनकी भौतिक समृद्धि तथा जीवन यापन के अन्य साधन प्राप्त होते हैं । 'वरूण को ऋतस्य गोपा कहा गया है । उसके आदेशो के उल्लघन पर उसके आक्रोश का पर्याप्त वर्णन है ।"[2] इस प्रकार 'ऋत' वह नियम है जो

---

1 श्रीमद्भगवद् गीता 4 / 7-8

2 सपादक झा श्रीमाली प्राचीन भारत का इतिहास, पृष्ठ 129

नित्य और अनादि है जिसका उल्लघन काई नही कर सकता । सृष्टि के सभी काय नियमित रूप से हो रहे हैं— यह सब ऋत के कारण ही है । प्रकृति का ही नही प्राणियो और मनुष्यो के जीवन का आधार भी यह ऋत ही है । धर्म उस व्यवस्था का नाम है जिसका पालन करके मनुष्य इस लोक मे अभ्युदय और परलोक मे मोक्ष या नि श्रेयस को प्राप्त करता है । ससार मे इसी ऋत का जब ह्रास होता है, तो धर्म की ग्लानि होती है, जिसके कारण ससार मे अराजकता अन्याय अत्याचार, दुष्कृत्य (बुरे कार्य आसुरी प्रवृत्तियॉ) आदि का बोलबाला होता है । धर्मपरायण लोगो को पीडा होती है जिसके परिणामस्वरूप दुष्टो को दडित करने के लिए सत्यनिष्ठ की पीडा को दूर करने के लिए अधर्म का नाश करके धर्म को सस्थापित करने के लिए, परमेश्वर को इस पृथ्वी पर अवतरित होना पडता है। यहॉ यह उल्लेखनीय है कि धर्म का मूल स्रोत ईश्वर है, क्योकि ऋत पराशक्ति की कार्यशैली है । मनुष्य तो उसी धर्म की मर्यादा का पालन करने वाला है जब वह उससे च्युत होता है, तो उसके साथ स्वय उसका और ससार का अध पतन प्रारम्भ होता है । आधुनिक युग मे महात्मा गॉधी ने सत्य और परमेश्वर की अभिन्नता को प्रतिपादित करके वैदिक युगीन इस तथ्य को प्रकट किया कि 'ऋत और सत्य ही ऐसे तत्त्व हैं जिससे ससार सचालित है । इस धर्म के आचरण से ही ससार के कल्याण का मार्ग प्रशस्त होता है । धर्म विरूद्ध आचरण से मनुष्य को इहलोक मे नाना प्रकार के दु खो एव कष्टो को भोगना पडता है, साथ ही पाशविक वृत्तियो की प्रधानता के कारण वह सत् चित्, आनन्द' स्वरूप ब्रह्म से दूर हो जाता है क्योकि सात्त्विक वृत्तियॉ तिरोहित हो जाती है और उसके बदले मनुष्य पाशविक वृत्तियो से सचालित होने लगता है ।

वैदिक सस्कृति की एक विशेषता उसकी अध्यात्म–भावना है । वैदिक मनीषियो का विश्वास था कि इस भौतिक जगत् से परे भी कोई परम सत्ता है । यह विचार वैदिक काल से भारत मे निरन्तर

प्रवाहमान हे । इस शरीर की अधिष्ठाता जीवात्मा है यह शरीर के विनाश के साथ नष्ट नही होती क्योकि वह अनश्वर अनादि और अनन्त है । उसके स्वरूप को समझना मनुष्य का कर्त्तव्य है । जिस प्रकार शरीर का स्वामी आत्मा है उसी तरह प्रकार सम्पूर्ण ससार का स्वामी परमात्मा है वह सर्वत्र व्याप्त है सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है । यह आत्मा वस्तुत उसी सर्वव्यापक सर्वशक्तिमान ब्रह्म का ही अश है । अत उससे पृथक उसकी कोई स्वतत्र सत्ता नही है । मनुष्य धर्म का पालन करता हुआ उससे तादात्म्य स्थापित कर सकता है उसके लिए कई मार्ग है— ज्ञान मार्ग भक्ति मार्ग, कर्म मार्ग। इस तरह अतिम सत्य वह परम सत्ता ही है । अत ससार मे जो कुछ भासित हो रहा है वह ससार के भोग आनन्द के आच्छद सत्य का प्रतीयमान अर्थ है सत्य नही । सत्य की प्राप्ति धर्माचरण से ही सभव है क्योकि धर्म हमे ऋत—पथ पर आरूढ करता है। वास्तविक सुख आध्यात्मिक है जो आत्मज्ञान और ब्रह्म-ज्ञान से प्राप्त होता है । यहॉ यह उल्लेखनीय है कि भारतीय अध्यात्म लौकिक जीवन का निषेध नहीं करता । वैदिक ऋषियो की धारणा थी कि "जिससे इस ससार मे अभ्युदय (समृद्धि एव उन्नति) और नि श्रेयस की प्राप्ति हो वही धर्म है ।"[1] वह धर्म अपूर्ण है जो केवल नि श्रेयस की प्राप्ति मे सहायक होता है, साथ ही वह धर्म भी अपूर्ण है जिससे मनुष्य केवल सासारिक समृद्धि प्राप्त करता है । इसीलिए लौकिक मे अलौकिक ऋत को समझना है और उसी मार्ग का अनुसरण करना है ।

वैदिक ऋषियो की वाणी स्वादु उदुम्बर' (सुस्वादु का फल) और चरैवेति' (निरन्तर आगे बढो) ने निरन्तरता एव गतिशीलता का सदेश दिया । मानव का कर्त्तव्य है कि वह निरन्त उत्थानशील रहे । भारतीय धर्म और दर्शन ने मनुष्य को 'अभय' की भावना को आत्मसात् करने का सदेश

---

1 डॉ० सत्यकेतु विद्यालकार भारतीय सस्कृति का विकास पृष्ठ 107

दिया है । यह अभय की भावना एकत्व की अनुभूति द्वारा ही सम्भव है जिससे मनुष्य सब मे अपने को और अपने मे सबको देखने लगता है । द्वैत का भाव समाप्त हो जाता है और वह अपने को विराट सत्ता का अश—की अनुभूति करता है । श्रीकृष्ण ने अर्जुन को युद्ध—भूमि मे इसी सत्य का साक्षात्कार कराया था । जिसके कारण वह आत्मा को आच्छादित करने वाले व्यामोह का अतिक्रमण करके युद्ध के लिए उद्यत हो सके । सामान्य मनुष्य उस विभु या सत्य का साक्षात्कार पूर्ण समर्पण और कठिन साधना द्वारा कर सकता है । ऐसा होने पर वह आत्मवत् सर्वभूतेषु की स्थिति मे पहुँच जाता है क्योकि उसे यह अनुभूति होती है कि सभी प्राणियो की जो जीवन—शक्ति है वस्तुत उसका मूलस्रोत वही ब्रह्म है । धर्माचरण के द्वारा यहॉ तक पहुँचना ब्रह्म ज्ञान प्राप्त करना है— मार्ग चाहे कर्म का हो चाहे ज्ञान का या भक्ति का।

धर्म ग्रथो मे समाज और मनुष्य के नियमन एव व्यवस्थापन के लिए आश्रम व्यवस्था वर्णव्यवस्था पुरूषार्थ पुनर्जन्म कर्मफल आदि का विवेचन मिलता है । आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत मानव जीवन को सौ वर्ष का मानकर क्रमश चार आश्रमो— ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ, सन्यास मे विभाजित किया गया है । इन आश्रमो मे मनुष्य क्रमश धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष जैसे पुरूषार्थ को प्राप्त करता है । धर्म अर्थ और काम के भी मूल मे है । "इन चारो पुरूषार्थो मे धर्म का स्थान प्रधान है । जब कभी व्यवहार मे धर्म के साथ अर्थ या काम का सघर्ष उपस्थित होता है तो ऐसे समय हम सदा धर्म को ही अपनाते है । शास्त्रकारो का भी मत है कि धर्म से विरूद्ध अर्थ और काम को छोड देना चाहिए । भारतीय सस्कृति धर्म की नीव पर टिकी है । धर्म मनुष्य को पशु से मनुष्य बनाता है और मानव समाज को एक सूत्र मे बाधता है, अपना जीवन—यापन करते है । हममे जो कुछ बल है, जो कुछ

आध्यात्मिकता है वह सब धर्म के ही मूलाधार मे अवस्थित है ।"[1] इससे स्पष्ट है कि धर्म अपने को समाज और सस्कृति के रूप मे अभिव्यक्त करता है । आश्रम व्यवस्था की तरह मनीषियो ने मानव समाज को चार वर्णो मे वर्गीकृत किया है—ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य एव शूद्र । सामाजिक व्यवस्था के सुचारू रूप से सचालन के लिए उनके कर्त्तव्यो का भी निर्धारण किया गया है । कर्त्तव्य एव धर्माचरण के अनुरूप ही उन्हे श्रेष्ठता क्रम मे विभाजित किया गया है— "समाज मे सबसे ऊँचा स्थान ब्राह्मणो का है जो त्याग और अकिचनता को ही अपनी सपत्ति मानते हैं । क्षत्रिय लोग सासारिक सुखो का उपभोग अवश्य करते पर उनका कार्य धनोपार्जन करना न होकर जनता की वाह्य एव आभ्यान्तर विपत्तियो से रक्षा करना है । समाज मे ब्राह्मणो और क्षत्रियो का स्थान वैश्यो की अपेक्षा ऊँचा है क्योकि मानव जीवन का ध्येय धन सम्पत्ति की अपेक्षा अधिक उच्च है । वैश्यो को कृषि, पशुपालन और वाणिज्य द्वारा समाज की भौतिक आवश्यकताओ को पूर्ण करना है और शूद्र का कार्य अन्य वर्णों की सेवा द्वारा आजीविका कमाना है ।"[2] यह विभाजन गुणानुक्रम मे किया गया । मनुष्य अपने स्वधर्म के पालन से उच्च वर्ण से निम्न वर्ण और निम्नवर्ण से उच्च वर्ण मे स्थान पा सकता है । इसके पीछे यह तथ्य है कि जिस प्रकार से मानव की पूर्णता के लिए भौतिक एव आध्यात्मिक उन्नति आवश्यक है, उसी प्रकार मानव समाज की पूर्णता के लिए यह आवश्यक है कि उसके विविध वर्ग भौतिक सुखो एव साधनो के साथ—साथ परोपकार एवं अध्यात्म सुख के लिए प्रयत्नशील हो।

भारतीय मनीषी पुनर्जन्म मे विश्वास करते थे । उनकी धारणा थी कि अच्छे कर्म करने वाला मनुष्य यदि इस जन्म मे अपने

---

1 श्री कौशल कुमार राय भारतीय सस्कृति एव राष्ट्रीय आदोलन, पृष्ठ 5

2 डॉ० सत्यकेतु विद्यालकार भारतीय सस्कृति का विकास, पृष्ठ 108

सुकर्मो का फल नही पाता तो अगले जन्म मे उसे अवश्य प्राप्त होता है ।यह विचार वर्ण—व्यवस्था के अनुकूल थी और श्रेष्ठ आचरण से वर्ण भी बदल जाता है । स्वधर्म के आचरण से ही श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती है अत व्यक्ति को सदैव धर्म का पक्ष लेना चाहिए । हिन्दू धर्म के अनुयायी तो पूर्वजन्म और कर्मफल मे विश्वास करते ही हैं अन्य सम्प्रदायो एव धर्मो के लोग भी पूर्वजन्म को न मानते हुए भी अपने क्रियात्मक जीवन मे इस सिद्धान्त को अस्वीकार नही कर पाते । इसीलिए हीन से हीनतर दशा मे रहने वाले भी अपनी स्थिति के विरूद्ध सुगमता से विद्रोह करने के लिए तैयार नही होते ।

भारतीय धर्म ग्रथो मे त्याग की महिमा का वर्णन किया गया है क्योकि त्याग से व्यक्ति की वृत्तियो का प्रसार समष्टि की ओर होता है । भारतीय धर्म सासारिकता और आध्यात्मिकता मे समन्वय इस त्याग की भावना द्वारा ही करता है । त्याग की भावना वैदिक काल से प्रशसनीय रहा और आज भी यह भारतीय जीवन को शक्ति प्रदान कर रही है । उनका कहना था कि "इस जगत् में जो कुछ भी है, सभी मे ईश्वर व्याप्त है, अत इस ससार मे लिप्त न होकर त्याग की भावना के साथ उसका उपभोग करो ।"[1] त्याग की भावना हमे बौद्ध धर्म और जैन धर्म मे अपरिग्रह' के रूप मे मिलती है ।

धर्म ग्रथो में वर्णित 'त्रि ऋण' (पित्रृ—ऋण, ऋृषि— ऋण, देव—ऋण) एव 'पच महायज्ञ' (देव यज्ञ, ब्रह्म यज्ञ, पित्रृ—यज्ञ, नृ—यज्ञ

---

1 ईशावास्य इद सर्व

यतिकिञ्चित् जगत्याम् जगत्

तेन त्येक्तेव भुञ्जीथा

मा गृध कस्य चित् धनम

ईशोपानिषद्

भूत–यज्ञ) के मूल मे भी त्याग की भावना विद्यमान है । मनीषियो का मानना था की इस ससार ने मनुष्य को जो कुछ दिया है उसको उन्हे अपने जीवन मे ही वापस करना चाहिए अन्यथा उसके लिए परलोक का मार्ग अवरूद्ध हो जायेगा । यज्ञो द्वारा यह विधान किया गया की मनुष्य अपनी पाशविक वृत्तियॉ एव मलिनता अग्नि को सुपुर्द करके पवित्रता की ओर बढे । विभिन्न सस्कारो (गर्भाधान पुसवन जातकर्म उपनयन वेदारम्भ विवाह आदि) द्वारा मनुष्य को सस्कारित करके उसे इस योग्य बनाया जाता था, जिससे वह स्वधर्म और लोक धर्म का समुचित निर्वाह कर सके ।

सस्कृति के स्वरूप के सम्बन्ध मे डॉ० मनमोहनलाल शर्मा ने लिखा है कि "सस्कृति का लक्ष्य तो आत्मा का उत्थान होकर जीवन का विकास करना होता है । अत इसके अभाव मे ऊपर वाह्य रूप की सब बाते सभ्यता मे आ जाती है जो सस्कृति का एक गौण अश है । शारीरिक विकास, मानसिक विकास और आत्मिक विकास से सम्पूर्ण जीवन का विकास होता है । जब तक मनुष्य के बीज रूप मे पडी सुषुप्तावस्था वाली इन तीन शक्तियो का विकास पूर्णतया नही हो जाता, हमारी सस्कृति अधूरी रह जायेगी ।"[1] स्पष्ट है कि श्री शर्मा ने अपने कथन मे जिस विकास की ओर सकेत किया है, भारतीय धर्म उसके उसी विकास का नियमन करता है । भारतीय धर्म की विशेषता है कि वह सामाजिक क्रियाकलापो का नियमन और मार्गदर्शन साथ–साथ करता है । सस्कृति के स्वरूप के सम्बन्ध मे डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के इस कथन का उल्लेख करना अप्रासगिक न होगा– "सस्कृति मनुष्य के भूत, वर्तमान और भावी जीवन का सर्वागीण प्रकार है । विचार और कर्म के क्षेत्रो मे राष्ट्र का जो सृजन है, वही उसकी सस्कृति है। "
सस्कृति के द्वारा हम स्थूल भेदो के भीतर व्याप्त एकत्व के अन्तर्यामी

---

1 डॉ० मनमोहनलाल शर्मा भारतीय सस्कृति और साहित्य, पृष्ठ 25

सूत्र तक पहुँचने का प्रयत्न करते है और उसे पहचान कर उसके प्रति अपने मन को विकसित करते है। प्रत्येक राष्ट्र की दीर्घकालीन ऐतिहासिक हलचल का लोक हितकारी तत्त्व उसकी सस्कृति है । सस्कृति राष्ट्रीय जीवन की आवश्यकता है वह मानवीय जीवन को आध्यात्मिक प्रेरणा प्रदान करती है।"[1] स्पष्ट है कि डॉ० अग्रवाल जिस सूक्ष्म दृष्टि, आध्यात्मिक जीवन आदि पर बल देते हैं वे सभी तत्त्व भारतीय सस्कृति को धर्म से मिला हैं । कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी सस्कृति शीर्षक कविता मे लिखा है—

अपनी चिर सस्कृति की मूर्ति,
है मनुष्यता की परिपूर्ति ।
प्राणरूप उसका पुरूषार्थ
साधन करता है परमार्थ ।

युग युग के सचित सस्कार
ऋषि—मुनियो के उच्च विचार
धीरो वीरो के व्यवहार
है निज सस्कृति के श्रृगार ।[2]

कवि की इस काव्यात्मक अभिव्यक्ति से स्पष्ट है कि भारतीय सस्कृति धर्म—प्राण है । वह 'मनुष्यता' की, मनुष्य की प्रकृत अवस्थाओ की नही, "परिपूर्ति" है और चार पुरूषार्थ जो प्राणस्वरूप हैं वे परम अर्थ के साधक हैं । ये सारे विचार या सस्कार जिन्होने हमारी सस्कृति का निर्माण किया है वे ऋषि—मुनियो के उच्च विचार के परिणाम हैं । ये विचार केवल विचार नही हैं इन्हे धीर और वीर पुरूषो ने आचरित किया है, व्यवहार

---

1 डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल कला और सस्कृति (भूमिका से), पृष्ठ 3

2 मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू पृष्ठ, 239—240

मे उतारा है। परमार्थ को व्यवहार' मे उतारना ही धर्म है । धर्म और दशन की वरीयता हमारी सस्कृति का श्रृगार है हमारे सस्कारो की सुदर स्पृहणीय अवस्था है ।

इस तरह यह कहा जा सकता है कि भारतीय धर्म और सस्कृति मे समन्वय है । प्रकृत मनुष्य को सस्कारित करने की प्रक्रिया को ही सस्कृति कहा गया है भारतीय सन्दर्भ मे इस प्रक्रिया के सचालन के लिए सस्कारो का निर्माण धर्म की भित्ति पर खडा है ।

(ख) व्यक्ति धर्म---सास्कृतिक तत्त्व-

जिस प्रकार मध्यकालीन भक्त—कवियो ने युगीन आवश्यकता को ध्यान मे रखकर 'भक्ति' की प्रतिष्ठा, कर के जन-मानस मे व्याप्त नैराश्य को दूर करने का प्रयत्न किया, उसी तरह द्विवेदी युगीन कवियो ने युगीन सन्दर्भ मे काव्य—सृजन किया । दोनो का आधार भारतीय सस्कृति ही रही । दोनो ने ही मानव को धर्मानुसार आचरण करने पर बल दिया प्रथम मे भक्ति' प्रमुख रही तो दूसरी मे 'राष्ट्र प्रमुख रहा है । दोनो ने ही मानव को मानवीय गुणो से विभूषित करने का प्रयत्न किया । भक्ति कालीन कवियो ने ससार की निस्सारता का वर्णन करके मनुष्य का अतिम ध्येय मुक्ति माना, तो द्विवेदी युगीन कवियो ने राष्ट्र की मुक्ति मे ही व्यक्ति की मुक्ति को घोषित किया है । भारतीय चितन ने त्याग, परोपकार, करूणा दयाभाव आदि पर बल दिया है, क्योकि इन भावो के बिना व्यक्ति स्वार्थ से ऊपर उठ नही सकता । वेद ने उपदेश दिया कि हम सब प्राणियो को मित्र की दृष्टि से देखे । महाभारत ने सदेश दिया कि 'परोपकार से पुण्य का अर्जन होता है और दूसरो को पीडा पहुँचाने से पाप—कर्मो मे वृद्धि होती है । गोस्वामी तुलसीदास ने इसी विचार को इस तरह से कहा कि 'अभिमान पाप की जड है, जब तक शरीर मे प्राण रहे प्राणियो के प्रति दया—भाव का परित्याग नहीं करना चाहिए। बीसवी शताब्दी के मनीषियो राममोहन राय स्वामी दयानन्द सरस्वती

\

स्वामी विवेकानद श्री अरविन्द महात्मा गॉधी आदि ने भी अपने—अपने ढग से सास्कृतिकएव आध्यात्मिक मूल्यो का पुनरख्यान किया । द्विवेदी युगीन काव्य मे सतत प्रवाहमान सास्कृतिक चेतना को अभिव्यक्ति मिली है । मनुष्य—धर्म के पालन से ही समाज मे कल्याण की भावना बलवती होती है। इसलिए मनुष्य के उन धर्मो का आख्यान युगीन काव्य मे प्रतिष्ठित किया गया जो युगीन सन्दर्भो के अनुरूप है । इस प्रकार हम देखते हैं कि द्विवेदीयुगीन कवियो ने जिस मनुष्य धर्म को प्रस्तुत किया वह प्राचीन सस्कृति एव युगीन आवश्यकता का सश्लिष्ट रूप है ।

मैथिलीशरण गुप्त की अमर रचना भारत—भारती का अतीत खण्ड भारतीय सस्कृति के अतीत गौरव गान का श्रेष्ठतम अश है। इसके अन्तर्गत कवि ने विद्या, कला? कर्मशीलता धर्म भक्ति लोक, ज्ञान आदि के क्षेत्र मे आर्यो की उपलब्धियो का आख्यान प्रस्तुत किया है । कवि ने 'वर्तमान खण्ड' मे वर्तमान का यथार्थ चित्रण करके दु ख प्रकट किया है । भविष्यत् खण्ड मे कवि ने प्राचीन सस्कृति के आदर्शो को आत्मसात् करके पुन गौरव प्राप्त करने की कामना की है । कवि की चिता है—

क्या थे तथा अब क्या हुए हम, जानता बस काल है,
भगवान जाने, काल की कैसी निराली चाल है ।[1]

* * *

पर हाय ! आज रही सही भी पोथियॉ यो कह रहीं—
क्या तुम वही हो ! आज तो पहचान तक पडते नही ।।[2]

गुप्तजी ने प्राचीन आर्य सस्कृति के गौरवस्तम्भ, पूर्वजो का वर्णन करते हुए लिखा है—

---

1 मैथिलीशरण गुप्त भारत भारती, पृष्ठ 94

2 वही वही, पृष्ठ 53

उनके अलौकिक दर्शनो से दूर होता पाप था
अति पुण्य मिलता था तथा मिटता हृदय का ताप था ।
उपदेश उनके शान्तिकारक थे निवारक शोक के
सब लोक उनका भक्त था वे थे हितैषी लोक के ।[1]

इस लोक मे उस लोक से वे अल्प सुख पाते न थे
हँसते हुए आते न थे रोते हुए जाते न थे ।

*　　　　*　　　　*

अपने लिए वे दूसरो का हित कभी हरते न थे
चिन्ता–प्रपूर्ण अशान्ति–पूर्वक वे कभी मरते न थे ।[2]

भारतीय सस्कृति म अतिथि सत्कार का बडा महत्त्व है। कवि ने लिखा है–

सर्वस्व करके दान जो चालीस दिन भूखे रहे
अपने अतिथि–सत्कार मे फिर भी न जो रूखे रहे ।
पर–तृप्ति कर निज तृप्ति मानी रन्तिदेव नरेश ने
ऐसे अतिथि–सन्तोष कर पैदा किये किस देश ने ?[3]

गुप्तजी ने इसी तरह स्वार्थ परमार्थ कर्म धर्म लोक–आत्मा शरीर आदि के प्रति भारतीय दृष्टिकोण का विस्तार से वर्णन किया है।[4] गुप्तजी ने

---

1 मैथिलीशरण गुप्त　भारत–भारती, पृष्ठ 15
2 　वही　　वही　पृष्ठ 16
3 　वही　　वही　पृष्ठ 19
4 यद्यपि सदा परमार्थ ही मे स्वार्थ थे हम मानते
पर कर्म्म से फल–कामना करना न हम थे जानते ।
विख्यात जीवन–व्रत हमारा लोक–हित एकान्त था,
आत्मा अमर है देह नश्वर यह अटल सिद्धान्त था ।
मैथिलीशरण गुप्त　भारत–भारती पृष्ठ 27

स्वार्थ—वृत्ति का परित्याग कर के परमाथ मे सलग्न होने का आह्वान करते हुए लिखा है— "परमार्थ क पीछे जगत मे स्वार्थ क त्यागी बनो ।"[1]

गुप्तजी ने अनेकता मे एकता अर्थात सबके साथ आत्मवत् व्यवहार करना ही व्यक्ति का सबसे बडा धर्म माना है ।[2] ससार मे व्यक्ति का जन्म दूसरो के हित के लिए हुआ है । इसलिए व्यक्ति को सदैव अपने निहित स्वार्थो का त्याग करके लोक के कल्याण मे लगा रहना चाहिए ।[3] इस प्रकार गुप्तजी की भारत—भारती मे व्यक्ति—धर्म की प्रतिष्ठा हुई है ।

गुप्तजी ने अपनी अन्य रचनाओ मे भारतीय सस्कृति का आख्यान किया है । साकेत के सन्दर्भ मे डॉ० वेदप्रकाश शास्त्री का कथन है कि "उन्होने भारतीय मान्यताओ के प्रति आस्था प्रकट की उनका निर्वाह किया और इन सबके द्वारा यह स्पष्ट कर दिया कि भारतीय मान्यताओ का जितना निर्वाह साकेत मे हुआ है उतना अन्यत्र नही ।"[4] कवि ने दशरथ के मुख से सत्य की महत्ता को इस प्रकार व्यक्त किया है—

सत्य से ही स्थिर है ससार
सत्य ही सब धर्मो का सार
राज्य ही नही प्राण—परिवार,
सत्य पर सकता हूँ सब वार ।[5]

गुप्तजी मर्यादा का पालन करना सामाजिक आदर्श समझते हैं, प्रत्येक की

---

1 मैथिलीशरण गुप्त भारत—भारती पृष्ठ 172
2 वही वही , पृष्ठ 175
3 वही वही पृष्ठ 176
4 डॉ० वेदप्रकाश शास्त्री उद्धृत मैथिलीशरण गुप्त और साकेत (डॉ० हनुमान दास गुप्त) पृष्ठ 15
5 मैथिलीशरण गुप्त साकेत पृष्ठ 35

सुख—सुविधा का ध्यान रखना मानव का धर्म है । यदि दूसरो की सुख सुविधा का ध्यान नहीं रखा गया तो सामाजिक आदर्श समाप्त हो जायेगे । साकेत मे वर्णाश्रम व्यवस्था को स्वीकार किया गया है । किन्तु उसमे जडता नही होनी चाहिए । ब्राह्मण हमारे लिए पूज्य हैं किन्तु यदि आततायी है तो उसका वध करने पर भी किसी प्रकार की हानि नही और यदि शूद्र है तो वह भी श्रेष्ठता का पात्र है ।

भारतीय सस्कृति मे व्यक्ति को त्रि—ऋणो से मुक्त होने का विधान है । राम ने पित्र—ऋण से मुक्ति की तुलना मे राज्य को तृण के समान माना है ।[1] पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर राम ने श्राद्ध—क्रिया सम्पन्न किया जिसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

है श्रद्धा पर ही—श्राद्ध, न आडम्बर पर
पर तुम्हे कमी क्या, करो कहे जो गुरूवर ।

*　　　*　　　*

यह कह सीता—सह नदी—तीर प्रभु आये,
श्रद्धा—समेत सद्धर्म समान सुहाये ।[2]

जब दशरथ अपने आदेश का उल्लघन करने की आज्ञा राम को देते हैं, तब राम स्पष्ट उत्तर देते हैं, जिसे नैतिकता और भारतीय सस्कृति से परिपूर्ण कहा जा सकता है—

तुम्हारा पुत्र मैं आज्ञा तुम्हारी—न मानूँ तो कहे क्या सृष्टि सारी?
प्रकट होगा कपट ही हाय ! इससे, न माँ के साथ होगा न्याय इससे।

---

1 उऋण होना कठिन है तात—ऋण से ।
अधिक मुझको नही है राज्य तृण से ।
मैथिलीशरण गुप्त　साकेत, पृष्ठ 40

2 मैथिलीशरण गुप्त　साकेत, पृष्ठ 117

मिटेगी वश—मर्यादा हमारी बनेगे हम अगौरव—मार्गचारी ।[1]

भारतीय सस्कृति माता—पिता और गुरू की निदा सुनने का निषेध करती है । जब सुमन्त कैकेयी एव भरत की निदा करते है तो राम उसका प्रत्युत्तर देते है—

उनकी निदा मेरी है,

प्रजा प्रीति की प्रेरी है ।

पर वे मेरे भ्राता हैं,

मझली मॉ भी माता है ।[2]

पुत्र का धर्म है कि वह माता—पिता की आज्ञा का पालन करे । साकेत के आठवे सर्ग मे जब कैकेयी राम को वन से अयोध्या वापस चलने के लिए कहती है, तो इस पर राम उत्तर देते है—

हा मात, मुझको करो न यो अपराधी,

मै सुन न सकूँगा बात और अब आधी ।

* * *

मॉ अब भी तुमसे राम विनय चाहेगा ?

अपने ऊपर क्या आप अद्रि ढाहेगा ?[3]

व्यक्ति का सबसे बड़ा धर्म है अन्याय एव दुष्कर्म का प्रतिकार करके न्याय की स्थापना करना। अन्यायी व्यक्ति चाहे उसका सगा—सम्बन्धी ही क्यो न हो, का साथ न देना । गुप्त जी ने 'जयद्रथ—वध' मे लिखा है—

अधिकार खो कर बैठ रहना, यह महा दुष्कर्म है,

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 42

2 वही वही, पृष्ठ 52

३ वही वही, पृष्ठ 125

न्यायार्थ अपने बन्धु को भी दण्ड देना धर्म है ।[1]

पत्नी का धर्म है कि वह पति को उत्कर्ष की ओर ले जाये । गुप्त जी ने जयद्रथ–वध मे लिखा है–

जो वीर पति के कीर्ति–पथ मे विघ्न–बाधा डालती
होकर सती भी वह कहाँ कर्त्तव्य अपना पालतीं ?[2]

प० रामचरित उपाध्याय ने चितामणि मे स्त्री–धर्म का वर्णन किया है । जब राम वन जाने के लिए तत्पर सीता को घर पर रोकना चाहते है तथा, दानव और वन पशुओ के भय से उन्हे भयाक्रान्त करते हैं जिससे सीता वन जाने का विचार छोड दे तो सीता सत्कर्म की व्याख्या करती हुई कहती है–

मै मूर्ख की कन्या नही हूँ, जानती हूँ धर्म को,
सत्कर्म के परिणाम को, दुष्कर्म के भी मर्म को ।[3]

धर्म का पालन यदि स्वाभाविक न हो, तो भी लोकनिदा के भय से इसका पालन करना चाहिए । जब पुत्र–स्नेह के कारण दशरथ मुनि विश्वामित्र के साथ राम को भेजने मे असमर्थता व्यक्त करते हैं, तो वशिष्ठ उन्हे लोक निदा का भय दिखाते हैं । कवि ने लिखा है–

धर्म सन्ध हैं आप, धर्म का त्याग न करिये
सम्भावित हो भूप । लोक निदा से डरिये ।[4]

कवि अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' ने मानव–धर्म का विशद वर्णन अपने अनेक रचनाओ मे किया है । उनका मानव धर्म जहाँ एक ओर प्राचीन सस्कृति के आदर्शो के अनुरूप है, वही उनमे युगीन आवश्यकता की अनुगूँज

---

1 मैथिलीशरण गुप्त जयद्रथ–वध, पृष्ठ 3
2 वही वही , पृष्ठ 6
3 प० रामचरित उपाध्याय रामचरित चितामणि, पृष्ठ 42
4 वही वही, पृष्ठ 56

भी सुनाई पडती है—

विपत्ति से रक्षण सर्व—भूत का ।

सहाय होना अ—सहाय जीव का ।

उबारना सकट से स्व—जाति का ।

मनुष्य का सर्व—प्रधान धर्म है ।।[1]

आगे कवि ने लिखा है—

भू मे सदा मनुज है बहु मान पाता ।

राज्याधिकार अथवा धन—द्रव्य—द्वारा ।

होता परन्तु वह पूजित विश्व मे है ।

निस्स्वार्थ भूत—हित औ कर लोक—सेवा [2]

गुप्त जी ने व्यक्ति—धर्म के सम्बन्ध मे लिखा है—

करो धर्म—धन—जन का त्राण,

देकर भी—लेकर भी प्राण ।

अधम आततायी को मार,

तुम्हे स्वरक्षा का अधिकार ।

जो तुमको वध करने जाय,

वित्त वधू को—हरने जाय ।

वध्य स्वय वह वर्बर वन्य

मारो देख उपाय न अन्य ।[3]

गुप्तजी की धारणा है कि धर्म, धन और जन-समुदाय की रक्षा करने के लिए आततायी का सहार करना व्यक्ति का धर्म है, ऐसा करने मे यदि उसका प्राण

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृष्ठ 116

2 वही वही, पृष्ठ 130

3 मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू , पृष्ठ 169

भी चला जाय तो यह उसके लिए गौरवपूर्ण होगा।

अत निष्कर्षत कहा जा सकता है कि द्विवेदी युगीन काव्य मे सस्कार त्रि—ऋण गुरू—महत्ता, माता—पिता की आज्ञा का पालन आदि विभिन्न सामाजिक सम्बन्धो की पवित्रता का वर्णन किया गया है । व्यक्ति द्वारा अपने—अपने धर्म का पालन करने से ही समाज विश्रृखलता एव अव्यवस्था से ग्रसित नही होता है । द्विवेदी युगीन कवियो ने भारतीय सस्कृति के व्यष्टि और समष्टि के धर्म का विशद वर्णन अपनी कविताओ मे किया है।

(ग) समष्टि धर्म—सास्कृतिक तत्त्व --

द्विवेदीयुगीन काव्य आदर्श एव नैतिकता का पोषक है । कवियो ने स्वार्थ—त्याग, कर्त्तव्य—पालन, आत्म गौरव आदि उच्चादर्शो की प्रेरणा दी है । द्विवेदीयुगीन कवियो की मूल चेतना सास्कृतिक और राष्ट्रीय है । भारतीय सस्कृति समन्वय की भावना मे विश्वास करती है । यह व्यक्ति एव समाज दोनो की महत्ता को सस्थापित करती है । जहाँ वह व्यक्ति धर्म द्वारा मनुष्य के कर्त्तव्य का निर्धारण करती है, वहीं समष्टि धर्म द्वारा वह उसे व्यापक दृष्टि प्रदान की है । यह व्यक्ति को 'स्व' का अतिक्रमण करके समष्टि की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देती है । भारतीय सस्कृति की आस्था समग्रता मे है, वैयक्तिकता मे नहीं, क्योकि समग्र चितन ही व्यक्ति को सत् का साक्षात्कार कराने मे सक्षम है । यह समग्रता बोध सकीर्णता के त्याग से ही सभव है । हमारी सस्कृति मे महान्, श्रेष्ठ एव अनुकरणीय वह है, जो त्याग द्वारा समष्टि के हित का चितन करता है । ऐसे आदर्श पुरूषो मे राम, कृष्ण, महात्मा बुद्ध, महात्मा गॉधी आदि का नाम लिया जा सकता है । भारत विभिन्न धर्मो तथा सप्रदायो (वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म, जैन धर्म, वैष्णव धर्म, शैव धर्म आदि) का उद्गम स्थल है और सभी धर्मो का मूल भाव करूणा, त्याग, प्राणी मात्र के प्रति प्रेम आदि है । यही करूणा, नि स्वार्थ प्रेम, त्याग आदि समष्टि धर्म के मूल्य तत्व हैं, जो व्यक्ति को लोक कल्याण की ओर उन्मुख

करता है । सत्य का साक्षात्कार करना ही धर्म है । सत्य का साक्षात्कार सृष्टि मे ही होता है क्योकि सृष्टि उसी सत् की अभिव्यक्ति है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि " सत्स्वरूप की व्यक्त प्रवृत्ति अर्थात् धर्म की ऊँची–नीची कई भूमिया लक्षित होती है– जैसे गृह धर्म कुल धर्म समाज धर्म लोक धर्म और विश्व धर्म या पूर्ण धर्म । किसी परिमित वर्ग के कल्याण से सम्बन्ध रखने वाले धर्म की अपेक्षा विस्तृत जन समूह के कल्याण से सम्बन्ध रखने वाला धर्म उच्च कोटि का है । धर्म की उच्चता उसके लक्ष्य के व्यापकत्व के अनुसार समझी जाती है । गृह धर्म या कुल धर्म से समाज धर्म श्रेष्ठ है समाज–धर्म से लोकधर्म लोकधर्म से विश्व धर्म जिसमे धर्म अपने शुद्ध और पूर्णस्वरूप मे दिखाई पडता है ।"[1] इस प्रकार मनुष्य अपने स्वार्थी एव सकीर्ण वृत्तियो का परित्याग करके उच्चभाव–भूमि को प्राप्त करता है । गोस्वामी तुलसीदास ने दूसरो की भलाई करने को 'धर्म' और दूसरो को पीडा पहुँचाने को 'अधर्म' कहा है । महात्मा गॉधी ने अस्पृश्य–सेवा को ईश्वर–सेवा कहा । द्विवेदी युगीन कवियो ने समष्टि धर्म की इस सास्कृतिक चेतना को अभिव्यक्ति दी है । यदि लोगो का ईश्वर की सत्ता मे विश्वास रहेगा, तो वे सत् और नीतिपरायण होगे । अब प्रश्न यह उठता है कि नीति परायणता क्या है ? स्वामी विवेकानद की धारणा है कि–"जो स्वार्थी है, वह 'अनैतिक' है और जो नि स्वार्थी है, वह 'नैतिक' है ।"[2] इस प्रकार समष्टि धर्म के मूल मे त्याग और निस्वार्थता की भावना विद्यमान है ।

क्षत्रिय का कर्त्तव्य है कि वह क्षात्र–धर्म का अनुगमन

---

1 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि (भाग–एक), पृष्ठ 142

2 स्वामी विवेकानद उद्धृत विवेकानद साहित्य सचयन (प्रकाशक व्योमरूपानद अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, नागपुर), पृष्ठ 19

करता हुआ लोक मे व्याप्त पीडा अन्याय अत्याचार आदि का दमन करके लोक को पीडा—मुक्त करे । कवि मैथिलीशरण गुप्त ने क्षत्रियो के कर्त्तव्य का वर्णन इस प्रकार किया है—

पापी जनो को दण्ड देना चाहिए समुचित सदा
वर—वीर क्षत्रिय—वश का कर्त्तव्य है यह सर्वदा ।।[1]

साकेत मे राम, खर—दूषण जैसे अन्यायी अत्याचारी, राक्षसो का वध करके आर्य—धर्म की प्रतिष्ठा करते हैं । गुप्तजी ने लिखा है—

व्रण—भूषण पाकर विजयश्री उन विनीत मे व्यक्त हुई,
निकल गये सारे कटक—से व्यथा आप ही व्यक्त हुई ।
जय जयकार किया मुनियो ने, दस्युराज यो ध्वस्त हुआ
आर्य—सभ्यता हुई प्रतिष्ठित आर्य—धर्म आश्वस्त हुआ ।[2]

दीनो दलितो पर दया करना, असहाय की सहायता, दुष्टो का प्रतिरोध करके न्याय की प्रतिष्ठा आदि से ही लोक—धर्म का मार्ग प्रशस्त होता है । आचार्य शुक्ल लिखते हैं कि "ससार मे मनुष्य मात्र की समान वृत्ति कभी नही हो सकती । वृत्तियो की भिन्नता के बीच से जो मार्ग निकल सकेगा वही लोक—रक्षा का मार्ग होगा— वही धर्म का चलता हुआ मार्ग होगा । जिसमे शिष्टो के आदर, दीनो पर दया, दुष्टो के दमन आदि जीवन के अनेक रूपो का सौंदर्य दिखाई पडेगा, वही सर्वांगपूर्ण लोक—धर्म का मार्ग होगा ।"[3] गुप्तजी की धारणा है कि सृष्टि के समस्त प्राणी उसी परम सत्ता की

---

1 मैथिलीशरण गुप्त जयद्रथ—वध, पृष्ठ 7

2 वही 'साकेत' पृष्ठ, 205

3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि—भाग एक, पृष्ठ 29

अभिव्यक्ति है अत उनमे भेदभाव करना व्यर्थ है ।[1] इसका अर्थ यह नही है कि दुष्ट को दुष्ट न समझा जाये । जन-समुदाय की रक्षा करने के लिए आततायियो का दमन करना विधि सम्मत है ।[2] कवि सभी प्राणियो की भलाई के लिए आह्वान करता है–

"सर्व भूत हितरत" निज धर्म,
हैं अभिन्न हम सबके मर्म ।[3]

* * *

दम्भ—दुराग्रह द्वेषद्रोह,
धन—जन—जीवन का भी मोह ।
करो स्वविभु के सम्मुख त्याग
यही बडी बलि है बडभाग ।[4]

राम आर्य—सस्कृति के आदर्श महापुरूष है । वे ऐसे विश्व की कामना करते हैं जिसमे विश्वास से विश्वास की रक्षा हो और दुखी, विवश, बलहीन एव दीनो को आश्रय प्राप्त हो । राम का जन्म ही आर्य सस्कृति की प्रतिष्ठा के लिए हुआ है । आर्यो का आदर्श है जन के सम्मुख धन को तुच्छ समझना विश्वासी के विश्वास की रक्षा करना स्वय

---

1 'तुममे है उनके ही प्राण
जिनके करगत थे कल्याण ।
देख सकी उनकी ही दृष्टि—
ब्रह्ममयी है सारी सृष्टि ।

मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू , पृष्ठ 26

2 मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू , पृष्ठ 171

3 वही वही , पृष्ठ 245

4 वही वही , पृष्ठ 267

दु ख झेल कर दूसरो को सुख देना । राम कहते है—

जगदुपवन के झखाड छॉटने आया।

मै राज्य भोगने नहीं भुगाने आया,

हसो को मुक्ता—मुक्ति चुगाने आया।

भव मे नव वैभव व्याप्त कराने आया

नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया ।[1]

राम लोक सग्रही हैं, लोक का हित उनके लिए सर्वोपरि है, धर्म की रक्षा के लिए, उन्होने धन और अधिकार को त्याज्य बताया है । गुप्तजी लिखते है—

त्याग प्राप्त का ही होता, मैं अधिकार नही खोता ।

अबल तुम्हारा राम नही, विधि भी उस पर वाम नही ।

वृथा क्षोभ का काम नही, धर्म बडा धन—धाम नही ।[2]

सिद्धार्थ अपनी पत्नी, पुत्र और राज्य का परित्याग इसलिए करते है कि वे ससार को त्रिविध—तापो से मुक्ति दिला सके । गुप्तजी ने लिखा है—

मैं त्रिविध—दु ख—विनिवृत्ति—हेतु,

बॉधू अपना पुरूषार्थ—सेतु,

सर्वत्र उडे कल्याण—केतु

तब है मेरा सिद्धार्थ नाम ।

ओ क्षण भगुर भव, राम नाम ।[3]

राजा का धर्म है कि वह प्रजा का पालन करे, परन्तु राजा ही अत्याचारी हो जाय, तो ऐसी स्थिति मे प्रजा न्याय के लिए किसके पास जायेगी ? हरिऔधजी ने 'प्रियप्रवास' मे कृष्ण और राधा को क्रमश लोक सेवी एव लोक

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 111

2 वही वही, पृष्ठ 49

3 वही वही, पृठ 16

सेविका के रूप मे चित्रित किया है । कालियानाग' का दहन श्रीकृष्ण इस लिए करते है क्योकि उसके कारण लोगो को अनेक कष्टो का सामना करना पडता है । श्रीकृष्ण का यह कथन उल्लेखनीय है—

सदा करूँगा अपमृत्यु सामना ।
स—भीत हूँगा न सुरेन्द्र—वज्र से ।
कभी करूँगा अवहेलना न मै ।
प्रधान धर्मांग—परोपकार की ।।

प्रवाह होते तक शेष—श्वास के ।
स—रक्त होते तक एक भी शिरा ।

स—शक्त होते तक एक लोम के ।
किया करूँगा हित सर्व—भूत का ।।[1]

मनुष्य का प्रधान धर्म सर्वभूतहित है । उसकी अवहेलना से धर्म की हानि होती है । इसलिए श्रीकृष्ण का कथन है कि व्यक्ति को कितने ही कष्ट क्यो न उठाने पडे ? उसे सदैव सभी प्राणियो के हित के लिए उद्यत रहना चाहिए। यद्यपि हिसा निदनीय कर्म है, परन्तु जिससे लोक को पीड़ा होती हो, उसका वध करना चाहिए, यदि ऐसा नही किया गया, तो ससार मे अधर्म की वृद्धि होगी, जिससे धर्मनिष्ठ को कष्ट उठाना होगा ।[2] हरिऔधजी ने लिखा है—

क्षमा नही है खल के लिए भली ।
समाज—उत्सादक दण्ड योग्य है ।
कु—कर्म—कारी नर का उबारना

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास पृष्ठ 109

2 वही वही, पृष्ठ 143

सु—कर्मियो को करता विपन्न है ।[1]

गुप्तजी की रचना 'कुणाल गीत' मे कुणाल अपने विरोधियो के प्रति भी क्षमा एव प्रेम भाव रखता है । कुणाल अधा है, वह अन्तर्मुखी है । उसका लक्ष्य लोक-कल्याण है । कुणाल समस्त प्रकृति मे सत्य का साक्षात्कार करता है । उसमे आध्यात्मिक उत्कर्ष की लालसा दिखाई पडती है ।[2]

सस्कृति मे नारी को शक्ति रूपा माना गया है । पौराणिक कथाओ मे अनेक राक्षसो एव असुरो का वध करने का उल्लेख मिलता है । गुप्तजी ने सैरन्ध्री मे नारी की शक्ति—रूप का चित्रण किया है, जिसमे शक्ति धर्म की प्रतिष्ठा हुई । सैरन्ध्री के कथन मे नारी के शक्तिरूप का विश्वास व्यक्त होता है—

अरे नराधम, तुझे नही लज्जा आती है?
निश्चय तेरी मृत्यु मुण्ड पर मँडराती है ।
मै अबला हूँ किन्तु न अत्याचार सहूँगी,
तुझ दानव के लिए चण्डिका बनी रहूँगी ।
मत समझ मुझे तू शशि—सुधा खल, निज कल्मष—राहु की
मैं सिद्ध करूँगी पाशता अपने वामा—बाहु की ।[3]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि द्विवेदीयुगीन काव्य मे त्याग, परोपकार आदि पर काफ़ी बल दिया गया है । पारस्परिक मत—भेदो को छोडकर जीवो के साथ आत्मवत् व्यवहार करने का आख्यान मिलता है । शक्ति की आराधना के साथ करूणा ही समष्टि के मगल का विधान करती है। शक्तिरहित लोकमगल की कल्पना असभाव्य है । ऋत की स्थापना सत् का

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृष्ठ 143
2 मैथिलीशरण गुप्त कुणालगीत, पृष्ट 124
3 वही सैरन्ध्री, पृष्ठ 23

उद्घाटन द्वन्दमयी सृष्टि मे बिना अनृत के हनन या असत् के परिहार के सभव ही नही होता । करूणा समष्टिधर्म है यही शक्ति को सर्वभूतहित के लिए कभी–कभी सन्नद्ध करती है जिससे कि मानव समाज मे सतुलन बना रहे मर्यादा बनी रहे नर मे नारायणत्व अभिव्यक्त होता रहे ।

(घ) व्यष्टि–समष्टि का समन्वय -

व्यष्टि और समष्टि के समन्वय की भावना भारतीय सस्कृति की अपनी विशेषता है । जहॉ विभिन्न धार्मिक–सामाजिक विधानो, वर्णव्यवस्था, आश्रम व्यवस्था पुरूषार्थ आदि द्वारा व्यक्ति को धर्माचरण करते हुए वैयक्तिक उत्कर्ष का विधान है वही आत्म–त्याग, परोपकार आदि द्वारा समष्टि के कल्याण की भी प्रेरणा दी गयी है । "जिससे सब मनुष्यो के दु ख छूटे, श्रेष्ठाचार और सुख बढे उसके करने को परोपकार कहते है ।"[1] इस प्रकार भारतीय सस्कृति वैयक्तिक और समष्टिगत् उत्कर्ष का विधान करती है । कठोपनिषद् का यह "बीजमत्र–उत्तिष्ठत् जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत (उठो, जागो । जब तक अभीप्सित वस्तु को प्राप्त नही कर लेते, तब तक बराबर उसकी ओर बढते जाओ ।"[2] से भी वैयक्तिक एव समष्टिगत उत्कर्ष की अनुगूँज सुनाई पडती है । "सर्वे भवन्तु सुखिन सर्वे सन्तु निरामया । सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दु ख भाग्भवेत् ।" मे सभी के कल्याण की कामना व्यक्त हुई है । इसी 'सर्व–भूत–हित' को ध्यान मे रखकर ही धर्म–नियामको ने पच-महायज्ञो का विधान किया, जिससे व्यक्ति के ह्रदय मे नित्य–प्रति सभी के कल्याण की भावना विद्यमान रहे । भारतीय सस्कृति इसी 'व्यष्टि–समष्टि का

---

1 स्वामी दयानन्द सरस्वती सत्यार्थ प्रकाश (स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश), पृष्ठ 407

2 कठोपनिषद् उद्धृत विवेकानद साहित्य सचयन, पृष्ठ 142 (प्रकाशक व्योमरूपानद, अध्यक्ष रामकृष्ण मठ धन्तोली, नागपुर)

समन्वय की विलक्षणता के कारण ही विश्व की अन्य सस्कृतियो से भिन्न है । भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय भी इसकी विशेषता है । यह भाव मनुष्य को 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' की ओर ले जाता है और माध्यम है— आत्म-त्याग और परोपकार की भावना, जहाँ पहुँच कर व्यक्ति अपना—पराया के द्वन्द्व से मुक्त हो जाता है और वह सत्य स्वरूप, परमसत्ता का साक्षात्कार करता है । पश्चिम की सस्कृति जहाँ हमे भोग की शिक्षा देती है वहाँ भारत की आध्यात्मिक सस्कृति हमे त्याग पूर्वक ग्रहण (तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा) का सदेश देती है । पाश्चात्य सभ्यता जहाँ दूसरो के भाग को भी छीन लेने का आग्रह करती है वहाँ भारतीय सस्कृति अपने स्वार्थ को परार्थ के हेतु छोडने के लिए उद्यत रहती है । भारतीय सस्कृति दूसरो का मगल चाहती है । दूसरो के मगल मे ही अपने मगल की भावना रहती है । गीता मे भी नि स्वार्थ कर्म का विधान है । स्वामी विवेकानद के सदेश का सार मर्म है - "स्वय पूर्ण बनो और दूसरो को भी पूर्ण बनाओ ।"[1] इस प्रकार भारतीय सस्कृति वैयक्तिक उत्कर्ष के साथ समष्टिगत् उत्कर्ष की ओर ले जाने वाली भावना से ओतप्रोत है ।

द्विवेदी युगीन कवियो ने इस सास्कृतिक समन्वय की भावना का सदेश अपनी कविताओ के माध्यम से जन-सामान्य तक सप्रेषित करके, उन्हे इस सास्कृतिक विलक्षणता से अवगत कराया । मैथिलीशरण गुप्त समन्वयवादी है । गुप्तजी 'साकेत' मे लिखते है—

> निज हेतु बरसता नही व्योम से पानी,
> हम हो समष्टि के लिए व्यष्टि—बलिदानी ।[2]

---

1 स्वामी विवेकानद विवेकानद साहित्य सचयन (प्रकाशक व्योमरूपानन्द अध्यक्ष रामकृष्णमठ धन्तोली, नागपुर), पृष्ठ 4

2 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 110

अर्थात जिस प्रकार वर्षा के जल का उपयोग बादल नही करता, बल्कि उसे सम्पूर्ण सृष्टि को समर्पित करता है उसी प्रकार मानव को भी वैयक्तिक सुख—दु ख से ऊपर उठकर समस्त प्राणियो की पीडा एव कष्ट के निवारणार्थ प्रयत्नशील रहना चाहिए । गुप्तजी ने साकेत' मे आध्यात्मिकता और भौतिकता के समन्वय पर बल दिया है । इसमे समन्वय करके ही व्यक्ति उत्कर्ष को प्राप्त कर सकता है ।[1] व्यक्ति अपने उच्चादर्शो एव स्वधर्म पालन द्वारा ही समष्टि का श्रद्धा—पात्र होता है ।'निश्चित रूप से ऐसा धर्माचरण लोक मे मगल का विधान करता है । आचार्य शुक्ल ने लिखा है कि "सच पूछिए तो इसी श्रद्धा के आश्रय से उन कर्मो के महत्त्व का भाव दृढ होता हैं जिन्हे धर्म कहते है और जिनमे मनुष्य—समाज की स्थिति है । कर्त्ता अपने सत्कर्म द्वारा विस्तृत क्षेत्र मे मनुष्य की सद्वृत्तियो के आकर्षण का एक शक्ति केन्द्र हो जाता है । उस समाज मे भिन्न—भिन्न हृदयो से शुभ भावनाएँ मेघ—खण्डो के समान उठकर इतनी घनी हो जाती है कि उनकी घटा—सी उमड पडती है और मगल की ऐसी वर्षा होती है कि सारे दु ख और क्लेश बह जाते हैं।"[2] राम का चरित्र उदात्त है, अपने उदात्त कार्यों एव आचरण से वे प्रजा के श्रद्धा—भाजन हैं । जिस समय वे वन—गमन के लिए प्रस्थान करते हैं, प्रजा उन्हे ऐसा करने से रोकती है और ऐसा करना उसके लिए स्वाभाविक भी है । कवि मैथिलीशरण ने इसका चित्रण करते हुए लिखा है—

मै स्वधर्म से विमुख नही हूँगा कभी,
इसीलिए तुम मुझे चाहते हो सभी ।
पर मेरा यह विरह विशेष विलोक कर,

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 231

2 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि (भाग एक), पृष्ठ 12-13

करो न अनुचित कर्म—धर्म—पथ रोक कर ।[1]

प्रिय-प्रवास के श्रीकृष्ण बाल्यावस्था से ही दीन--हीन असहाय एव पीड़ितो की सेवा मे लगे है ऐसे लोक-सेवक का मथुरा—गमन सुनकर वहाँ का जनमानस विलाप करने लगता है लोग व्याकुल हो उठते है । यहाँ तक की वे उनके बदले अपने धन—धान्य देने के लिए तैयार हैं—लेकिन उनके कृष्ण को कस मथुरा न बुलाये । एक वृद्ध का कथन यहाँ दृष्टव्य है—

रत्नो की है न तनिक कमी आप ले रत्न ढेरो
सोना चॉदी सहित धन भी गाडियो आप ले ले ।
गाये ले ले गज तुरग भी आप ले ले अनेको ।
लेवे मेरे न निजधन को हाथ मै जोडता हूँ ।[2]

गुप्तजी ने भारत—भारती रचना मे आध्यात्मिक चितन के सम्बन्ध मे लिखा है—

जिसकी प्रभा के सामने रवि—तेज भी फीका पडा,
अध्यात्म—विद्या का यहाँ आलोक फैला था बडा ।
मानस—कमल सबके यहाँ दिन—रात रहते थे खिले
मानो सभी जन ईश की ज्योतिश्छटा मे थे मिले ।।[3]

समस्त प्रकृति का अतिम ध्येय मुक्ति है और यह मुक्ति पूर्ण नि स्वार्थता द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है । इसके लिए क्रमश तीन मार्ग हैं— कर्मयोग ज्ञानयोग एव भक्ति योग । इनमे कर्मयोग निस्वार्थपरता एव सत्कर्म द्वारा मुक्तिलाभ करने का एक धर्म और स्वय मे नीतिशास्त्र है । नि स्वार्थ एव सत्कर्मो द्वारा स्वय तथा दूसरो का भी कल्याण होता है । कवि

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 60

2 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' 'प्रियप्रवास', पृष्ठ 36

3 मैथिलीशरण गुप्त भारत—भारती, पृष्ठ 37

मैथिलीशरण गुप्त कर्मयोगी बनकर परमार्थ कार्य मे निरत रहने का आह्वान करत है –

> भूलो न ऋषि–सन्तान हो अब भी तुम्हे यदि ध्यान हो–
> तो विश्व को फिर भी तुम्हारी शक्ति का कुछ ज्ञान हो ।
> बनकर अहो ! फिर कर्म्मयोगी वीर बडभागी बनो
> परमार्थ के पीछे जगत मे स्वार्थ के त्यागी बनो ।[1]

हरिऔधजी ने प्रियप्रवास' मे ऐसे व्यक्तियो का वध करना व्यक्ति का धर्म घोषित किया है जो समाज उत्पीडक हो, धर्म का विप्लव करने वाला और मानवता का द्रोही है ।[2] हरिऔध जी ने 'प्रियप्रवास' मे जिस 'नवधा–भक्ति' का वर्णन किया है वह लोक–कल्याणपरक है । इस सन्दर्भ मे आचार्य शुक्ल का कथन उल्लेखनीय है– "ससार मे परोपकार और आत्म त्याग के जो उज्ज्वल दृष्टान्त कही–कही दिखाई पडा करते है, वे इसी अनुभूति मार्ग मे कुछ–न–कुछ अग्रसर होने के है । यह अनुभूति मार्ग या भक्तिमार्ग बहुत दूर तक तो लोक–कल्याण की व्यवस्था करता दिखाई पडता है, पर और आगे चलकर यह निस्सग साधक को सब भेदो से परे ले जाता है ।[3] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भक्तिमार्ग समष्टि से होता हुआ, सभी प्राणियो मे ईश्वर का साक्षात्कार करता है और अत मे उसी परम सत्ता मे अपनी सत्ता को विलीन

---

1 मैथिलीशरण गुप्त भारत–भारती, पृष्ठ 172

2 समाज–उत्पीडक धर्म्म–विप्लवी ।
स्व–जाति का शत्रु दुरन्त पातकी
मनुष्य–द्रोही भव–प्राणि–पुज का ।
न है क्षमा–योग्य वरच वध्य है ।

अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' 'प्रियप्रवास', पृष्ठ 143

3 आचार्य रामचद्र शुक्ल चिन्तामणि भाग–एक पृष्ठ 141

कर देता है । भक्ति का समष्टिपरक एक नया विवेचन हरिऔध जी ने किया है । यह न केवल युगानुकूल है बल्कि भक्ति को विराटता प्रदान करता है और उसको ऐकान्तिकता से उबार कर समष्टि मे सचरण के लिए तैयार करता है । राधा दास्य–भक्ति के सम्बन्ध मे कहती है–

जो बाते हैं भव–हितकारी सर्व–भूतोपकारी ।
जो चेष्टाये मलिन गिरती जातियॉ हैं उठाती ।
हो सेवा मे निरत उनके अर्थ उत्सर्ग होना ।
विश्वात्मा–भक्ति भव–सुखदा दासता–सज्ञका है ।।[1]

इसी प्रकार स्मरण–अभिधा भक्ति' के स्वरूप का विवेचन करती हुई राधा का कथन है–

कगालो को विवश विधवा औ अनाथाश्रितो की ।
उद्विग्नो की सुरति करना औ उन्हे त्राण देना ।
सत्कार्य्यों का पर–हृदय की पीर का ध्यान आना ।
मानी जाती स्मरण–अभिधा भक्ति है भावुको मे ।।[2]

मैथिलीशरण गुप्त ने 'सदेश' शीर्षक कविता मे इस सृष्टि को उसी विभु की अभिव्यक्ति बताते हुए कहा है कि मनुष्य, करूणा विश्व–बन्धुता द्वारा ही धर्म रूपी धन को प्राप्त कर सकता है ।[3] 'मुक्ति' कविता मे गुप्त जी ने 'आत्मवत् सर्व भूतेषु' का सदेश दिया है ।[4] कवि गुप्तजी ने अपनी अन्य कविताओ मे भी,

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृष्ठ 200

2 वही वही वही

3 मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू , पृष्ठ 35

4 समझो स्वात्मा सी सब सृष्टि,
रक्खो सबपर सोहृद दृष्टि ।
मैथिलीशरण गुप्त हिन्दू , पृष्ठ 155

इस बात का आख्यान किया है कि यह ससार उसी परम प्रभु की अभिव्यक्ति है। अत समस्त प्राणियो के साथ आत्मवत् व्यवहार करना चाहिए । व्यक्ति को अपने दम्भ ईर्ष्या द्वेष का परित्याग कर समस्त प्राणियो के साथ समता का व्यवहार करना चाहिए । लोक के मगल मे ही व्यक्ति का भी कल्याण निहित है ।

अत स्पष्ट है कि द्विवेदीयुगीन कवियो ने व्यष्टि—समष्टि की भावना का समन्वय अपने काव्य मे प्रस्तुत किया है । उन्होने इस बात की स्थापना अपने काव्य मे किया कि यह जगत् तभी तक कल्याणमय रहेगा जब सभी को उसका यथोचित प्राप्य होगा । इस प्रकार यह कह सकते हैं कि व्यष्टि का अस्तित्व समष्टि मे और समष्टि की शक्ति व्यष्टि मे निहित है । इसलिए मनुष्य को सकीर्णता और स्वार्थ—भावना से ऊपर उठकर समष्टि का हित चितन करना चाहिए, क्योकि बहुत्व मे एकत्व ही सृष्टि का रहस्य है ।

भारतीय मनुष्यत्व : गरिमा और लोक-मगल का समन्वय

भारतीय मनुष्यत्व गरिमा और लोक-मगल का समन्वय

भक्तिकाल ने शास्त्र—सम्मत और खण्डन—मण्डन की धार्मिक दृष्टि दी । रीतिकालीन कवि सामन्ती चकाचौंध और विलासिता मे ही कैद रहे, उनकी वृत्तियॉ जनसामान्य की समस्याओ की ओर सचरित ही नहीं हुईं । भारतेन्दु युगीन कवियो ने जनता की समस्याओ की ओर पहली बार व्यापक रूप मे ध्यान दिया । द्विवेदी युगीन काव्य मे मानव को 'मानव' रूप मे प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया गया । यहॉ कवियो ने सामान्य मानव को काव्य का विषय बनाया । इस सन्दर्भ मे डॉ० श्री कृष्णलाल का कथन है कि "बीसवी शताब्दी मे जब कविता का क्षेत्र राजदरबारो से हटकर साधारण जनता मे आ गया तब नायिका भेद कविता का विषय न रह सका और उसके स्थान पर सामान्य मानवता तक विस्तृत हो गया ।"[1] हरिऔधजी ने 'प्रियप्रवास' मे कृष्ण के प्रसिद्ध अमानुषिक कार्यों को इस प्रकार चित्रित किया है कि वह एक देश—सेवक और समाज—सेवक का स्वाभाविक और मानुषिक कार्य प्रतीत होता है । गुप्तजी की रचना 'पचवटी' मे लक्ष्मण का यह कथन कि "मैं मनुष्यता को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूँ ।"[2] मानो, द्विवेदी युगीन काव्य में मानव और मानवीय गुणों की समवेत् स्वीकृति की उद्घोषणा है।

(क) महाकाव्य के नायक --

महाकाव्य के नायक के सन्दर्भ में आचार्य विश्वनाथ का मत है कि "इसमें एक देवता या सद्वशोउद्भव क्षत्रिय, जिसमें धीरोदात्तत्वादि गुण हो—नायक होता है, कहीं एक वश के सत्कुलीन अनेक भूप भी नायक होते हैं।"[3]

---

1 डॉ० कृष्णलाल आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास, पृष्ठ 44

2 मैथिलीशरण गुप्त पचवटी, पृष्ठ 12

3 आचार्य विश्वनाथ साहित्य दर्पण उद्धृत साहित्यिक निबन्ध (डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त), पृष्ठ 327

आगे डॉ० गुप्त ने लिखा है कि "महाकाव्य का नायक एक ऐसा आदर्श और महान व्यक्ति होता है, जिससे वह पाठको की श्रद्धा प्राप्त कर सके तथा उन्हे कोई सदेश दे सके ।"[1] इस प्रकार स्पष्ट है कि महाकाव्य का नायक वही हो सकता है, जो किसी कुलीन वश से सम्बन्धित हो, वह उदात्त हो, उदात्त गुण आवश्यक है इसके आधार से वह ललित, प्रशात व उद्धत तक हो सकता है । वह शीलवान हो और अपने सद् आचरण से अन्याय, अत्याचार का विरोध करता हुआ अत मे उस पर विजय प्राप्त कर लोक मे न्याय और धर्म की स्थापना करने मे समर्थ हो । इस प्रकार वह अपने उदात्त चरित्र एव उदात्त कार्यों से लोक मे श्रद्धा का पात्र बनता है ।

द्विवेदी–युग मे 'प्रियप्रवास', 'साकेत' और 'रामचरित चितामणि' महाकाव्य लिखे गए । इनमे 'प्रियप्रवास' के नायक 'श्रीकृष्ण' हैं और 'साकेत' एव 'रामचरित चितामणि' महाकाव्य के नायक 'राम' हैं। 'प्रियप्रवास' और 'साकेत' के नायक पुराणो मे वर्णित गुणो से युक्त हैं, परन्तु उनमे युगीन परिस्थितियों के अनुरूप कुछ परिवर्तन किया गया है, लेकिन उनका मूल स्वरूप विश्रृखलित नहीं होने पाया है । 'रामचरित चितामणि' महाकाव्य पर वाल्मीकि रामायण और 'रामचरित मानस' का प्रभाव है । परन्तु जहाँ वाल्मीकि के राम पुरूषोत्तम रूप मे चित्रित हैं, वहीं 'रामचरित चितामणि' में उन्हें ईश्वर माना गया है । कहीं–कहीं अध्यात्म रामायण का भी प्रभाव है । लेकिन इसमे वर्णित राम का चरित्र, न तो पौराणिक चरित्र से और न ही द्विवेदी युगीन आदर्शों एव मान्यताओ से ही मेल खाता है ।

प्रियप्रवास - श्रीकृष्ण

हरिऔधजी की धारणा है कि समाज मे व्याप्त बुराइयो का मूलाधार स्वार्थपरता है । यदि व्यक्ति इस स्वार्थपरता से ऊपर उठ

---

1 डॉ० गणपतिचद्र गुप्त साहित्यिक निबन्ध, पृष्ठ 328

जाय, तो उसे सम्पूर्ण जगत् अपना कुटुम्ब लगेगा और इससे व्यक्ति और समाज दोनो का उत्कर्ष होगा । हरिऔधजी ने अपनी इस धारणा की अभिव्यक्ति 'प्रियप्रवास' रचना मे की है । यहाँ कृष्ण, राधा, गोप—गोपिया सभी अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की तिलाजलि देकर समष्टि—हित को महत्त्व देते हैं। श्रीकृष्ण मथुरा की जनता के हितार्थ ब्रजवासियों के मधुर मिलन को त्याग देना उचित समझते हैं क्योकि वर्तमान परिस्थिति मे त्याग उनके लिए अपरिहार्य हो गया था । यदि वे स्वय ऐसा त्याग नहीं करते तो किस प्रकार गोप—गोपियो को शिक्षा देते । एक तरह से यह स्वार्थ त्याग का सदेश था

स्वाधीनता सग्राम की हवा तेज होने लगी थी । 'प्रियप्रवास' मे कृष्ण का चरित्र, बौद्धिकता एव नैतिकता से परिपूर्ण है । ऐसा करना युगीन आवश्यकताओ के अनुरूप था । कवि ने श्रीकृष्ण को एक कर्मयोगी और लोकप्रिय नेता के रूप मे चित्रित किया है । उनका चरित्र, शक्ति, शील एव सौन्दर्य से समन्वित है । इन गुणो के कारण ही वे गोकुलवासियों के आकर्षण के केन्द्र—बिन्दु बने हुए हैं । उन्हें अपने सुख—दु ख की चिता नहीं है, बल्कि उनकी चिता की व्यापकता देश जाति और अपने इष्ट—मित्रों के सुख—दु ख में है । जब उन्हें कष्ट मे पड़ा देखते हैं, तो उनके दु ख एव कष्टो के निवारण के लिए वे पूर्ण मनोयोग से जुट जाते हैं । इस तरह के कार्यों से उनके उदात्त चरित्र का परिचय मिलता है ।

श्रीकृष्ण स्व—जाति की अत्यन्त दुर्दशा, मनुष्य मात्र की विगर्हणा और प्राणियो के कष्टो को देखकर अत्यन्त उत्तेजित हो उठते हैं और कहते हैं कि मैंने जाति रक्षा के लिए ही जीवन धारण किया है । धर्म का मुख्य उद्देश्य सर्व—भूतहित के लिए सदैव तत्पर रहना है । उसकी अवहेलना मैं किसी प्रकार नहीं कर सकता हूँ ।[1] उनकी उच्च—भावना एव औदात्य का

---

1. अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृष्ठ 108—109

दर्शन हमे प्रारम्भ मे ही मिल जाता है । यद्यपि अभी उनकी अवस्था बारह वर्ष की ही है, फिर भी वे महात्माओ की भाँति सुकर्मों मे रत हैं और साम्य भावना का पोषण करते हुए दिखाई पडते हैं । नायक श्रीकृष्ण के अनुपम चरित्र का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है–

बाते बडी सरस थे कहते बिहारी ।
छोटे बडे सकल का हित चाहते थे ।
अत्यन्त प्यार दिखला मिलते सबों से ।
वे थे सहायक बड़े दु ख के दिनो मे ।[1]

श्रीकृष्ण धैर्यवान हैं । वे विपरीत परिस्थितियो मे भी विचलित नहीं होते हैं , बल्कि शीघ्र ही अपना पथ निश्चय करने वाले हैं । जब ब्रज पर मूसलाधार वृष्टि होने लगती है, तो वे उससे घबड़ाते नहीं, बल्कि अपना मार्ग निश्चित करते हुए अकर्मण्यता का जीवन व्यतीत करने वालो को कर्मण्यता का सदेश देते हैं । कृष्ण का कथन है कि–

रह अचेष्टित जीवन त्याग से ।
मरण है अति–चारू सचेष्ट हो ।
विपद–सकुल विश्व–प्रपच है ।
बहु–छिपा भवितव्य रहस्य है ।
प्रति–घटी पल है भय प्राण का ।
शिथिलता इस हेतु अ–श्रेय है ।[2]

यहॉ कवि ने स्पस्ट किया है कि यद्यपि भवितव्य पर किसी का वश नही है, फिर भी प्राणी का सदैव भय के वशीभूत होना ठीक नहीं है । कवि का मानना

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृष्ठ 129

2 वही वही , पृष्ठ 124

है कि भय के वशीभूत होकर सम्पूर्ण गतिशीलता एव अग्रगामिता का परित्याग करने से अच्छा है कि मनुष्य को क्रियाशील बने रहना चाहिए क्योकि गति ही जीवन है । इस प्रकार कवि ने निवृत्ति–मार्ग के बदले प्रवृत्ति–मार्ग का आख्यान प्रस्तुत किया है । कृष्ण का मानना है कि यदि दुष्कर्मी व्यक्ति अपनी दुष्प्रवृत्तियो का त्याग नही करता है, तो उसका दमन करना श्रेयष्कर है क्योकि ऐसे व्यक्ति समाज और राष्ट्र के लिए घातक होते हैं । श्रीकृष्ण की धर्मशीलता और 'सर्व–भूत–हितरता' की भावना का आख्यान राधा ने इस प्रकार किया है–

कोई प्यारा सुहृद उनका या स्व–जातीय प्राणी ।
दुष्टात्मा हो, मनुज–कुल का शत्रु हो, पातकी हो।
तो वे सारी हृदय–तल की भूल के वेदनाये ।
शास्ता हो के उचित उसको दण्ड औ शास्ति देगे ।
हाथो मे जो प्रिय–कुँवर के न्यस्त हो कार्य्य कोई ।
पीडाकारी सकल–कुल का जाति का बाधवो का
तो हो के भी दुखित उसको वे सुखी ही करेगे ।।
जो देखेगे निहित उसमे लोक का लाभ कोई ।।[1]

इस तरह कृष्ण उस मार्ग के अनुगामी हैं, जो श्रेष्ठ एव कल्याणकारी है । वे मनुष्यता का गौरव स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हैं । वे मथुरा राज्य को व्यवस्थित करने के लिए ही ब्रज नहीं जाते, फिर भी ब्रज का स्मरण, उनकी व्यथा को बढाती रहती है । वे उसे भूलते नही, है।

श्रीकृष्ण प्रेमी हैं, किन्तु, उनका प्रेम एकागी नहीं है उनकी दृष्टि विश्व कल्याण की ओर है । कवि लिखता है–

वे जी से है अवनि जन के प्राणियो के हितैषी ।

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृष्ठ 152

प्राणो से है अधिक उनको विश्व का है प्रेम प्यारा ।।[1]

श्रीकृष्ण का व्यक्तित्व पूरी तरह से विश्वमानव के प्रति समर्पित है, ऐसी स्थिति मे राधा गोप–गोपियो का रूदन उनके मार्ग मे बाधक कैसे हो सकता है? उनका सेवा–भाव इतना व्यापक है कि पूरा ब्रज–मण्डल भी उसी के प्रभाव मे आकर लोक–सेवा को अपना ध्येय बनाता है । आदर्श प्रेमिका राधा का व्यक्तित्व पूरी तरह से बदल जाता है और वह लोक–सेवा मे ही अपने प्रियतम की छवि देखती है ।

इस प्रकार जन–हित के लिए कृष्ण का व्यक्तिगत स्वार्थ त्याग और गोपियो को भी स्वार्थ से ऊपर उठने की शिक्षा देना अवश्य ही प्रशसनीय है । प्रेम की यह उदात्तता द्विवेदी युगीन मानसिकता —लोक मगल—की ज्ञापक है ।

साकेत राम

मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'साकेत' द्विवेदी–युग का प्रमुख महाकाव्य है । यह एक चरित्र प्रधान काव्य है । "इसमे बहुत से पात्र हैं जो उर्मिला के चरित्र को विकसित करने मे सहायक है । यद्यपि गुप्तजी ने लक्ष्मण और उर्मिला को प्रधानता देने का प्रयास किया है किन्तु अपने आराध्यदेव राम को भुला न सके और अनायास ही प्रमुख स्थान पर ला बिठाया है ।"[2] 'साकेत' के नायक राम हैं, जो नायक मे अपेक्षित उदात्त गुणो से विभूषित हैं । उनका चरित्र और उनका कार्य उदात्त है । 'साकेत' मे तुलसी के अवतारवाद के स्थान पर या ईश्वर की मानवता के स्थान पर मानव की ईश्वरता की स्थापना की गयी है । राम शक्ति, शील एव सौन्दर्य से ओत–प्रोत हैं और ईश्वर के अवतार हैं । इस सम्बन्ध मे गुप्त जी ने 'साकेत'

---

1 अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध' प्रियप्रवास, पृष्ठ 168

2 डॉ० प्रतिपाल सिह बीसवीं शताब्दी (पूर्वार्द्ध) के महाकाव्य, पृष्ठ 118

के मुख पृष्ठ पर "राम तुम मानव हो? ईश्वर नही हो क्या?"[1] द्वारा अपना मन्तव्य प्रकट किया है । आगे गुप्तजी घोषणा करते हैं कि—

हो गया निर्गुण सगुण—साकार है,

ले लिया अखिलेश ने अवतार है ।

किसलिए यह खेल प्रभु ने है किया?

मनुज बन कर मानवी का पय पिया ?[2]

मनुष्य मे यह ईशत्व अवतरित हो सकता है। मनुष्य में इसी ईश्वरीय सत्ता के कारण राम धैर्यवान, गम्भीर और वीर पुरूष हैं । विपरीत परिस्थितियो मे भी वे धैर्यवान बने रहते हैं, जब वे देखते हैं कि उनके पिता शोकातुर हैं और उसमे माता की भी सहमति है, तो वे अपने कर्त्तव्य और धर्म का निर्धारण बडे ही सहज ढग से करते हैं । वे शोकातुर पिता को आश्वासन देते हुए कहते हैं कि 'भरत और मुझमे कोई अतर नहीं है भरत यहाँ अपना कर्म पालन करेंगे और मैं वन मे अपना धर्म पालन करूँगा।'[3] वे पिता की आज्ञा पालन करना अपना स्वधर्म मानते हैं, लेकिन जब लक्ष्मण पिता पर क्रोध प्रकट करते हैं, तो, वे यह कर कि 'बडों की बात अविचारणीय होती है, उसे मणियुक्त मुकुट जैसा मूल्यवान समझ कर धारण करना चाहिए ।'[4] इसी कारण वे उनके वचन को शिरोधार्य कर वनवास स्वीकार करते हैं । भाइयों के प्रति निश्छल प्रेम भाव है, इसका दर्शन हमे उस समय मिलता है, जब सुमित्रा कहती हैं कि मैं तो अपना भाग छोड ही नहीं सकती । उस समय राम कहते हैं—

---

1 मैथिलीशरण गुप्त 'साकेत' मुख पृष्ठ

2 वही वही, पृष्ठ 12

3 वही वही, पृष्ठ 38

4 बड़ो की बात है अविचारणीय, मुकुट—मणि—तुल्य शिरसा धारणीया ।

मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 40

भैया भरत अयोग्य नही, राज्य राम का भोग्य नहीं ।
फिर भी वह अपना ही है, यो तो सब सपना ही है ।
मुझको महा महत्त्व मिला, स्वय त्याग का तत्व मिला ।[1]

आत्म–त्याग ही मनुष्य को मनुष्यता' तक पहुँचाता है । इसी आत्म–त्याग से ही व्यक्ति महत्त्व का अधिकारी होता है । राम, लक्ष्मण को शक्ति लगने पर कितने दुखित होते है ? उनके इस कथन "तुम न जगे तो सुनो, राम भी सो जावेगा ।"[2] मे कितनी मार्मिक वेदना एव असीम प्रेम–भाव प्रकट हुआ है ।

राम धर्म के साकार अवतार हैं । राक्षसो द्वारा दण्डक वन मे मुनियो के यज्ञ–याज्ञ के विधान मे बाधा डालना, उनकी हत्या कर देना आदि जैसे अधर्म का सहन राम किस प्रकार कर सकते हैं ? अतएव धर्म धुरन्धर राम ने राक्षसो का वध कर मुनियो को उनके त्राण से मुक्त किया । राम आदर्शवादी हैं वे संसार को आदर्श बताने के लिए ही अवतीर्ण हुए हैं । उनका आचरण, कर्म, वचन आदि सभी, आदर्श की स्थापना करते हैं । अपने आदर्श चरित्र द्वारा वे अन्याय, अत्याचार और अधर्म का विनाश कर लोक मे धर्म की स्थापना करते हैं, वहीं अपने आदर्श–त्याग द्वारा समाज के सामने उच्चादर्शों की स्थापना कर लोक–कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते हैं । वे धर्म के सामने धन को तुच्छ बताकर आज की पूँजीवादी एव भौतिकतावादी सस्कृति की निस्सारता का आख्यान कर मानवतावादी दृष्टिकोण का पोषण करते हैं । आज की इस भौतिकतावादी सस्कृति की भीड मे मनुष्यता खोती जा रही है, धन की महत्ता स्थापित होने पर एक वर्ग अन्याय की तरफ़ बढ रहा है और निरन्तर शोषण की प्रक्रिया जारी है। इस शोषण की प्रक्रिया ने मानव के अस्तित्व को सकट मे डाल दिया है। 'साकेत' के राम का यह कथन

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 49

2 वही वही, पृष्ठ 237

दृष्टव्य है–

मैं आया उनके हेतु की जो तापित है
जो विवश विकल बल–हीन दीन शापित है ।[1]

राम का चरित्र उदात्त है । वे सभी को कल्याण मार्ग पर चलने की प्रेरणा देता हैं । इसीलिए वे कहते हैं कि––– "जो लोग गुण, कर्म, वचन से मेरे चरित्र का अनुसरण करेगे वे लोग अन्य लोगो का भी उद्धार करेगे ।"[2] राम के चरित्र की सबसे बडी विशेषता है महान त्याग, अपने स्वत्व का त्याग एव परदुखकातरता की भावना और उसके निवारण के लिए क्रियाशील होना । यहॉ यह उल्लेखनीय है कि 'रामचरित मानस' के राम धर्म की स्थापना हेतु उत्पन्न हुए थे किन्तु 'साकेत' के राम नवीनता लिए हुए आदर्श बतलाने के लिए आये हैं। यहॉ यह कहना अनुचित न होगा की आदर्श मे ही व्यष्टि या समष्टि की सभावनाए है बिना जातीय आदर्श के कोई जाति बहुत दिन तक अपने अस्तित्व की सरक्षा नहीं कर सकती । साकेत के राम मे जो विनोदप्रियता है, वह मानस' के राम मे कहॉ है ? वे वन मे सीता के साथ विनोदपूर्ण वार्ता करते है–

हो जाना लता न आप लता–सलग्ना,
करतल तक तो तुम हुईं नवल–दल–मग्ना ।
ऐसा न हो कि मैं फिरूँ खोजता तुमको,
है मधुप ढूढ़ँता यथा मनोज्ञ कुसुम को ।

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 111

2 पर जो मेरा गुण कर्म, स्वभाव धरेगे
वे औरो को भी तार, पार उतारेगे ।
मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 111

वह सीताफल जब फलै तुम्हारा चाहा,

मेरा विनोद तो सफल,— हँसी तुम आहा ।[1]

जहाँ उनमे कोमल प्रणय तथा मधुरता है, विनोदप्रियता है, वही, दुष्टो का दमन करने के लिए वे शक्ति का परिचय देते हैं । रण क्षेत्र मे रावण को ललकारते हुए वे कहते हैं—

"धिक भीरू ! पीठ जो मुझसे फेर ।

इसे समझ रख, आज भाग भी तू न सकेगा ।"[2]

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि राम के चरित्र मे एक ही साथ सरसता, कोमलता, प्रचण्डता आदि भावो का समावेश है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लोक धर्म के सौन्दर्य के लिए इस प्रकार के भावो का होना अनिवार्य माना है। "भीषणता और सरसता, कोमलता और कठोरता, कटुता और मधुरता, प्रचण्डता और मृदुता का सामजस्य ही लोक धर्म का सौन्दर्य है ।"[3] राम के चरित्र मे इसी सौन्दर्य का दर्शन होता है ।

रामचरित चिन्तामणि राम

प० रामचरित उपाध्याय द्वारा विरचित 'रामचरित चिन्तामणि पच्चीस सर्गों मे विभक्त महाकाव्य है । इसका कथानक हिन्दू कुलभूषण क्षत्रिय धीरोदात्त नायक राम के चतुर्दिक प्रवर्तित हुआ है । "उपाध्याय जी ने ईश्वर के साथ ही राम को युगीन नेता के रूप मे धरती पर अवतरित कराया है और निश्चित ही राम के रूप मे एक ऐसे आदर्श चरित्र की अवतारणा की है जो हममे एक नयी चेतना का स्फुरण करता है ।"[4]

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 107

2 वही वही, पृष्ठ 247

3 आचार्य रामचन्द्र शुक्ल चिन्तामणि भाग-एक, पृष्ठ 148

4. डॉ० रामवृक्ष सिह महाकवि रामचरित उपाध्याय, पृष्ठ 203

'रामचरित चिन्तामणि' मे राम के आगमन को एक लोक-नेता के रूप मे चित्रित किया गया है—

भव रोग जिसके नाम लेने से न रहता पास है,

होकर वही अनमन नृपति घर कर रहा उपवास है ।

जिसके स्मरण से छूट जाता है जगत् , वह आप ही

ससार मे आकर पडा है, ईशिता विभु की यही ।[1]

डॉ० सिह ने अपने शोध प्रबन्ध 'महाकवि रामचरित उपाध्याय' मे लिखा है कि "इस प्रकार मर्यादा, शील और शौर्य से मडित सौन्दर्यपूर्ण राम को काव्य का नायक बनाकर उपाध्यायजी ने नायकत्व की गरिमा को और अधिक प्रतिष्ठापित कर दिया है ।"[2] लेकिन 'रामचरित चिन्तामणि' के अध्ययन से डॉ० सिह का यह निष्कर्ष तर्कसगत और उचित नहीं लगता है । उपाध्यायजी द्वारा प्रस्तुत राम का चरित्र पूर्व वर्णित एव युगीन महाकाव्य (साकेत) के नायक के आदर्शों के प्रतिकूल है । द्विवेदीयुगीन काव्य मे जबकि मनुष्यता की प्रतिष्ठा का चतुर्दिक प्रयत्न हो रहा था, ऐसी स्थिति में उपाध्याय जी के नायक राम का चरित्र, न तो युगीन चेतना का ही निर्वहन करता है और न ही राम की गरिमा के अनुकूल है । बाइसवे सर्ग मे राम, जहाँ रावण वध के बाद सीता से कहते हैं कि "मैंने रण इसलिए किया था कि कोई मुझे भीरू और कायर न समझे । मैं तुम्हे अपनाकर कलकित नही होना चाहता हूँ । तुम्हे शत्रु ने अपने घर मे रखकर अक से लगाया है, फिर मैं तुम्हे किस प्रकार रख सकता हूँ ?"[3] स्पष्ट है कि यहाँ पर वाल्मीकि रामायण का प्रभाव है, परन्तु द्विवेदी—युग मे जब नारी उत्थान का जबर्दस्त आदोलन चल रहा हो इस

---

1 प० रामचरित उपाध्याय राम चरित चिन्तामणि, 22/60

2 डॉ० रामवृक्ष सिह महाकवि रामचरित उपाध्याय, पृष्ठ 203

3 प० रामचरित उपाध्याय रामचरित चितामणि, 22/63—64

प्रकार का कथन उपयुक्त नही है । यदि राम ने सीता का परित्याग किया भी है, तो वे लोक मर्यादा की रक्षा के लिए ऐसा करते है, सीता के चरित्र पर उन्हे बिल्कुल सदेह नहीं है। उपाध्यायजी ने राम के ऐसे कथन से राम के चरित्र को ठेस पहुँचाया है ।

रामचरित चितामणि' के राम ईश्वर रूप में अवतरित है। वे मर्यादा पुरूषोत्तम राम हैं । वे असुरो को नष्ट करने की प्रतिज्ञा करते हैं और अपने भाई लक्ष्मण को भी सचेत करते हैं कि धर्म की रक्षा के लिए सब कुछ करना चाहिए । वे माता—पिता के आज्ञाकारी, कौटुम्बिक एव सामाजिक सम्बन्धो का निर्वहन करने वाले हैं । वे पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर वनवासी होते हैं और भाइयो से भी प्रेम करते हैं, उन्हे राज्य से प्रेम भी नही है, किन्तु राम का यह कथन कि—

दुर्दैव ने ही राज्य देकर, हाथ से फिर ले लिया ।
मुझको अकिचन कर दिया, घर भी नही रहने दिया ।

* * *

विधि है विमुख, बस बन्धु इससे, भूप की मति खो गई
जो बात अनुचित भी न थी, वह भी अचानक हो गई ।[1]

राम के ऐसे कथन मे क्या उदात्तता है ? वह तो राज्य लोलुप, विधि पर विश्वास करने वाला एव पिता के चरित्र पर सदेह करने वाला एक साधारण व्यक्ति है । आगे पुत्र राम अपने पिता दशरथ को उपदेश देते हैं, जो भारतीय मर्यादा के प्रतिकूल है—

मेरे पिता ! प्रण को न अपने प्राण रहते छोड़िये ।
चाहे भले ही प्राण अपने सत्य कहते छोड़िये ।

* * *

---

1 रामचरित उपाध्याय रामचरित चितामणि, पृष्ठ 68

दु खाब्दि को तरिये सुदृढ हो आह को भरिये नहीं ।[1]

ऐसा मार्मिक प्रसग और इस प्रकार का अमर्यादित आचरण राम के उदात्त चरित्र को धक्का ही नहीं पहुँचाता, बल्कि उनके चरित्र को दूषित कर देता है।

राम धर्मोद्धारक हैं । वे तपोभूमि को निशिचर हीन करने के लिए दृढप्रतिज्ञ हैं। इसलिए जहाँ कहीं भी असुर दिखाई पडते हैं, उनका वध करते हैं, चाहे वे स्त्री हो या पुरूष, क्योकि यह नीति सम्मत है । इसीलिए उन्होने खर–दूषण एव पापी बाली का वध करने मे बिलम्ब नही किया, लेकिन उनकी स्व–स्तुति एव सुग्रीव के प्रति उनका यह वचन राम के उदात्त चरित्र के अनुकूल नही कहा जा सकता–

हा कृतघ्न सुग्रीव ! न होगा मुझ सा कोई ।

तुझे सहायक भी न मिलेगा मुझ सा कोई ।[2]

राम एक पत्नी–व्रत धारी हैं तथा बहु विवाह के विरोधी हैं– राम का कथन अपने पिता के सन्दर्भ मे यहाँ उल्लेखनीय है। वे सीता से कहते हैं–

सुन्दरि मेरे पूज्य पिता ने विविध विवाह किये थे,

सच कहता हूँ वे विवेक से बन्धित इसीलिये थे

एक स्त्री–व्रत वे यदि करते क्यों वन में मैं आता,

हो करके युवराज आज क्यों दु सह दु ख उठाता ।[3]

यद्यपि युगीन चेतना के अनुरूप कवि ने बहुविवाह प्रथा का विरोध किया है । द्विवेदी युगीन सभी कवियों ने इसके विरोध मे लिखा है । लेकिन राम जैसे पुरूषोत्तम, मर्यादावादी चरित्र अपने ही पिता के सम्बन्ध मे ऐसा कथम करें,

---

1 रामचरित उपाध्याय रामचरित चितामणि, पृष्ठ 76

2 वही वही, पृष्ठ 152

3 वही वही, पृष्ठ 168

यह कुछ अटपटा लगता हैं । साथ ही वनवास मिलने पर बार—बार दु ख प्रकट करना भी उनके चरित्र के अनुरूप नहीं है। 'साकेत' के राम जहाँ धर्म के लिए धन को तुच्छ मानते हैं, वहीं 'रामचरित चितामणि' मे वर्णित नायक राम, धर्म की अपेक्षा धन (राज्य) को अधिक महत्त्व देते प्रतीत होते हैं ।

इस सम्पूर्ण विवेचन के अत मे निष्कर्षत कहा जा सकता है कि उपाध्याय जी ने अपने महाकाव्य 'राम चरित चितामणि' मे जिस राम का चित्रण किया है वह महाकाव्य (रामकथा से सम्बन्धित) के नायक के आदर्शों के अनुकूल नही है, लगता है युग की मानुषी भावना का कवि पर बहुत अधिक प्रभाव था । उन्होने एक साधारण मानव के मनोविज्ञान के आधार पर राम जैसे मिथकीय, गरिमामय चरित्र को चित्रित किया । यह चित्रण जातीय अस्मिता का हनन तो था ही, नायक के रूप मे राष्ट्र को उदात्त बनाने की प्रक्रिया मे भी बाधक ही रहा । जहाँ द्विवेदी—युग मे तरह—तरह के सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलनों का प्रभाव उज़ागर है, वहाँ 'रामचरित चितामणि' में सारे उदात्त मनस्तत्व से तटस्थ या निरपेक्ष रहकर एक प्रकृत मनुष्य की प्रतिष्ठा की गई है । यह विचलन द्विवेदीयुग के सपूर्ण मनोभाव से अलग अपनी पहचान तो बनाती है, लेकिन मनुष्य की सारी दिव्य और उदात्त सभावनाओं को खारिज़ कर देती है । यदि ऐसा नायक जातीय कथानक का कर्णधार हो, तो राष्ट्रीय मनोविज्ञान का क्या हश्र होगा ? इसकी सहज कल्पना की जा सकती है । आगे चलकर 'लघुमानव' की जो स्थापना की गई, उसकी तुलना में भी यह लघुतर है ।

(ख) काव्य में उपेक्षित पात्रों का उन्मेष -

द्विवेदीयुगीन काव्य मे दलित, शोषित एव युगो से उपेक्षित नारी के प्रति सहानुभूति का स्वर सर्वत्र सुनाई पड़ता है । कवियों ने समाज द्वारा उनके ऊपर आरोपित अपात्रता को मनोवैज्ञानिक एव मानवीय

दृष्टिकाण से देखा और उन रूढ़ियो, परम्पराओ का विरोध किया जो अलोकतान्त्रिक एव अमानवीय थे । कवि मैथिलीशरण का ध्यान उन उपेक्षित नारी पात्रो की ओर गया जिनकी वेदना, करूणा, दया, ममता त्याग को एक प्रकार से समाज विस्मृत कर चुका था । उन्होने, उनके त्याग तपस्यापूर्ण जीवन को उद्घाटित करने का प्रयत्न किया । इसी तारतम्य मे गुप्तजी ने उर्मिला, कैकेयी, यशोधरा, विष्णुप्रिया, विधृता, सैरन्ध्री जैसे अमर पात्रो का सृजन किया । डॉ० विनोद धम का कथन है कि " परिणामत कवि समाज द्वारा उपेक्षित एव जनसाधारण की दृष्टि से ओझल सन्नारियो के चरित्र को परमोज्ज्वल रूप मे चित्रित कर उनके धैर्य, सहिष्णुता, त्याग, सेवा, श्रद्धा एव विवेक आदि गुणो के निरूपण द्वारा कवि ने सम्पूर्ण नारी जाति को गौरव प्रदान किया।"[1] गुप्तजी द्वारा चित्रित नारियॉ अपने सुख—स्वार्थ की सीमा का अतिक्रमण करके युगीन चेतना से सजग जन—कल्याण की भावना से परिपूर्ण, परिवार, समाज एव राष्ट्र का हित—चिंतन करती हैं । उनका आत्म—त्याग निश्चित रूप से सराहनीय एव प्रेरणाप्रद है । काव्य मे उपेक्षित कुछ पात्रों का वर्णन इस प्रकार है—

उर्मिला

'साकेत' का प्रमुख आकर्षण उर्मिला है। उर्मिला के चरित्र का सर्वस्व उसका विरह है, जो 'साकेत' का प्राण है । उर्मिला का विरह अपना मे विशिष्ट है । वह विरह मे रोती ही नहीं है, बल्कि उसकी चेतना मे समाज हित तथा मानव—कल्याण की भावना भी समाहित है । उसी उर्मिला का सर्वस्व, लक्ष्मण आज राम के साथ वन जा रहा है, वह अपने पति के साथ वन भी नहीं जा सकती, जबकि सीता अपने पति के साथ वन जा रही

---

1 डॉ० विनोद धम मैथिलीशरण गुप्त के विरह काव्य , पृष्ठ 127

हैं। यदि वह उनके साथ वन जाने का हठ करती, तो शायद लक्ष्मण को भी राम के सानिध्य से वचित होना पड़ता । इसीलिए वह वन जाने का प्रस्ताव लक्ष्मण से नही करती है यदि वह ऐसा करती तो, अपने पति के मार्ग मे बाधक बनती । कितना त्याग है और कितनी ममता । उसे दु ख है, तो केवल इस बात का कि–

दे सकी न साथ नाथ का भी, ले सकी न हाय ! हाथ का भी ![1]

उर्मिला के दु ख एव विरह की सारी दशाये परिस्थितियो के अनुसार वृद्धि पाती रहती हैं । उसका विरह इतना व्यापक हो गया है कि उसके आत्मज्ञान तक को नष्ट कर दिया है । जब उसे पूर्व मिलन का स्मरण होता है, तो वह उदास हो जाती है । उसको माता का यह वचन दु खदायी प्रतीत होता है कि– "वह इतनी हत भागिनी है कि न तो वह वन ही जा सकी और न उसे भवन ही प्राप्त हो सका ।"[2] उसे इस बात का दु ख हैं कि उसके प्रियतम उसे उस अवस्था मे न पा सकेंगे, जिस अवस्था मे छोड कर गये थे । उर्मिला का कथन है–

पाया था सो खोया हमने, क्या खोकर क्या पाया ?
रहे न हममे राम हमारे, मिली न हमको माया ।[3]

उर्मिला नहीं चाहती कि जैसा दु ख मैं झेल रही हूँ वैसा ही दु ख और किसी को हो, वह सबको सुखी देखना चाहती है। 'रह

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 82

2 "साल रहि सखि, माँ की झाँकी वह चित्रकूट की मुझको,
बोलीं जब वे मुझसे– "मिला न वन ही भवन ही तुझको ।"
मैथिलीशरण गुप्त साकेत पृष्ठ 136

3 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 139

चिर दिन तू हरी–भरी, बढ़, सुख से बढ सृष्टि–सुन्दरी'[1] मे समस्त सृषि की मगल–कामना करती है । उर्मिला पशु–पक्षियो के दु ख के प्रति भी सहानुभूति प्रकट करती है और उनके प्रति सान्त्वना प्रकट करती है । उर्मिला का कथन है–

कोक शोक मत कर हे तात

कोकि कष्ट मे हूँ मैं भी तो, सुन तू मेरी बात

धीरज धर अवसर आने दे, सह ले यह उत्पात,[2]

साकेत' की उर्मिला राज–वधू है जिसे अपनी वियोग व्यथा के अतिरिक्त जीवन मे किसी अन्य प्रकार का अभाव नही है किन्तु वह त्रेता–युग की राज–वधू ही नही है, बल्कि आधुनिक युग की प्रबुद्ध मारी भी है, राज–वधू होने के कारण प्रजाजनो के हित का ध्यान उसे अपनी वेदना की दशा में भी नही भूलता । 'वह कृषि सम्बन्धी सूचनाएँ शत्रुघ्न से प्राप्त करती रहती है ।'[3] वह वीर क्षत्राणी भी है । वीरोचित गर्व एव मान मर्यादा का ध्यान उसे सदैव रहता है । 'साकेत' के 'द्वादश सर्ग' मे उसका कथन है कि–

सावधान ! वह अधम–धान्य–सा धन मत छूना,

तुम्हे तुम्हारी मातृभूमि ही देगी दूना ।

किस धन से हैं रिक्त कहो, सुनिकेत हमारे ?

उपवन फल–सम्पन्न, अन्नमय खेत हमारे ।[4]

अत निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि गुप्तजी ने उर्मिला की मन स्थिति का सहज एव स्वाभाविक वर्णन करके सदियो से राम काव्य की

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 152

2 वही वही , पृष्ठ 154

3 वही वही, पृष्ठ 157

4 वही वही, पृष्ठ 234

इस उपेक्षित नारी पात्र की वेदना, त्याग और गौरव का उदघाटन करके जनसामान्य के सामने उसका त्यागमयी चरित्र प्रस्तुत किया है । डॉ० कमलाकान्त ने लिखा है कि "उर्मिला का विरह–वर्णन उसके चरित्र के अन्तर्वाह्य सभी पक्षो का यथोचित व्यक्तिकरण करता है । इसके द्वारा वियोगिनी का व्यक्तित्व स्पष्ट हो सका है । उसकी आदर्शनिष्ठ गरिमा प्रेमनिष्ठ उत्कठा, आवेशमयी मन स्थिति और परहित चिन्ता भी प्रकट हुई है ।"[1] इस प्रकार गुप्तजी ने उर्मिला के व्यक्तित्व का चित्रण करके, नारी–गौरव को स्थापित, करने का महान् प्रयत्न किया है । वह एक तरह से यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते' की साकार प्रतिमा बन गई है । और–– साकेत के उजडे परिवेश मे वह देवता का रमण सभव बनाती है ।

कैकेयी -

मैथिलीशरण गुप्त ने जहाँ 'साकेत' रचना मे कवि समाज द्वारा उपेक्षित उर्मिला के व्यक्तित्व को सस्थापित किया, वही युगो से कलकित कैकेयी के चरित्र को प्रक्षालित करके उसे गौरव प्रदान किया है । आधुनिक युग मे 'कु' और 'सु' की तीक्ष्ण लक्ष्मण रेखाये विलीन होने लगीं । मनोविज्ञान ने समझाया कि मनुष्य मे दोनो सभावनाये समान है । कोई अपने तपस्तेज 'सु' को आरभ से ही धारण किये रहता है, कोई पश्चाताप की अग्नि मे दग्ध होकर सोना बनता है । कैकेयी ऐसा ही एक चरित्र है, जिसका हृदय–परिवर्तन रेखाकित कर कवि ने मनुष्य की सहजवृत्तियो के भीतर से महत् की या उदात्तता की सभूति को स्वाभाविक बनाया है । उसका चरित्र सरल, कठोर एव मातृत्व से आपूर्ण है । उसके उदात्त व्यक्तित्व का दर्शन हमे प्रारम्भ मे ही मथरा के वार्तालाप के समय होता है । मथरा जब राम के अभिषेक पर अप्रसन्नता प्रकट करती है, तो वह उसे डॉटती हुई कहती है–

---

1 डॉ० कमलाकात पाठक मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य, पृष्ठ 483

"वचन क्यो कहती है तू वाम ? नही क्या मेरा बेटा राम'[1]

आगे वह मथरा को दूर हटने का आदेश देती है—

उडाती है तू घर मे कीच, नीच ही होते है बस नीच ।

हमारे आपस के व्यवहार कहाँ से समझे तू अनुदार ?[2]

यहाँ तक कैकेयी के चरित्र मे किसी प्रकार की अनुदारता नही दिखाई पड़ती है । उसका चरित्र पूरी तरह उदार है । किन्तु मथरा का यह वचन कि "भरत से सुत पर भी सन्देह बुलाया तक न उन्हे जो गेह ।"[3] कितना मनोवैज्ञानिक है जिसका प्रभाव कैकेयी पर इतना अधिक पडता है कि वह कठोर बन जाती है । यहाँ गुप्तजी ने कैकेयी की मनोदशा मे हुये परिवर्तन को स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया है । कोई व्यक्ति किसी से पूर्ण मनोयोग से प्रेम करता हो और वही उसके प्रेम पर सदेह करे, तो उसका तिलमिला जाना स्वाभाविक है, इसके फलस्वरूप उसके मन मे जो आक्रोश उत्पन्न होता है, उसी का परिणाम है—राजा दशरथ से भरत के लिए राजगद्दी और राम को चौदह वर्ष का वनवास का वरदान माँगना । इस लिए कैकेयी अपने पति के प्रेम को ठुकरा देती है । गार्हस्थ्य सम्बन्धो का विच्छेद करके वरदान माँगती है और उस पर अटल रहती है । यह सब अपने पुत्र भरत के लिए करती है और ऐसा करने के लिए परिस्थितियाँ उसे बाध्य करती हैं । किसी भी माता को यदि यह विश्वास हो जाय कि अपने ही पुत्र के साथ उसका ही पिता इतना घृणित षडयन्त्र रचता है, तो ऐसी स्थिति मे पुत्र के हित और उसके अधिकारो की रक्षा के लिए माता का सजग होना क्या अस्वाभाविक है ? ऐसी स्थिति मे पति के साथ उसका

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 28

2 वही वही , पृष्ठ 29

3 वही वही, वही

निर्ममतापूर्ण व्यवहार क्या अनुचित है ? अभी तक उसकी 'स्व' की जो भावना तिरोहित थी वह उससे ग्रसित हो जाती है, जिसके चलते वह यह सब करती है । गुप्तजी ने एक ही वाक्य से उसके चरित्र पर लगे कलक को धो डाला। यह उनकी काव्य कला की महती उपलब्धि का प्रमाण है ।

कैकेयी मानिनी और दर्पपूर्ण है । लक्ष्मण के वचन उसे असह्य है और भरत द्वारा उसका प्रतिकार भी करना चाहती है । किन्तु परिस्थिति की विवशता के कारण कुछ बोल नहीं सकी । दशरथ की मृत्यु पर उसे दु ख था, किन्तु उसका रूदन उसके उपहास का कारण बनता, क्योकि यह दशा उसने स्वय उत्पन्न किया था, इसीलिए उसकी ऑखो से ऑसू नही गिरते परन्तु वेदना का ज्वार इतना है कि ऑखे विस्फारित रह जाती हैं । उसमे पुत्र–प्रेम इतना उत्कट है कि वह नरक भी भोगने के लिए प्रस्तुत है । वह तो मात्र यह चाहती है कि "राज्य कर, उठ वत्स, मेरे बाल,"[1] लेकिन इस पर भरत की नकारात्मक प्रतिक्रिया उसके चरित्र को एक नया मोड़ देता है और उसे अपनी भूल का ज्ञान होता है । आसक्ति, आसक्ति ही है --- चाहे पुत्र के लिए ही क्यो न हो ? वह विनाशकारी ही होती है ।

आगे चलकर हम कैकेयी का दूसरा ही रूप देखते हैं । प्रायश्चित से मन का जो शुद्धिकरण होता है उसका दर्शन इन पंक्तियो मे किया जा सकता है –

हॉ जनकर भी मैंने न भरत को जाना,
सब सुन ले, तुमने स्वय अभी यह माना ।
यह सच है तो फिर लौट चलो घर भैया,
अपराधिन मै हूँ तात, तुम्हारी मैया ।

* * *

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 93

यदि मैं उकसाई गई भरत से होऊँ

तो पति समान ही स्वय पुत्र भी खोऊँ ।[1]

मनोभावो का उद्‌भूत होना परिस्थितियो पर निर्भर होता है– कैकेयी का यह कथन उसी का परिणाम है । यहाँ कैकेयी भरत के ऊपर किये जा रहे सदेह का भी निराकरण करती है । माता के लिए सारे कष्ट सहनीय हैं परन्तु पुत्र की मृत्यु नही फिर भी भरत के चरित्र पर लगी कालिमा को प्रक्षालित करने के लिए और अपनी पाप वृत्ति के शमन के लिए वह भरत का शपथ खाती हैं।

कैकेयी वीरागना है । राम–रावण युद्ध का समाचार मिलने पर अयोध्या मे रण–सज्जा के अवसर पर उसका ओजपूर्ण वचन उसकी वीरता को प्रकट करता है । उसका यह कथन उसकी चरित्रगत औदात्य को प्रकट करते है–

भरत जायेगा प्रथम और यह मैं जाऊँगी,

ऐसा अवसर भला दूसरा कब पाऊँगी ?

* * *

मैं निज पति के सग गई थी असुर–समर मे

जाऊँगी अब पुत्र–सग भी अरि सगर मे ।[2]

आत्मोत्सर्ग की यह भावना कैकेयी जैसी मानिनी और वीरागना के अनुकूल है। राम के प्रति उसके भाव पवित्र हैं । कैकेयी का कथन है–

ढोया जीवन–भार, दुख ही ढाया मैंने

पाकर तुम्हे परन्तु भरत को पाया मैंने ।[3]

गुप्तजी ने कैकेयी के चरित्र को परिस्थितियो के वशीभूत

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 120

2 वही वही, पृष्ठ 223–224

3 वही वही , पृष्ठ 248

आलोडित–विलोडित चित्रित कर के निश्चित रूप से उसकी चरित्रगत कालिमा को धोकर नारी—गौरव मे वृद्धि की है ।

यद्यपि तुलसीदास ने मथरा को दोषी ठहराते हुए कहा कि देवताओ ने उसकी मति को भ्रष्ट कर दिया था । यदि यह सत्य था, तो दशरथ की मृत्यु के उपरान्त उन्हे उसके चरित्र को गौरवान्वित करना चाहिए था । इस कमी को गुप्तजी ने जिस प्रकार मनोवैज्ञानिक ढंग से विकसित कर उसे पूर्णता को पहुँचाया, इसके लिए वे चिर—स्मरणीय रहेंगे ।

यशोधरा -

मैथिलीशरण गुप्त ने 'यशोधरा' मे महात्मा बुद्ध की विरहिणी पत्नी की वेदना और उसकी मन स्थिति का वर्णन किया है । इसकी रचना की प्रेरणा भी काव्य मे उपेक्षिताओं को प्रकाश मे लाने की (गुप्तजी की) भावना ही है । यशोधरा और उर्मिला दोनो विरहिणी हैं, परन्तु दोनों की स्थितियो मे अन्तर है । उर्मिला जहाँ केवल विरहिणी ही है वहाँ यशोधरा माता भी है । उर्मिला का विरह एक निश्चित अवधि तक है, परन्तु यशोधरा का विरह निरवधि है ।

सिद्धार्थ के गृह—त्याग के उपरान्त यशोधरा का विरह—वर्णन प्रारम्भ होता है। उसे इस बात का दु ख नहीं है कि स्वामी ने सिद्धि के लिए उसका त्याग कर दिया है, उसे दु ख है त्याग के तरीके पर और वह तरीका हैं चोरी से चला जाना । यशोधरा का कथन है ——

सिद्धि—हेतु स्वामी गये, यह गौरव की बात,
पर चोरी—चोरी गये, यही बडा व्याघात ।[1]

निश्चित रूप से यशोधरा की वेदना 'उर्मिला' से अधिक घनीभूत है, उसका पति उसकी मौन सहमति से जाता है, यहॉ तो

---

1 मैथिलीशरण गुप्त यशोधरा, पृष्ठ 20

सिद्धार्थ ने सहमति की बात ही दूर, वैवाहिक जीवन की आधारशिला 'विश्वास को ही छिन्न–भिन्न कर दिया है । यह अविश्वास की भावना यशोधरा के मन मे कितनी टीस उत्पन्न करती होगी, इसकी अनुभूति भोगने वाली यशोधरा ही कर सकती है। यशोधरा का कथन दृष्टव्य है–

स्वय सुसज्जित करके क्षण मे,
प्रियतम को, प्राणो के पण में
हमी भेज देती हैं रण मे
क्षात्र–धर्म के नाते ।
सखि वे मुझसे कहकर जाते [1]

सखि वे मुझसे कहकर जाते' मे इतनी पीडा घनीभूत है कि मानो उसे स्वय से घृणा हो जाती है– कारण क्षात्र–धर्म के पालन के अवसर से उसे वंचित किया गया है, साथ ही उसे इतना स्वार्थी समझा गया कि वह उनके पथ की बाधा बनेगी । यदि पति स्त्री के चरित्र पर अविश्वास करे, तो उसके जीने का अर्थ ही क्या है ? फिर भी वह अपने मन में आशा का यह दीप जलाती है कि उन्होंने, मेरे ऊपर अविश्वास नहीं किया है, बल्कि, वे ऐसा इस लिए किया–क्योंकि

नयन उन्हे हैं निष्ठुर कहते,
पर इनसे जो आँसू बहते
सदय हृदय वे कैसे सहते ?
गये तरस ही खाते ।[2]

यशोधरा की यह पवित्र भावना, उसकी प्रेममयी नारी, उसका समर्पण भाव, उसकी आस्था प्रियतम के द्वारा किये गये विश्वासघात के लिए कितना सुगम मार्ग निकालती है । उसका यह उदात्त चरित्र निश्चित रूप से नारी–गौरव

---

1 मैथिलीशरण गुप्त यशोधरा, पृष्ठ 20

2 वही वही, पृष्ठ 21

की प्रतिष्ठा करता है, कहना न होगा कि पुरूष यहाँ कितना बौना दिखाई पडता है । यशोधरा कभी–कभी इतनी विरहाकुल होती है कि वह मृत्यु की आकाक्षा करती है "मरण सुदर बन आया री ! शरण मेरे मन भाया री !"[1] लेकिन दूसरे क्षण उसे अपने कर्त्तव्य का बोध होता है– और वह कर्त्तव्य बोध है, वात्सल्यमयी माता का दायित्व । यदि पति के वियोग से पीडित उसके हृदय मे मृत्यु की आकाक्षा है, तो पुत्र प्रेम के लिए जीवित रहने की विवशता भी है। यशोधरा का यह कथन कितना मार्मिक है–

स्वामी मुझको मरने का भी दे न गये अधिकार,

छोड गये मुझे पर अपने उस राहुल का बस भार,[2]

गुप्तजी का सवेदनशील हृदय यशोधरा के विषम जीवन से उपजी वेदना के कारण द्रवीभूत हो गया और उन्हे लिखना पडा–

अबला–जीवन, हाय ! तुम्हारी यही कहानी—

ऑचल मे है दूध और ऑखो में पानी ।[3]

पति वियोग मे उसकी एक ऑख से अश्रुधारा का प्रवाह होता है, तो पुत्र सयोग मे दूसरी ऑख से ममता और स्नेह की वर्षा होती है । सब कुछ विरोध मे घटित होने पर भी उसे इतना सतोष है कि–

गोपा गलती है, पर उसका राहुल तो पलता है,[4]

गुप्तजी का नारी विषयक दृष्टिकोण व्यापक है । यशोधरा द्वारा किया गया त्याग उसकी दया, ममता के कारण, उन्होने उसी सिद्धार्थ (अब गौतम बुद्ध) से जिसने यशोधरा का परित्याग किया है, उसकी

---

1 मैथिलीशरण गुप्त यशोधरा, पृष्ठ 34

2 वही वही, पृष्ठ 35

3 वही वही, पृष्ठ 40

4 वही वही, पृष्ठ 43

महानता को स्वीकृति दिलाई है । गौतम बुद्ध का कथन है—

दीन न हो गोपे, हीन नहीं नारी कभी

भूत—दया—मूर्ति यह मन से, शरीर से,[1]

उल्लेखनीय है कि गुप्तजी ने नारी गरिमा का यशोगान, उसके गौरव की प्रतिष्ठा 'यशोधरा कृति मे उससे कराया है, जो सामान्य मनुष्य नहीं है, बल्कि जिसने मनुष्यता की पराकाष्ठा को प्राप्त कर लिया है । सबसे बडी बात तो यह है कि उसी ने नारी (यशोधरा) का पहले त्याग भी किया है । इस तरह से यह नारी की दया, ममता, करूणा और उसकी त्याग की भावना के सामने पुरूष द्वारा किया गया आत्म—समर्पण है । रूढ़िवादी समाज जो नारी को हीन समझता है, उसके अह पर कुठाराघात है और साथ ही नारी की श्रेष्ठता की स्थापना भी । यशोधरा आधुनिक युग की चेतना से अनुप्राणित सजग एव कर्त्तव्य परायण नारी है । यशोधरा सासारिक जीवन से पलायन करने की अपेक्षा ससार मे रह कर विजय प्राप्त करने को वास्तविक विजय मानती है । यशोधरा का कथन है—

यदि हममे अपना नियम और शम—दम है,

तो लाख व्याधियाँ स्वस्थता सम है,[2]

गुप्तजी निवृत्तिमार्ग की अपेक्षा प्रवृत्ति मार्ग के पोषक है । यशोधरा अपने पति को प्रवृत्ति मार्गी बनने के लिए आमन्त्रित करती है ।[3] इस प्रकार गुप्त जी का

---

1 मैथिलीशरण गुप्त यशोधरा, पृष्ठ 110

2 वही वही, पृष्ठ 80

3 आओ, प्रिय ! भव मे भाव—विभाव भरे हम,
डूबेंगे नहीं कदापि, तरे न तरे हम ।
कैवल्य—काल भी काम, स्वधर्म धरें हम ।
ससार—हेतु शत बार सहर्ष मरे हम । यशोधरा, पृष्ठ 81

यह मानना है कि आत्म—त्याग द्वारा मानव ससार मे रहते हुए भी पशुत्व से दवत्व को प्राप्त कर सकता है और यह पृथ्वी स्वर्ग बन सकती है । त्याग के बल पर ही लक्ष्मण ने भ्रातृ—भक्ति का आदर्श स्थापित किया । आत्म सुख का अतिक्रमण करके ही साधना और तपश्चर्या द्वारा गौतम बुद्ध साधारण नर से नारायणत्व को प्राप्त हुए ।

पुरूष प्रधान समाज सन्यासी की पूजा तो करता है, किन्तु गृहस्थ मे रहती हुई नारी के सन्यस्त मन से अनभिज्ञ रहता है । वह उसे साधारण कोटि का जीव समझता हुआ उसकी उपेक्षा करता आया है । ऐसे उपेक्षित नारीपात्र समाज मे जिस सार्थकता का सृजन करते हैं उसकी ओर पहले पहल ध्यान गुरूदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का गया । कविगुरू की प्रेरणा हिदी काव्य मे भी साधारणता मे महत्ता के उन्मेष को उद्घोषित करने के लिए उद्ग्रीव हुई, खासकर नारी—पात्रो के माध्यम से। यशोधरा का त्याग गौतम बुद्ध के त्याग से कम नहीं कहा जा सकता है, क्योकि पुरूष को मनुष्यत्व का सस्कार वही देती है । यशोधरा में उदात्त जीवन महिमा की विशेषताओ के सन्दर्भ मे डॉ० कल्याण मल लोढ़ा ने लिखा है कि— "उसका उन्नत नारीत्व, जातीय स्वाभिमान, नि स्वार्थ प्रेम, असीम धैर्य, आदर्श त्याग और जीवन—पर्यन्त अत्याहत वियोग । उसका जीवन एतदर्श तिरस्कृत होकर भी उन्नत है, उसकी हार ही जीत है ।"[1] इस तरह यशोधरा का सृजनात्मक चरित्र प्रस्तुत करके गुप्त जी ने 'नारी' गौरव को सस्थापित किया है । जो भारतीय नारी की गरिमा के अनुकूल है । गुप्तजी की सुन्दर, शुद्ध एव उदात्त नारी भावना का जो चित्र यशोधरा मे मिलता है, वह अन्यत्र कही दृष्टिगत् नही होता ।

---

1 डॉ० कल्याण मल लोढा उद्धृत राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त . अभिनन्दन ग्रथ (सप० ऋषि जैमिनी बरूआ), पृष्ठ 72

(ग) जनसामान्य की प्रतिष्ठा -

द्विवेदी युगीन कवियो ने दलितो श्रमिको, भूमिहीन किसानो भिखारियो, नारी के शोषण आदि के खिलाफ आवाज उठाया और इस तथ्य का समर्थन किया कि उनके प्रति किया गया उपेक्षापूर्ण व्यवहार अमानवीय एव अलोकतात्रिक है । उन्होने अपने काव्य मे जनतात्रिक मूल्यो समानता स्वतत्रता और बन्धुत्व की भावना की प्रतिष्ठा की है । साकेत के राम जब वन के लिए प्रयाण करते हैं तो प्रजा उन्हे कैसे मार्ग दे सकती है ? क्योकि उनका भी कुछ अधिकार है और उस अधिकार को वह सहज ही नहो त्याग सकता । "क्योकि राजा का चयन प्रजा ने किया है, उसे पदच्युत करने का अधिकार भी उसी को है । इसीलिए वे मार्ग मे खडे होकर राम के मार्ग को अवरूद्ध करते है ।"[1] राजा का कर्त्तव्य राज्य की प्रजा के हितार्थ कल्याण कार्यो का सम्पादन करना है, यदि वह अपने इस कर्त्तव्य से विमुख होता है तो उसके प्रति प्रजा का विद्रोह उचित ही है । गुप्तजी ने साकेत मे जन-तात्रिक मूल्यो की प्रतिष्ठा करते हुए लिखा है—

राज्य मे दायित्व का ही भार, सब प्रजा का वह व्यवस्थागार ।

वह प्रलोभन हो किसी के हेतु, तो उचित है क्राति का ही केतु ।[2]

स्पस्ट है कि गुप्तजी ने यहॉ प्राचीन राजतत्र मे जन–सस्कृति की स्थापना किया है । प्राचीन राजतत्र मे राजा के प्रति प्रजा का विद्रोह अपराध था । चाहे शासक कैसा भी हो । किन्तु यहॉ इस बात पर बल दिया गया है कि यदि वह अन्यायी और अपने कर्त्तव्य से च्युत है, तो प्रजा विद्रोह करके उसे पदच्युत कर सकती है । यहॉ युगीन राजनीतिक चेतना का प्रभाव स्पस्ट है, जो जनतात्रिक मूल्यो की स्थापना के लिए सघर्षरत था । 'साकेत' के

---

1 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 60

2 वही वही, पृष्ठ 95

'अष्टम सर्ग मे सीता स्वतत्रता एव समानता पर बल देती है, क्योकि स्वतत्रता एव समानता के द्वारा ही व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास सम्भव है।[1] राम द्वारा अपने हाथो अधम जटायु का अतिम सस्कार करना, कबन्ध नामक राक्षस को मारने के बाद उसका दाह सस्कार करना, शबरी के यहाँ राम का आतिथ्य ग्रहण करना आदि प्रसग द्विवेदी युगीन काव्य में जनसामान्य की प्रतिष्ठा का प्रमाण है ।[2]

'साकेत' मे राम का निषादराज को गले लगाना, सीताजी द्वारा वन्य प्रदेश की कोल किरात, भिल्ल बालाओ को अपने जीवन मे बराबर का स्थान देना उनके साथ समत्व का व्यवहार करना और अपने लिए उनसे कार्य सौपने का अनुरोध करना आदि द्वारा जनसामान्य की गरिमा की ही प्रतिष्ठा हुई है ।[3] गुप्त जी की रचना 'सैरन्ध्री' मे सैरन्ध्री महाराज विराट के यहाँ दासी है, उनका सेनापति कीचक उसके रूप सौन्दर्य पर आकर्षित होकर उसके स्त्रीत्व का हरण करना चाहता है। उसमे मनुष्यता नाम की कोई वस्तु नहीं है । गुप्तजी ने एक दासी द्वारा तथाकथित उच्च–वर्ग के लोगो को मनुष्यता का यह पाठ पढ़ाया है–

होकर उच्च पदस्थ नीच–पथ गामी है वह,
पाप–दृष्टि से मुझे देखता–कामी है वह ।

---

1 प्राणेश्वर उपवन नही किन्तु यह वन है,
बढ़ते हैं विटपी जिधर चाहता मन है ।
बन्धन ही का तो नाम नहीं जनपद है ?
देखो कैसा स्वच्छन्द यहाँ लघु नद है ।

मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 108

2 मैथिलीशरण गुप्त साकेत, पृष्ठ 209

3 वही वही , पृष्ठ 72,106

नर होकर भी हाय ! सताता है नारी को,

अनाचार क्या कभी उचित है बलधारी को ?

यो तो पशु महिष वराह भी, रखते साहस सत्व हैं,

होते परन्तु कुछ और ही, मनुष्यत्व के तत्व हैं ।[1]

गुप्तजी ने जहाँ दासी सैरन्ध्री के स्त्रीत्व की रक्षा की, वही सामान्यजन की गरिमा को भी स्थापित किया है । गुप्तजी की रचना 'द्वापर' में कृष्ण के जीवन की झाँकी प्रस्तुत की गयी है । कवि ने इसमे श्रीकृष्ण के जीवन से सम्बद्ध पूर्व—वर्णित चरित्रों को ही नही, अपितु कुब्जा, विधृता आदि उपेक्षित एव तिरस्कृत पात्रो के हृदय स्पन्दन का भी अनुभव करके उन्हे गरिमापूर्ण व्यक्तित्व प्रदान किया है । गुप्तजी ने 'द्वापर' रचना मे कुब्जा के आतरिक एव वाह्य सघर्ष का सुन्दर चित्रण किया है। शरीर के काया कल्प के साथ ही उसका मन कल्प भी हो गया है—

दे न गया वह यह शरीर ही हा !शील भी ऐसा,

करते बनता नहीं चाहता हूँ मैं करना जैसा ।[2]

कुब्जा से भी अधिक घनीभूत वेदना और असह्य पीडा की अनुभूति विधृता को है। विधृता केवल उपेक्षा एव परित्यक्ता ही नहीं है, बल्कि पर—पीडिता भी है। उसे यही प्रश्न जीवन के अतिम क्षण तक व्यथित करता रहा कि—

हाय! वधू ने क्या वर विषयक एक वासना पाई ?

नहीं और क्या उसका पिता,पुत्र या भाई ?

नर के बाँटे क्या नारी की नग्न मूर्ति ही आई ?

माँ, बेटी या बहन हाय! क्या सग नही वह लाई ?[3]

---

1 मैथिलीशरण गुप्त सैरन्ध्री, पृष्ठ 17

2 वही द्वापर, पृष्ठ 152

3 वही वही, पृष्ठ 152

यहाँ कवि ने समाज के द्वारा उपेक्षित पात्रों की वेदना–जन्य मनः स्थिति को चित्रित करके सामाजिक विद्रूपता को उज़ाग़र किया है।

सियारामशरण गुप्त की रचना 'अनाथ' दीन–हीन भारतीय कृषक की दुखपूर्ण गाथा है । कवि ने ग़रीबों की दयनीय दशा, ऋण–ग्रस्तता अधिकारियों का दुर्व्यवहार, ज़मींदारी, बेग़ारी, शोषण और रूढ़िवादिता आदि का चित्रण बड़े सहज ढंग से किया है । 'अनाथ' में मोहन नामक पात्र को निम्नवर्गीय होने के कारण अनेक प्रकार के अत्याचारों को सहन करना पड़ता है और अंततः अनेक कष्टों को भोगता हुआ वह, उसकी पत्नी जमुना और उसके पुत्र मुरलीधर को मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है । कवि ने 'अनाथ' रचना के माध्यम से सवर्ण जाति के लोगों को असहाय व्यक्तियों के साथ, उचित व्यवहार करने की प्रेरणा दी है । कवि ने धनिकों, सरकारी कर्मचारियों, महाजनों आदि के अत्याचार का विरोध करने का आह्वान किया है—

लोहू पसीना एक कर हम अन्न उपजाते यहाँ ।
पर वहीं अपना अन्न ही क्या हम कभी पाते यहाँ ।
कुछ तो हड़प जाते हमारे सेठ साहूकार हैं ।
बाकी बचे, तो छीन लेते हाय! मालगुज़ार हैं ।[1]

मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचना 'किसान' मे एक किसान का संघर्षमय, दुःख भरा और त्यागमय जीवन चित्रित किया है । किसान को पुलिस, ज़मींदार, बेग़ार प्रथा आदि से त्रस्त होकर स्वदेश त्याग कर फिज़ी जाना पड़ता है, जहाँ उसे कुली का काम करना पड़ता है । उसकी कुलवन्ती त्यागमयी–नारी भी पति के साथ–साथ भारत से फिज़ी तक जाती है और वहाँ अपने शील की रक्षा करती हुई प्राण दें देती है । लार्ड हार्डिंग्स आदि के प्रयास से कुली प्रथा समाप्त हो जाती है । किसाम सेना में भर्ती होकर

---

1. सियाराम शरण गुप्त : अनाथ, पृष्ठ 38

टिगरिस तट वाले युद्ध मे चला जाता है । युद्ध मे आहत होकर 'विक्टोरिया क्रास पाने वाला वह किसान भारतीयो को याद करता हुआ, अपनी प्रिया से स्वर्ग मे मिलने के लिए मृत्यु का वरण करता है । इस प्रकार किसान के शौर्य, त्याग और साहस का चित्रण करके कवि ने उसे अमर बना दिया ।

मैथिलीशरण गुप्त की रचना 'रग मे भग' मे मातृभूमि के प्रति उत्कट प्रेम का चित्रण किया गया है । खेतल राणा की युद्धभूमि मे वीरगति प्राप्त होने के उपरान्त नये राणा लाखा ने यह प्रतिज्ञा किया कि मैं जब तक बूँदी का किला नहीं तोड लेता हूँ , तब तक अन्न जल ग्रहण नहीं करूँगा । बूँदी का किला तोडना आसान काम नहीं था । इसलिए उनके सहयोगी कृत्रिम बूँदी का दुर्ग तोडने की युक्ति निकालते हैं । राणा का वीर सैनिक कुम्भ अपनी जन्म–भूमि बूँदी का किला 'चाहे वह नकली ही क्यो न हो, तोडा जाना उसके लिए असहनीय एव अपमानजनक है । वह "यद्यपि कृत्रिम रूप मे वह मातृभूमि समक्ष है, किन्तु लेना योग्य क्या उसका न मुझको पक्ष है" की भावना से ओतप्रोत होकर राणा को इस कृत्य से रोकता हुआ कहता है–

प्राण बेचे हैं तुम्हे बेचा न मैंने मान है,
धर्म के सम्बन्ध मे नृप और रक समान है ।[1]

उस नकली किले को ही मातृभूमि मानकर, उसके रक्षार्थ वह वीर सैनिक कुम्भ राणा से युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। वीर सैनिक कुम्भ के हृदय मे मातृभूमि के प्रति उत्कट एव अदम्य प्रेम-भाव प्रशसनीय है । द्विवेदी युगीन कवियो की जनसामान्य की गरिमा की प्रतिष्ठा की यह अनुपम कड़ी मानी जा सकती है ।

उपरोक्त विवेचन के अन्त मे निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि बीसवीं शताब्दी के पूर्व की काव्य परम्परा में पौराणिक ऐतिहासिक चरित्रो को वर्ण्य विषय बनाकर उनके शौर्य, पराक्रम और अभिरूचियो का

वर्णन किया जाता रहा । द्विवेदी युगीन काव्य मे पहली बार जनसामान्य को गौरवपूर्ण गुणो से युक्त करके वर्ण्य–विषय के रूप मे स्थान दिया गया है । द्विवेदी युगीन काव्य के पौराणिक एव ऐतिहासिक चरित्र भी जनतान्त्रिक मूल्यो का सरक्षण करते हुए दिखाई पडते हैं । उनका यह सराहनीय प्रयास युगीन राजनीतिक एव सामाजिक आवश्यकताओ के अनुरूप है ।

उपसहार -

ब्रिटिश शासन—व्यवस्था की स्थापना एव पाश्चात्य सस्कृति, साहित्य, विचारधारा आदि के सम्पर्क से देश मे एक नवीन चेतना का उन्मेष हुआ जिसकी अभिव्यक्ति उन्नीसवीं सदी के धार्मिक एव सामाजिक सुधार आदोलनो ने की है। नवजागरण के फलस्वरूप देश मे सास्कृतिक चेतना उद्भूत हुई जिससे कालान्तर मे राष्ट्रीयता की भावना का विकास हुआ। राष्ट्रीयता की भावना के विकास से लोगो मे राजनीतिक चेतना सचरित हुई। भारतीय राष्ट्रीय कॉग्रेस की स्थापना ने राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति को आधार प्रदान किया। प्रारम्भ मे यह आकाक्षा वैधानिक सुधारो की मॉगो तक ही सीमित थी। उदारवादी नेताओ की यह नीति जनमानस की आकाक्षा को सन्तुष्ट करने मे असफल रही। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे उग्र राष्ट्रवाद का जन्म हुआ, जिसका आधार भारतीय सस्कृति एव दर्शन था। उन्होने अपनी मॉगो की पूर्ति के लिए असहयोग, स्वदेशी, बहिष्कार, हिसा आदि के द्वारा ब्रिटिश सरकार का विरोध किया। बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक के मध्य मे भारतीय राजनीति मे महात्मा गॉधी का पदार्पण हुआ, उन्होने सत्य, अहिसा, सत्याग्रह असहयोग आदि को भारतीय स्वतत्रता सघर्ष का आधार बनाया। इसके समानान्तर क्रातिकारी सगठनों ने अपने साहसी कार्यों से देशवासियो मे राष्ट्रीयता की भावना को तीव्रता प्रदान की।

भारतेन्दु युगीन कवि जहाँ एक ओर अपनी पूर्ववर्ती काव्य परम्परा को आत्मसात् किये हुए थे, वहीं देश मे हो रहे परिवर्तनों से भी अछूते नहीं थे। फिर भी वे श्रृगारिकता मिश्रित भक्ति के मोह को छोड नहीं पाये थे। द्विवेदी—युग के काव्य की विशेषता यह है कि इसने आधुनिक हिन्दी काव्य—परम्परा मे परम्परा एव प्रगति, प्राचीनता एव नवीनता आदि के उदात्त समन्वय की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की। इस युग के कवियो ने सास्कृतिक सचेतना

एव समसामयिक समस्याओ को समाविष्ट करते हुए अपनी काव्य रचनाओ मे नैतिक एव मानवीय मूल्यो, राष्ट्रीयता की भावना, आदि की सशक्त अभिव्यक्ति की। कवियो ने सामाजिक विद्रूपता, अधविश्वास, रूढियो, कुरीतियो आदि के फलस्वरूप उभडती समस्याओ एव चुभते प्रश्नो से स्वय को जोडकर, उसका यथोचित चित्रण कर के, देशवासियो को पर्याप्त मात्रा मे बौद्धिक परितोष प्रदान की।

द्विवेदी युगीन कवि–मैथिलीशरण गुप्त अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध', रामनरेश त्रिपाठी, लोचनप्रसाद पाण्डेय, गोपालशरण सिह सियारामशरण गुप्त, सत्यनारायण 'कविरत्न' आदि ने सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि क्षेत्रो मे व्याप्त वैषम्य, एव विद्रूपता को काव्य–वस्तु बना कर स्वस्थ्य समाज के निर्माण एव राष्ट्रीयता की भावना के विकास मे महान् कार्य किया। उनके इस प्रयास मे उस समय प्रकाशित होने वाली पत्र–पत्रिकाओ का भी योगदान महत्त्वपूर्ण है, इनमे 'सरस्वती' पत्रिका का स्थान सर्वोच्च था। द्विवेदी–युग के कवियों पर सांस्कृतिक एव राष्ट्रीय आदोलनों के मनीषियो एव कर्णधारो–स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानद, श्री अरविन्द, गोपाल कृष्ण गोखले, बाल गगाधर तिलक, महात्मा गाँधी और अनेक सामाजिक एव धार्मिक सुधार आदोलनों, राष्ट्रवादी आदोलनो तथा किसानो, श्रमिको, दलितो आदि की स्थिति मे सुधार के लिए चलाये जा रहे आदोलनो का प्रभूत् मात्रा मे प्रभाव पडा है। इन कवियो की उदार चेतना मे विराट प्रकृति एव सम्पूर्ण मानवता को आत्मीयतापूर्ण स्थान मिला है।

द्विवेदी युगीन काव्य मे राष्ट्रीयता की भावना की अनुगूँज सुनाई पडती है। वर्तमान जीवन की विसगतियो एव पराधीनता की पीडा से बचने के लिए, इन कवियों ने प्राचीन भारत के गौरवपूर्ण अशों को जनमानस के सम्मुख लाकर, उन्हें पर्याप्त आत्मबल प्रदान किया। 'भारत–भारती' काव्य–रचना मे इसी सास्कृतिक एव राष्ट्रीय गौरव का आख्यान किया गया

है और देश की वर्तमान दशा का चित्रण करके, देशवासियो से पुन उस गौरव को प्राप्त करने का आह्वान किया गया है। साकेत', 'प्रियप्रवास', 'पथिक', 'मिलन' मौर्य विजय' आदि काव्य रचनाओं एव स्फुट कविताओ मे सास्कृतिक एव राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति हुई है। इनमे आत्मोत्सर्ग, परोपकार, दया करूणा आदि उदात्त भावो को समाविष्ट कर क्रमश उत्कर्ष को प्राप्त करने का सदेश दिया गया है। द्विवेदी युगीन काव्य लोकोन्मुखी है। द्विवेदी–युग की काव्य रचनाओ मे 'लोक' की चिता सर्वत्र विद्यमान है। 'भ्रमर दूत' जैसा परम्परागत विषय राष्ट्रीयता, समाज सुधार आदि का आधार बना है। 'वीर सतसई' मे पौराणिक एव ऐतिहासिक वीर कथाओ को राष्ट्र एव समाज के हितार्थ नवीन परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत किया गया है। कवियो ने पारस्परिक वैमनस्य एव मतभेदो को दूर कर के एकता का मार्ग प्रशस्त किया, जो समसामयिक राष्ट्रीय जीवन की आवश्यकता थी। द्विवेदी युगीन कवियो ने रीतिकालीन वैयक्तिक एव वासनामयी प्रेम को विराट आधारभूमि प्रदान किया है। यहाँ प्रेम मात्र विलास और आत्मतुष्टि का साधन नहीं, बल्कि लोक-हित एव लोक-सेवा ही उसका ध्येय है। सामान्य मानव–प्रेम से होता हुआ यह क्रमश समाज, राष्ट्र एव विश्वप्रेम मे विकसित हुआ है। 'प्रियप्रवास' की राधा, के वैयक्तिक प्रेम का विकास क्रमश लोक–सेवा, समाज-सेवा से विश्व–प्रेम मे हुआ है। समष्टि की चिता एव उसके कल्याण के लिए तत्पर रहना ही लोक मे मागलिकता की भावना का सचार करना है। 'पर' का चितन ही लोक–मगल का तत्त्व है, यद्यपि उसका स्वरूप भिन्न हो सकता है, जैसे–रक्षा का भाव, अन्याय का प्रतिकार, सेवा–भाव आदि, परन्तु सबका मूल भाव करूणा एव प्रेम ही है। द्विवेदी–युग के काव्य मे यह उदात्त भाव सर्वत्र विद्यमान है। यहाँ प्रकृति–चित्रण, लोक मे मगल का विधान करने के निमित्त हुआ है। प्रकृति भोग–विलास, एव वासना के उद्दीपन के साधन रूप मे चित्रित न होकर, व्यक्ति के उदात्त भावो के उत्कर्ष मे सहायक हुई है। यही उदात्तता मानव को

देवत्व की उच्च–भाव भूमि पर आरूढ करती है।

द्विवेदी युगीन कवियो ने जहॉ ब्रिटिश सत्ता के अन्याय, अत्याचार, शोषण आदि से मुक्ति के लिए देशवासियो को आत्मोत्सर्ग करने का आह्वान किया, वही भारतीय समाज मे व्याप्त छुआछूत, अस्पृश्यता, नारी पर आरोपित अपात्रताओ, श्रमिको, किसानो आदि की असहाय एव दीन–हीन दशा की ओर भी अपनी करूणा, प्रेम एव सहानुभूति को प्रवाहित किया है। उन्होने देशवासियो मे आत्म–त्याग, करूणा, सहानुभूति, दया, परोपकार आदि उदात्त भावो को समावेशित करने का प्रयास किया। द्विवेदी युगीन काव्य सभी प्राणियो की समानता पर बल देकर, 'आत्मवत सर्वभूतेषु' का अमर सदेश देता है। कवियो ने 'स्व' की भावना का परित्याग करके उसे 'पर' तक विस्तारित करने का आग्रह किया, जो भारतीय धर्म और सस्कृति का मूल मत्र है।

कवियो ने उपेक्षित, अनदेखे, तुच्छ एव दीन–हीन आदि को अपना काव्य–वस्तु बना कर उनकी गरिमा को सस्थापित किया है। मैथिलीशरण गुप्त ने उर्मिला, कैकेयी, यशोधरा, विधृता, कुब्जा, सैरन्ध्री आदि जैसे काव्य मे उपेक्षित स्त्री पात्रो को अपने काव्य मे स्थान देकर स्त्री- जाति को गौरवान्वित किया। कवि ने इन स्त्री पात्रो की मन स्थिति का युगानुरूप चित्रण कर के उनके त्याग, सयम, धैर्य, करूणा, प्रेम आदि उदात्त भावो के माध्यम से स्त्री की महानता एव श्रेष्ठता को समाज के सामने उजागर किया। कवियो ने कृषको, श्रमिको, भिखारियो, सामान्य मानव को अपना काव्य–वस्तु बना कर जनसामान्य की गरिमा स्थापित की है। महाकाव्य के नायक भी लोक के उत्कर्ष के लिए समर्पित चित्रित किये गये हैं। 'प्रियप्रवास' के श्रीकृष्ण लोक–सेवा को सबसे बड़ा धर्म मानते हैं, तो 'साकेत' के राम लोक मे आदर्श की स्थापना करके उसके उत्कर्ष के लिए क्रियाशील हैं।

द्विवेदी युगीन कवियो ने भावनात्मक स्तर पर लोगो के हृदय, मन मस्तिष्क को काव्यात्मक प्रक्रिया द्वारा, सस्कारित एव परिष्कृत

करके, सास्कृतिक नैतिक एव मानवीय मूल्यो को समाज मे स्थापित करने का प्रयत्न किया है। उनका यह प्रयास युगीन आवश्यकताओ के अनुरूप था। ब्रिटिश सत्ता की पराधीनता से मुक्ति के लिए राष्ट्रीय एकता की भावना अनिवार्य शर्त थी और वह एकता की भावना, बिना सामाजिक भेदभाव को समाप्त किए सम्भव नहीं थी। इसके लिए कवियो ने उदात्त भावो—करूणा, प्रेम परोपकार आदि के द्वारा लोगो को चेतना एव भावना के स्तर पर प्रभूत मात्रा मे प्रभावित किया। इन कवियो ने वर्ग—विशेष के हित की बात न करके 'सर्व-भूतहित', 'बहुजन हिताय' का सदेश दिया। उनका यह समष्टिपरक चिन्तन जहाँ भारतीय धर्म एव सस्कृति की विशेषता है, वहीं लोक—मगल की भावना को भी उद्भूत करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज के भौतिक—युग मे जो आपा—धापी मची हुई है, उससे व्यक्ति के उदात्त भाव क्षरित हुए हैं। उदात्त भावों का यह क्षरण व्यक्ति को 'स्व' की भावना से ग्रसित कर लिया है। मानव करूणा, प्रेम, दया, 'सर्व भूतहित' जैसे उदात्त भावो से च्युत एव स्खलित होकर लोभवृत्ति से आच्छद हो गया है। ऐसी स्थिति मे स्वस्थ्य मन से हमे जीवन के नैतिक मूल्यो को पुन सस्थापित करना होगा, जिससे मानव समाज को समस्त विकृतियो से बचाया जा सके। द्विवेदी युगीन काव्य ने इन्हीं विकृतियों से बचने का समाधान प्रस्तुत किया है। वह मानव में सात्त्विक वृत्ति की ज्योति प्रज्ज्वलित करके उसके उत्कर्ष का मार्ग प्रशस्त करता है। वह सात्त्विक भाव है—त्यागपूर्ण भोग। इस त्याग की भावना से ही व्यक्ति का समग्र विकास सम्भव होगा, इससे समाज एव राष्ट्र के अध पतन को रोका जा सकेगा। अन्यथा लोकतान्त्रिक शासन प्रणाली मे निहित लोक—कल्याणकारी राज्य की अवधारणा कपोल—कल्पित साबित होगी।

---- सन्दर्भ-ग्रथ-सूची ----

1 अनघ मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन, चिरगॉव (झॉसी), षष्ठावृत्ति 1951 ई०।

2 अनाथ सियारामशरण गुप्त, साहित्य–सदन, चिरगॉव (झॉसी), द्वितीयावृत्ति 1924 ई०।

3 अनुराग रत्न लोचनप्रसाद पाण्डेय, नारायण प्रसाद अरोडा पटकापुर, कानपुर, प्रथम सस्करण 1918 ई०

4 अनुराग रत्न प० नाथूराम शर्मा 'शकर', प० यज्ञदत्त शर्मा प्रभाकर प्रेस, आगरा, द्वितीय सस्करण

5 अयोध्याप्रसाद खत्री स्मारक ग्रथ सपादक शिवपूजन सहाय

6 आधुनिक काव्य धारा डॉ० केसरीनारायण शुक्ल, सरस्वती–मदिर बनारस, द्वितीय आवृत्ति 1947 ई०

7 आधुनिक भारत प्रो० विपिनचन्द्र, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसधान और प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली प्रथम सस्करण 1976 ई०

8 आधुनिक भारत सुमित सरकार, हिन्दी अनुवाद सुशीला डोभाल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली प्रथम छात्र सस्करण 1992 ई०

9 आधुनिक भारत का इतिहास सपादक प्रो० रामलखन शुक्ल, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, माडल टाउन दिल्ली, प्रथम सस्करण 1987 ई०

10 आधुनिक भारत का इतिहास एक नवीन मूल्याकन, बी०एल०ग्रोवर, एस० चद एण्ड कम्पनी, लिमिटेड रामनगर, नई दिल्ली, सस्करण 1992 ई०

11 आधुनिक हिन्दी काव्य मे नारी भावना डॉ० शैल कुमारी, हिन्दुस्तानी एकेडेमी उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण 1951 ई०

12 आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास डॉ० श्रीकृष्णलाल, हिन्दी परिषद् प्रयाग विश्वविद्यालय प्रयाग, प्रथम सस्करण।

13 आधुनिक साहित्यिक निबन्ध डॉ० त्रिभुवन सिह, रत्ना पब्लिकेशन्स, वाराणसी, प्रथम सस्करण जनवरी 1982 ई०

14 उत्तर योगी श्री अरविन्द डॉ० शिवप्रसाद सिह, लोक भारती प्रकाशन, 15 ए, महात्मा गॉधी मार्ग इलाहाबाद, प्रथम सस्करण 1972 ई०

15 कला और सस्कृति डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य भवन लिमिटेड इलाहाबाद सस्करण 1952 ई०

16 कॉग्रेस का इतिहास–भाग 3 बी० पट्टाभि सीता रमैया, सस्ता साहित्य–मण्डल, नई दिल्ली, प्रथम सस्करण 1948 ई०

17 काश्मीर–सुषमा श्रीधर पाठक, रामदयाल अग्रवाल, पब्लिशर प्रयाग सस्करण 1915 ई०

18 किसान मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन चिरगॉव (झॉसी), सस्करण 1954 ई०

19 कुणाल गीत मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन चिरगॉव (झॉसी), सस्करण 1942 ई०

20 कृषक–क्रन्दन गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', प्रताप कार्यालय, कानपुर, प्रथम ससकरण 1916 ई०

21 चन्द्रहास मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन चिरगॉव (झॉसी), षष्ठावृत्ति 1924 ई०

22 चिन्तामणि–भाग एक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, इडियन प्रेस (पब्लिकेशस) प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद, सस्करण 1993 ई०

23 चोखे–चौपदे अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध', हिन्दी साहित्य–कुटीर, वाराणसी प्रथम सस्करण

24 जयद्रथ–वध मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन, झॉसी, सस्करण 1997 ई०

25 जय भारत मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन चिरगॉव (झॉसी), प्रथम सस्करण

26 जयहिन्द सियारामशरण गुप्त, साहित्य–सदन चिरगॉव, झॉसी द्वितीय सस्करण

27 जाति सस्कृति और समाजवाद स्वामी विवेकानद अनुवादक द्वारकानाथ तिवारी रामकृष्ण मठ धन्तोली, नागपुर नवम सस्करण 1994 ई०

28 द्वापर मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन, चिरगॉव (झॉसी),सस्करण 1948 ई०

29 द्विवेदी–काव्य माला सपादक देवीदत्त शुक्ल,

30 द्विवेदी युगीन काव्य डॉ० पूनमचद तिवारी, म०प्र० हिन्दी ग्रथ अकादमी, भोपाल प्रथम सस्करण 1972 ई०

31 द्विवेदी युगीन काव्य पर आर्य समाज का प्रभाव डॉ० भक्तराम शर्मा, वाणी प्रकाशन 61–एफ कमलानगर दिल्ली, सस्करण 1973 ई०

32 द्विवेदी युगीन साहित्य–समीक्षा डॉ० सकटाप्रसाद मिश्र, अन्नपूर्णा प्रकाशन गॉधीनगर, कानपुर, प्रथम सस्करण 1978 ई०

33 द्विवेदी युग का हिन्दी–काव्य डॉ० रामसकलराय शर्मा, अनुसधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर, प्रथम सस्करण सितम्बर, 1966 ई०

34 नीति, धर्म और दर्शन सपादक, रामनाथ सुमन, गॉंधी साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण 1969 ई०

35 नया साहित्य नये प्रश्न आचार्य नददुलारे वाजपेयी

36 पचवटी मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन, चिरगॉव (झॉसी), उन्नीसवॉं सस्करण 1952 ई०

37 पूर्ण सग्रह राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' सकलन लक्ष्मीकात त्रिपाठी, गगा–पुस्तकमाला–कार्यालय, अमीनाबाद–पार्क, लखनऊ, सस्करण 1925 ई०

38 पथिक रामनरेश त्रिपाठी हिन्दी मदिर, प्रयाग, पाचवॉं सस्करण 1931 ई०

391 प्रदक्षिणा मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन, चिरगॉव (झॉसी), प्रथमावृत्ति 1950 ई०

40 पत, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त श्री रामधारीसिह दिनकर , केदारनाथ सिह अध्यक्ष उदयाचल, राजेन्द्र नगर, पटना, द्वितीय सस्करण 1965 ई०

41 प्राचीन भारत का इतिहास सपादक, झा एव श्रीमाली, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय मॉडल टाऊन दिल्ली, पुनर्मुद्रित सस्करण 1991 ई०

42 पराग प० रूपनारायण पाण्डेय, गगा पुस्तक माला कार्यालय, लखनऊ, प्रथम सस्करण 1924 ई०

43 प्रियप्रवास अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध', हिन्दी–साहित्य–कुटीर वाराणसी चौबीसवॉ सस्करण 1997 ई०

44 पद्य–पुष्पाजलि लोचनप्रसाद पाण्डेय, नारायण प्रसाद अरोडा, पटकापुर, कानपुर प्रथम सस्करण 1915 ई०

45 पद्य–प्रबन्ध (प्रथम भाग) मैथिलीशरण गुप्त, इडियन प्रेस, प्रयाग, प्रथम सस्करण 1912 ई०

46 पद्य प्रमोद अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध', कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स बनारस, सस्करण 1955 ई०

47 पद्य प्रसून अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध', हिन्दी पुस्तक भण्डार, लहेरिया सराय (दरभगा), प्रथम सस्करण 1925 ई०

48 बीसवीं शताब्दी (पूर्वार्द्ध) के महाकाव्य डॉ० प्रतिपाल सिह, ओरिएटल बुक डिपो नई सडक दिल्ली, प्रथम सस्करण

49 बुद्ध–चरित आचार्य रामचन्द्र शुक्ल (सर एडविन आर्नल्ड के 'लाइट ऑफ एशिया' के आधार पर) नागरी–प्रचारिणी सभा, काशी, प्रथम आवृत्ति 1922 ई०

50 बोलचाल अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध', हिन्दी–साहित्य–कुटीर, वाराणसी, प्रथम सस्करण

51 भ्रमरदूत सत्यनारायण 'कविरत्न'

52 भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि ए०आर०देसाई, अनुवादक प्रयागदत्त त्रिपाठी, दि मैकमिलन कपनी ऑफ इडिया लिमिटेड नई दिल्ली, प्रथम हिन्दी सस्करण 1976 ई०

53 भारतीय सस्कृति उसका महत् अतीत और भविष्य के लिए सकेत प्रो० मीरा श्रीवास्तव, (अनुवाद श्री अरविन्द भारतीय सस्कृति के आधार से सकलन) अहन् प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वितीय सस्करण 1993 ई०

54 भारतीय सस्कृति का विकास डॉ० सत्यकेतु विद्यालकार, श्री सरस्वती सदन, सफदरजग इनक्लेव नई दिल्ली, द्वितीय सस्करण 1990

55 भारतीय सस्कृति एव राष्ट्रीय आदोलन श्री कौशलकुमार राय, गुप्ता जनरल ट्रेडिग कम्पनी, बुलावाला, वाराणसी, प्रथम सस्करण 1967 ई०

56 भारतीय सस्कृति और साहित्य डॉ० मनमोहनलाल शर्मा, चित्रगुप्त प्रकाशन, पुरानीमडी, अजमेर, प्रथम सस्करण 1967 ई०

57 भारतगीत श्रीधर पाठक, गगा पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ, द्वितीय सस्करण 1928 ई०

58 भारतेन्दु ग्रथावली (दूसरा खण्ड) सकलनकर्ता तथा सपादक ब्रजरत्न दास, नागरी–प्रचारिणी सभा, काशी, सस्करण 1934 ई०

59 भारत–भारती मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन, चिरगॉव (झॉसी), सैंतीसवॉ सस्करण 1991 ई०

60 भारत का स्वतत्रता सघर्ष प्रो० विपिनचद्र, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय नई दिल्ली नवम सस्करण 1995 ई०

61 भारत मे उपनिवेशवाद और राष्ट्रवाद सपादक डॉ० सत्या एम०राय, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, द्वितीय सस्करण 1985 ई०

62 भारत मे राष्ट्रवाद सपादक डॉ० सत्या एम०राय, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नईदिल्ली, तृतीय सस्करण 1987 ई०

63 मानसी रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी–मदिर, प्रयाग द्वितीय सस्करण 1934 ई०

64 मिलन रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी–मदिर, प्रयाग, पाचवॉं सस्करण 1928 ई०

65 मगलघट मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन, चिरगॉव (झॉसी), प्रथमावृत्ति 1937 ई०

66 मनोविनोद श्रीधर पाठक, पझकोट लूकरगज, प्रयाग, प्रथम सस्करण

67 मौर्य विजय सियारामशरण गुप्त, साहित्य–सदन चिरगॉव (झॉसी) सस्करण 1947 ई०

68 मैथिलीशरण गुप्त के विरह काव्य डॉ० विनोद धम, सन्मार्ग प्रकाशन दिल्ली–7, प्रथम सस्करण 1971 ई०

69 मैथिलीशरण गुप्त और साकेत डॉ० हनुमानदास गुप्त, मजु प्रकाशन, ७१, चौपटिया रोड, लखनऊ, प्रथम सस्करण 1970 ई०

70 मैथिलीशरण गुप्त व्यक्ति और काव्य:डॉ० कमलाकात पाठक, रामदुलारे वाजपेयी रणजीत प्रिटर्स एण्ड पब्लिशर्स चॉदनी चौक, दिल्ली–6 प्रथम सस्करण 1960 ई०

71 महाकवि रामचरित उपाध्याय डॉ० रामवृक्ष सिह, दीपक प्रकाशन, 5 सम्मेलन मार्ग इलाहाबाद, प्रथम सस्करण 1980 ई०

72 महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग डॉ० उदयभानु सिह, लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ, प्रथम आवृत्ति 1951 ई०

73 महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण डॉ० रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड नई दिल्ली, प्रथम सस्करण 1977 ई०

74 यशोधरा मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन, झॉसी, सस्करण 1993 ई०

75 युगचरण माखनलाल चतुर्वेदी, भारती–भडार प्रयाग, प्रथम सस्करण

76 रचनात्मक कार्य मोहनदास करमचन्द गॉधी, सस्ता साहित्य–मण्डल, दिल्ली सस्करण 1942 ई०

77 रीतिकालीन कवियो की प्रेम व्यजना डॉ० बच्चन सिह, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी सस्करण 1958 ई०

78 राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनदन ग्रथ सम्पादक ऋषि जैमिनी

बरूआ, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनदन समिति 87 विवेकानद रोड, कलकत्ता–6 प्रथम सस्करण 1959 ई०

79 राष्ट्र भारती रामचरित उपाध्याय, राष्ट्रीय शिक्षा ग्रथमाला कार्यालय, आरा, प्रथम सस्करण 1921 ई०

80 रामचरित चिन्तामणि रामचरित उपाध्याय, ग्रथमाला कार्यालय, बॉकीपुर, प्रथम सस्करण 1913 ई०

81 रसज्ञ–रजन आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, साहित्य–रत्न भण्डार, आगरा द्वितीय सस्करण 1920 ई०

82 वकसहार मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन, चिरगॉव (झॉसी), सस्करण 1950 ई०

83 विवेकानद साहित्य सचयन विवेकानद, स्वामी व्योम रूपानद अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ धन्तोली, नागपुर, षष्ठ सस्करण 1993 ई०

84 विष्णुप्रिया मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन, चिरगॉव (झॉसी), सस्करण 1992 ई०

85 वीर सतसई वियोगी हरि, साहित्य–भवन लिमिटेड, प्रयाग, चतुर्थ सस्करण 1938 ई०

86 वैदेही वनवास अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध', हिन्दी–साहित्य–कुटीर बनारस, द्वितीय सस्करण 1939 ई०

87 शकर–सरोज प० नाथूराम शर्मा 'शकर', आर्य समाज बरौठा, हरदुआगज (अलीगढ), चतुर्थ सस्करण 1930 ई०

88 शकर सर्वस्व प० नाथूराम शर्मा 'शकर', सपादक हरिशकर शर्मा, गयाप्रसाद एण्ड सस आगरा, प्रथम सस्करण 1951 ई०

89 श्री अरविन्द और भारत प्रो० मीरा श्रीवास्तव, अहन् प्रकाशन, इलाहाबाद प्रथम सस्करण 1993 ई०

90 सत्यार्थ प्रकाश स्वामी दयानद 'सरस्वती', तिलकराज आर्य, अध्यक्ष आर्य

प्रकाशन अजमेरी गेट, दिल्ली, तृतीय सस्करण 1997 ई०

91 समर्पण माखनलाल चतुर्वेदी, भारती–भडार प्रयाग, प्रथम सस्करण

92 सन्दर्भ–सर्वस्व अयोध्यासिह उपाध्याय 'हरिऔध', ग्रथमाला कार्यालय बॉकीपुर प्रथम सस्करण ।

93 सस्कृति के चार अध्याय श्री रामधारीसिह दिनकर, केदारनाथ सिह, उदयाचल, राजेन्द्रनगर, पटना, पुनरावृत्ति सस्करण 1994 ई०

94 साकेत मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन, झॉसी, सस्करण 1991 ई०

95 सिद्धान्त और अध्ययन डॉ० गुलाबराय, प्रतिभा प्रकाशन, 206 हैदरकुली, दिल्ली षष्ठ सस्करण 1965 ई०

96 सिद्धराज मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन, चिरगॉव (झॉसी), सप्तमावृत्ति 1951 ई०

97 सैरन्ध्री मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन, चिरगॉव (झॉसी), पन्द्रहवॉ सस्करण 1996 ई०

98 स्वतत्रता सग्राम प्रो० विपिनचद्र , अमलेश त्रिपाठी, वरूण दे अनुवादक रामसेवक श्रीवास्तव निदेशक नेशनल बुक ट्रस्ट ऑफ इडिया, नई दिल्ली सप्तम आवृत्ति 1986 ई०

99 स्वप्न रामनरेश त्रिपाठी, हिन्दी–मदिर, प्रयाग प्रथम सस्करण

100 साहित्यिक निबन्ध डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, लोक भारती प्रकाशन, दशम सस्करण 1986 ई०

101 साहित्यालोचन डॉ० श्यामसुन्दर दास, इडियन प्रेस, लिमिटेड प्रयाग, परिवर्धित और सशोधित सस्करण 1937 ई०

102 हिन्दी कविता मे युगान्तर डॉ० सुधीन्द्र, आत्माराम एण्ड सन्स कश्मीरी गेट, दिल्ली, द्वितीय सस्करण 1957 ई०

103 हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य डॉ० गोविन्दराम शर्मा, हिन्दी साहित्य ससार, 1361 वैदवाडा, नई सडक, दिल्ली, प्रथम सस्करण 1959 ई०

104 हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास डॉ० रामकुमार वर्मा, रामनारायण लाल प्रकाशक तथा पुस्तक विक्रेता प्रथम सस्करण 1958 ई०

105 हिन्दी साहित्य का इतिहास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा काशी, बारहवॉ सस्करण 1958 ई०

106 हिन्दी साटित्य का इतिहास सपादक, डॉ० नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिग हाउस नई दिल्ली, सस्करण 1988 ई०

107 हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, भारतेन्दु भवन चण्डीगढ प्रथम सस्करण 1965 ई०

108 हिन्दी साहित्य के राष्ट्रीय काव्य डॉ० के०के० शर्मा

109 हिन्दी साहित्य और सवेदना का विकास डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सस्करण जुलाई 1986 ई०

110 हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी आचार्य नददुलारे वाजपेयी, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, प्रथम सस्करण

111 हिन्दू मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य–सदन, चिरगाँव (झाँसी), सातवाँ सस्करण 1992 ई०

112 हृदय तरग सपादक बनारसीदास चतुर्वेदी, नागरी प्रचारिणी सभा आगरा सस्करण 1919 ई०

113 हिमकिरीटिनी माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मदिर, इलाहाबाद चौथा सस्करण 1950 ई०

पत्र-पत्रिकाएँ -

1 आर्यसेवक

2 इन्दू

3 कल्याण

4 प्रताप

5 प्रभा

6 बदेमातरम्

7 राष्ट्रीय मत्र

8 हिन्दी नवजीवन

9 हरिजन

10 सम्मेलन पत्रिका

11 सरस्वती